महाकविश्रीहर्षदेवविरचिता

रत्नावली-नाटिका

'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

व्याख्याकारः

पं. परमेश्वरदीन पाण्डेयः
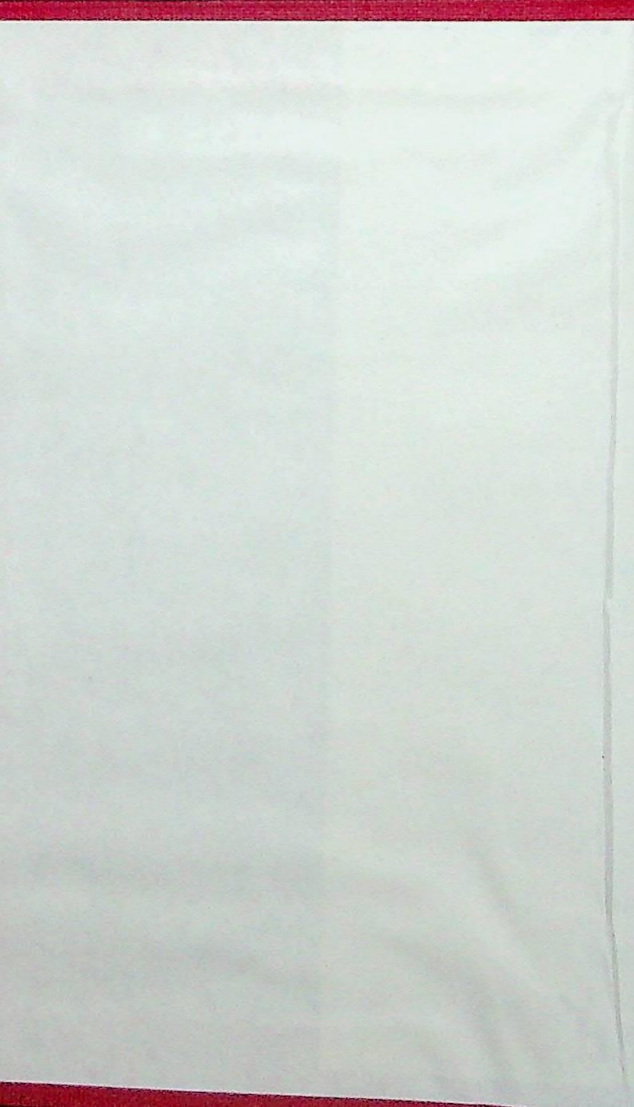
॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

31

महाकवि-श्रीहर्षदेवविरचिता

रत्नावली-नाटिका

'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

व्याख्याकार

पं० परमेश्वरदीन पाण्डेय

एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी) साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

रत्नावली-नाटिका

पृष्ठ : 4+16+194

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263; 2335264

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

संस्करण 2017 ई०

मूल्य : ₹ 200.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA
31

RATNĀVALĪNĀṬIKA

OF

MAHĀKAVI ŚRĪHARṢA

Edited with
'Sudha' Sanskrit & Hindi Commentaries

By
Pt. Parameshwardin Pandey
M. A. (Sanskrit-Hindi), Sahityacharya, Sahityaratna

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

सम्मतिः

"रत्नावली-नाटिका" अनेक विश्वविद्यालयों की स्नातकोत्तर एवं तत्समकक्ष की परीक्षाओं में पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित है। अध्ययन-अध्यापन के प्रसंग में इसकी विभिन्न प्रकार की टीकाओं के अवलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ, किन्तु वे सभी सर्वाङ्गसुन्दर एवं छात्रोपयोगी नहीं प्रतीत हुईं। अतः एक सर्वाङ्गीण उत्तम टीका की आवश्यकता थी।

सौभाग्य से आज एक ऐसी टीका की पाण्डुलिपि देखने का शुभावसर मिला, जिसे अत्यन्त रुचि और गम्भीरतापूर्वक आद्योपान्त देखकर, एक भारी अभाव की पूर्ति से हृदय प्रसन्न हो उठा।

सुयोग्य विद्वान् सम्पादक ने "सुधा" नामक संस्कृत और हिन्दी दो टीकाओं द्वारा परीक्षार्थियों की केवल कठिनाइयों के दूर करने का ही प्रबल प्रयास नहीं किया, अपितु सरल सुबोध, सुगम भाषा एवं अति सरल संक्षिप्त टिप्पणियों से समस्त जटिल दुरूहस्थलों को अतिसुगम बना दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ में प्रायः परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्नों के आधार पर, प्रस्तावना में, नाटकोत्पत्ति, कवि-परिचय, प्रमुख पात्र-चित्रण, कथा-वस्तु आदि पर उपयुक्त आवश्यक सामग्री प्रदान कर, छात्रों का अत्यधिक हित सम्पादन किया है। मध्य-मध्य में यत्र-तत्र व्याकरण सम्बन्धी सुबोध टिप्पणियाँ देकर समस्त जिज्ञासुओं का मार्ग प्रशस्त किया है।

पुनः अन्त में कतिपय परिशिष्टों द्वारा नाटिकागत अनेक ज्ञातव्य, सूक्ति, नाटकीयपारिभाषिक शब्द, अलंकार, छन्द आदि वस्तुओं का सरल विवेचन देकर, सुकुमारमति परीक्षार्थियों को भी परीक्षाब्धि तरने की सुन्दर नौका प्रदान की है।

मेरी हार्दिक कामना है कि सुचतुर साहित्यिक सुवर्णकार की यह सुघटित भासुर-रत्नावली, शीघ्र सुप्रकाशन से सुसज्जित हो, छात्रों एवं शिक्षकों की कण्ठ-हार बने।

स्वामी शुकदेवानन्द कालेज
मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर

—गयाप्रसाद त्रिपाठी शास्त्री

प्रस्तावना

संस्कृत-वाङ्मय में नाटक का विशेष महत्त्व है। दृश्य तथा श्रव्य काव्यभेदों में दृश्य-काव्य के अन्तर्गत नाटक आता है। भारतीय-नाटक साहित्य की स्वतन्त्रधारा सदा से अजस्र प्रवाहित रही है। वैदिक-काल से ही नाटक के सम्वाद संगीत, नृत्य तथा अभिनयादि सभी अङ्ग किसी न किसी रूप में स्पष्ट परिलक्षित होते रहे हैं। जहाँ ऋग्वेद में यम-यमी, उर्वशी-पुरूरवा, सरमा-पणि, इन्द्र-मरुत, वृषा-कपि के सम्वादात्मक सूक्तों में नाटकीय-सम्वाद मिलते हैं, वहीं सामवेद को संगीत का प्राण माना गया है। उपर्युक्त-सम्वाद ही कालान्तर में नाटक रूप में परिणत हो गये होंगे, ऐसा विश्वास है।

रामायण तथा महाभारत-काल में नाटक का और भी अधिक विकसित रूप मिलता है। रामायण में अनेक स्थलों पर नट-नर्त्तक-नाटक-रंगमञ्च आदि का वर्णन किया गया है। महाभारत के विराट पर्व में 'रंग-शाला' तथा 'नट' शब्दों का प्रयोग हुआ है। जहाँ 'नट' शब्द का अर्थ 'श्रीधर स्वामी' के मतानुसार 'नवरसाभिनयचतुरः' होता है। सुप्रसिद्ध व्याकरण-प्रवर्त्तक पाणिनि ने 'पाराशर्य-शिलालिभ्यां भिक्षु-नटसूत्रयोः' सूत्र द्वारा नट-सूत्र अर्थात् नाट्य-शास्त्र का ही स्मरण किया है।

नाट्यशास्त्र-प्रवर्त्तक श्री भरत-मुनि के मतानुसार ब्रह्मा जी ने वेदों का उच्चारण करने के पश्चात् इन्द्रादि-देवताओं द्वारा 'न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु'। के आधार पर एक अतिरिक्त पञ्चम-वेद की रचना-हेतु प्रार्थना किये जाने पर पुनः चारों वेदों का स्मरण कर धर्म्य, अर्थ्य एवं यशस्क युक्त, सर्वकर्मानुदर्शक, सर्वशास्त्रार्थ-सम्पन्न तथा सर्व शिल्प-प्रदर्शक 'नाट्य' नामक पञ्चम-वेद की रचना की—

महेन्द्रप्रमुखैर्वेदैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छाया दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत् ॥ १ ॥
न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥ २ ॥
एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च।
सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित् ॥ ३ ॥
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यञ्च सोपदेशं ससंग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ॥ ४ ॥
सर्वशास्त्रार्थ-सम्पन्नं सर्वशिल्प-प्रदर्शकम्।
नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ॥ ५ ॥
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥ ६ ॥

(भरतनाट्यशास्त्रम्)

इसमें ऋग्वेद से सम्वाद, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत तथा अथर्ववेद से रसादि तत्त्व ग्रहण किये गये । यथा—

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसादाथर्वणादपि ॥
(भरत-नाट्यशास्त्रम्)

इस प्रकार परःसहस्र शताब्दियों में कहीं जाकर भारतीयनाट्यशास्त्र का पूर्ण-विकास हो पाया । संस्कृत-नाटकों में प्रमुख नाटक कालिदास, भवभूति, भास तथा अश्वघोष आदि के हैं । प्रस्तुत 'रत्नावली' नाटिका श्रीहर्ष की रचना है । 'हर्ष' नामधारी कवि संस्कृत साहित्य में कम से कम ६ संख्यक मिलते हैं:—

१—द्वितीय खीष्ट शताब्दी में विक्रम उपाधिधारी श्रीहर्ष हुये । कतिपय विद्वान 'रत्नावली' का रचयिता इन्हें मानते हैं । भास कवि (धावक) इनके समकालीन तथा सभाकवि थे । परन्तु कालक्रमानुसार 'विक्रमसम्वत्सर' के प्रवर्त्तक विक्रमादित्य से यह भिन्न थे । यदि यही हर्ष रत्नावली के रचयिता होते तो उनके परवर्ती कवि कालिदास-बाणादि अपनी रचनाओं में इनका उल्लेख अवश्य करते । अतः यह इनकी रचना सम्भव नहीं है ।

२—दशम शताब्दी में धारानगरी के सुप्रसिद्ध शासक 'भोज' के पितामह मुंज के पुत्र हर्ष हुये । मुञ्जराज का शासनकाल ९७४=९४ ई० माना गया है किन्तु ८०० ई० में दामोदर गुप्त की रचना 'कुट्टनीमतम्' में इस रत्नावली के उद्धरण दिये गये हैं अतः इनकी रचना भी 'रत्नावली' नहीं है ।

३—एकादश शताब्दी में कश्मीर शासक हर्ष हुये । श्री विल्सन के मतानुसार यह हर्ष ही 'रत्नावली' के रचयिता थे । परन्तु इन हर्ष के कवि (प्रतिभावान्) होने का कोई उपयुक्त प्रमाण नहीं मिलता है अतः सम्भवतः यह भी रत्नावली के रचयिता नहीं रहे होंगे ।

४—द्वादश शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'नैषधीय-चरितम्' के रचयिता श्रीहर्ष हुये । यह कान्यकुब्जाधिपति (कन्नौज नरेश) जयचन्द्र की सभा के कवि थे स्वयं राजा नहीं थे । 'रत्नावली' के रचयिता श्रीहर्ष कवि के साथ साथ राजा भी थे । 'नैषधीय-चरितम्' के सर्गान्त में रत्नावली आदि अन्य रचनाओं का इन्होंने कहीं भी वर्णन नहीं किया है, जैसा कि करना स्वाभाविक था । अतः यह रत्नावली के रचयिता नहीं हो सकते हैं ।

५—पञ्चदश शताब्दी में काव्यप्रकाश के प्रदीप लेखक गोविन्द ठाकुर के अनुज श्री हर्ष हुए । यह भी राजा नहीं थे अत एव इन हर्ष की भी रत्नावली रचना नहीं है ।

६—सप्तम शताब्दी में कान्यकुब्ज (कन्नौज) तथा थानेश्वर के अधिपति श्री प्रभाकर बर्द्धन के पुत्र श्री हर्ष जिन्हें शीलादित्य भी कहते हैं, को रत्नावली नाटिका का रचयिता माना गया है ।

श्रीहर्ष का जीवनवृत्त—हर्ष का जन्म सरस्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र के निकट थानेसर में ५९० ई० के लगभग हुआ था । इनके पिता महाराज प्रभाकर बर्द्धन तथा माता यशोमती थीं । इनके अग्रज राज्यवर्धन तथा अनुजा राज्यश्री थीं । राज्य श्री का विवाह

कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा से हुआ था। प्रभाकर वर्धन ने हूणों को पराजित कर गान्धार, लाट तथा मालव देश तक अपना राज्य बढ़ा लिया। उत्तर से पुनः आक्रमण किये जाने पर हूणों को दमन करने हेतु प्रभाकर वर्धन ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन को भेजा। इनके साथ हर्ष भी गये थे। दूत द्वारा पिता प्रभाकर वर्धन की बीमारी की सूचना पाकर राजकुमार हर्षवर्धन राजधानी वापस लौट आये। यहाँ प्रभाकर बर्द्धन स्वर्गवासी हुये और इससे पूर्व यशोमती ने वैधव्य भय से पूर्व ही अग्निप्रवेश कर अपना प्राणान्त कर लिया। प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के समाचार से उत्साहित होकर मालवाधीश ने कन्नौज पर आक्रमण कर ग्रहवर्मा को मार डाला तथा राज्यश्री को बन्दिनी कर लिया।

ग्रहवर्मा (बहनोई) की हत्या और राज्यश्री (बहन) के बन्दी बनने के समाचार ने महाराज राज्यवर्धन को व्याकुल कर दिया। वह अपने अनुज राजकुमार हर्षवर्धन को राज्यभार सौंप कर मालवाधीश से बदला लेने चले गये। युद्ध में मालवाधीश मारा गया। परन्तु मालवाधीश के मित्र गौडनरेश शशांक ने धोखे से राज्यवर्धन की भी हत्या कर दी। यह समाचार पाकर हर्षवर्धन ने कैद से भाग कर विन्ध्याटवी में भटकती हुई व्याकुल होकर आग में जलने के लिए उद्यत अपनी बहन राज्य श्री को सर्वप्रथम बचाया तथा तदनन्तर यथावसर ग्रहवर्मा की भी हत्या कर कन्नौज राज्य अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तर के हर्षवर्धन राजा बन गये। एकछत्र सम्राट् बनने की महत्त्वाकांक्षा से हर्षवर्धन ने सुदूर दक्षिण भारत पर ६२० ई० में आक्रमण किया परन्तु प्रतापशाली चालुक्यवंशी पुलकेशिन द्वितीय से पराजित होने के पश्चात् हर्ष ने एकछत्र सम्राट् बनने की कामना का परित्याग कर दिया। बहुत समय तक इन्होंने शीलादित्य के नाम से शासन किया। अपने राज्यारोहण ६०६ ई० में ही अपने नाम से एक नया सम्वत्सर भी चलाया।

हर्ष का शासन—हर्ष का राज्य अत्यन्त समृद्धशाली तथा निरुपद्रव था। इनके राजत्वकाल में ही प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनत्सांग भारत आया था। वह पर्याप्त कालतक हर्ष के दरबार में भी रहा। उसने लिखा है कि सम्राट् हर्ष एक महान् वीर तथा बुद्धिमान् राजा थे। उनके राज्य का विस्तार हिमालय से नर्मदा तथा मालवा गुजरात सौराष्ट्र एवं बंगाल में भी था। मालगुजारी के अतिरिक्त राज्य में नाममात्र के अन्य कर लिये जाते थे। अपराध कम होते थे। राज्य में शिक्षा का विस्तार था। राजा स्वयं विद्वान् थे तथा विद्वानों को राज्य की ओर से आश्रय मिलता था। महाकवि बाणभट्ट तथा मयूर इनके प्रसिद्ध दरबारी कवि थे। प्रजा सर्वथा सुखी तथा सन्तुष्ट थी और उनका सुशासन राज्य व्यापक था।

सम्राट् हर्षवर्धन ने राज्य श्री से प्रभावित होकर अपने शासन के अन्तिम दिनों में बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था फिर भी वह शिव, विष्णु का भी समान रूप से आदर करते थे। वह धार्मिक सभायें करते तथा प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग में जाकर अपने सर्वस्व दान कर देते थे।

हर्ष का कवि जीवन—सम्राट् हर्ष बड़े ही उदार हृदय, विद्वान् एवं कवि थे। महाकवि बाण ने अपने हर्षचरित नामक काव्य में हर्ष की काव्य-प्रतिभा का वर्णन किया है।

बाणभट्ट के अतिरिक्त मयूर तथा मातङ्ग दिवाकर आदि विद्वान कवि भी इनकी राज सभा की शोभा बढ़ाते थे—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥ (राजशेखर)

सुप्रसिद्ध धावक कवि ने भी अपने काव्यत्व से चमत्कृत कर श्री हर्ष से पर्याप्त धन पुरस्कार में प्राप्त किया था—'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' । (आचार्य मम्मट) अवन्ति सुन्दरी कथा में श्रीहर्ष को 'गीर्हर्ष' की उपाधि दी गई है—

श्रीहर्ष इत्यवनिवर्त्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु ।
गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः ॥
(कवि सोड्ढल)

हर्ष की रचनायें

महाराज श्रीहर्ष की प्रमुख तीन रचनायें मिलती हैं—१-प्रियदर्शिका (नाटिका), २-रत्नावली (नाटिका) तथा ३-नागानन्द (नाटक) इन तीनों कृतियों को ध्यान से देखने पर घटना क्रम, शब्दावली तथा भाषा शैली के आधार पर निर्विवाद रूप से एक ही कवि की रचना होना निश्चित है । इनके अतिरिक्त हर्षरचित दो स्तोत्र भी माने जाते हैं । 'सुप्रभातस्तोत्र' में २४ श्लोकों में अधिकांशतः मालिनी छन्दों द्वारा अवलोकितेश्वर बुद्ध भगवान् की प्रार्थना की गई है । अष्टमहा श्रीचैत्यसंस्कृत स्तोत्र में आठ बौद्ध चैत्यों का वर्णन किया गया है । यह स्तोत्र अब केवल चीनी अनुवाद में ही उपलब्ध है । चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग के अनुसार इस स्तोत्र का निर्माण किसी शीलादित्य उपाधिधारी भारतीय राजा ने किया है । यह शीलादित्य और कोई न होकर महाराज हर्ष ही थे । इनके अतिरिक्त संस्कृत सुभाषित ग्रन्थों में हर्ष के नाम से कतिपय श्लोक मिलते हैं जो कि इनके नाटकों में नहीं मिलते । इससे श्रीहर्ष की अन्य रचनायें भी प्रतीत होती हैं परन्तु वह अब अन्धकार के गर्त्त में हैं ।

रचनाक्रम—श्रीहर्ष की उपर्युक्त तीनों रचनाओं का जब हम तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो तीनों रचनाओं का क्रम स्पष्ट हो जाता है । प्रियदर्शिका तथा रत्नावली दोनों ही रचनायें प्रणयकथा पर आधारित हैं । दोनों का नायक उदयन ही हैं । प्रियदर्शिका में प्रयुक्त शब्दावली की अपेक्षा रत्नावली में उसका तदधिक परिमार्जित रूप मिलता है । अतः प्रियदर्शिका को ही श्रीहर्ष की प्रथम रचना माना जाता है । नागानन्द नाटक की रचना कवि ने बौद्ध धर्म से अभिभूत होकर ही की क्योंकि अन्तिम जीवन में श्रीहर्ष ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था । इस प्रकार प्रियदर्शिका श्रीहर्ष की प्रथम, रत्नावली द्वितीय तथा नागानन्द तृतीय रचना ही निश्चित रूप से है ।

प्रियदर्शिका—यह चार अंकों की नाटिका है । जिसमें राजा वत्स के अन्तःपुर की प्रेमकहानी को चित्रित किया गया है । राजा दृढ़ वर्मा के युद्ध में पराजित होने पर उनकी सुन्दरी पुत्री प्रियदर्शिका राजा वत्स के अन्तःपुर में पहुँचती है तथा वहाँ आरण्यका बन कर रहने लगती है । राजा वत्स उसकी लावण्यता पर मुग्ध होकर अन्तःपुर के रङ्गमञ्च पर

उसके विवाह का अभिनय करते हैं। राजा वत्स स्वयं वर बनता है तथा रानी वासवदत्ता आरण्यका। यह प्रेमाभिनय ही वास्तविकता का रूप धारण कर लेता है। तब रानी की ईर्ष्या से आरण्यका कारावास में डाल दी जाती है। परन्तु अन्त में जब आरण्यका का राजकुल में उत्पन्न होना प्रकट हो जाता है तो स्वयं वासवदत्ता आरण्यका के साथ राजा वत्स को विवाह की अनुमति दे देती है।

नागानन्द—यह पाँच अंकों का नाटक है। विद्याधर राजकुमार जीमूत वाहन का विवाह राजा मित्रावसु की कन्या मलयवती से होता है। एक दिन राजकुमार जीमूतवाहन घूमने निकलते हैं। उन्हें पता लगता है कि गरुड यहाँ प्रतिदिन साँपों की भेंट लेता है। सामने पड़े साँपों की हड्डियों के ढेर को देखकर राजकुमार का हृदय दया से पिघल उठता है। और वह स्वयं अपनी भेंट देकर इस हत्याकाण्ड को समाप्त करने का निश्चय करते हैं। वह शंखचूड सर्प के बदले में अपना बलिदान देते हैं। तपःप्रभाव से गौरी जी राजकुमार जीमूतवाहन को जीवित कर देती हैं तथा अमृत वर्षा से शेष मृत सर्प भी जीवित हो जाते हैं। स्वयं गरुड भी भविष्य में साँपों का इस प्रकार संहार न करने का संकल्प कर लेता है। इस प्रकार प्राणियों के प्रति दया तथा आत्मोत्सर्ग को इस नाटक में प्रदर्शित किया गया है।

रत्नावली—यह चार अंकों की नाटिका है जिसका प्रधान रस शृङ्गार तथा नायक धीर-ललित है। इसमें **प्रियदर्शिका** के समान ही सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी के आधार पर मन्त्री यौगन्धरायण षड्यन्त्र से सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या रत्नावली को वत्सराज उदयन के यहाँ मंगवा लेते हैं। और वह (रत्नावली) प्रच्छन्न रूप से सागरिका नाम से दासी बनकर अन्तःपुर में रहने लगती है। उसके रूप-लावण्य से शंकित होकर रानी वासवदत्ता उसे सदा राजा उदयन से दूर रखने का प्रयास करती रहती है परन्तु राजा उदयन उसपर मुग्ध हो जाते हैं। ईर्ष्यावश रानी उसे कारावास में डाल देती है परन्तु उसके राजकुल में उत्पन्न होने, ममेर बहन रत्नावली होने तथा सिद्ध पुरुष की भविष्य वाणी कि 'रत्नावली से विवाह करने वाला चक्रवर्ती सम्राट् होगा' इन सब बातों के प्रकट होने पर स्वयं रानी वासवदत्ता वत्सराज को रत्नावली (सागरिका) से विवाह करने की अनुमति दे देती है।

रत्नावली के श्रीहर्ष की रचना होने पर सन्देह—कुछ विद्वानों ने रत्नावली को श्रीहर्ष की रचना होने पर सन्देह प्रकट किया है। आचार्य मम्मट की सुप्रसिद्ध रचना काव्यप्रकाश को एतदर्थ-उद्धृत किया जाता है—'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्'। अर्थात् श्रीहर्ष के किसी दरबारी कवि धावक (भास) ने रत्नावली नाटिका की हर्ष के नाम से रचना कर प्रचुर धन लाभ किया था, इसके रचयिता हर्ष नहीं थे।

उपर्युक्त सन्देह नितान्त-निर्मूल एवं एकपक्षीय है। इसमें आचार्य मम्मट के द्वारा श्रीहर्ष कवि की दानशीलता का वर्णन किया गया है न कि धावक कवि (भास) के द्वारा हर्ष के हाथ नाटिका-विक्रय कर धन-प्राप्त करने का। यदि श्रीहर्ष कवि इसी प्रकार ग्रन्थ क्रय कर ख्याति प्राप्त करना चाहते तो उनके दरबार में वाणी-विलास कवि बाणभट्ट भी थे जिनकी रचना कादम्बरी रत्नावली से भी उत्कृष्ट कोटि की थी, उसका ख्यापन भी

इसी प्रकार अपने नाम से कर सकते थे। परन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया। इससे 'हर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' से काव्यप्रकाशकार का आशय हर्ष कवि की दानशीलता प्रकट करना ही रहा होगा, अन्य कुछ नहीं। काव्यप्रकाश की 'निदर्शना' टीका में 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' के स्थान पर 'श्रीहर्षादेर्बाणादीनामिव धनम्' भी मिलता है। इससे सम्भवतः बाणभट्ट की 'हर्षचरितम्' रचना पर मुग्ध होकर बाणभट्ट को हर्ष ने अत्यधिक-पुरस्कार दिया यह बात काव्यप्रकाशकार ने दिखलाई होगी।

कुछ आलोचकों का कथन है कि श्रीहर्ष एकच्छत्र साम्राज्य के महत्त्वाकांक्षी राजा था, लड़ने-भिड़ने वाले आक्रमण-कारी राजा के द्वारा रत्नावली जैसी नाटिका अथवा किसी भी उत्कृष्ट काव्य की रचना सम्भव नहीं है। अर्थात् यह सभी रचनायें हर्ष ने अपार धन बाणभट्ट मयूर धावकादि प्रसिद्ध दरबारी कवियों को देकर अपने नाम से विख्यात करा लीं। यह तर्क भी उपयुक्त नहीं लगता। श्रीहर्ष का अन्तिम जीवन-काल बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर शान्ति तथा दया में ही व्यतीत हुआ। अतः यही शान्त, दया-युक्त जीवन-काल उनकी रचनाओं का रहा होगा। श्रीहर्ष का विद्वान् तथा कवि होना वैसे ही निर्विवाद सिद्ध है।

रत्नावली के 'द्वीपादन्यस्मात्' इत्यादि श्लोक बाणभट्ट रचित 'हर्षचरितम्' में भी होने के कारण श्रीहर्ष की 'रत्नावली' रचना होने पर सन्देह करना उपयुक्त नहीं है क्योंकि इस प्रकार से तो मनुस्मृति, कुमारसम्भव आदि पर भी तत्तत् कवियों की रचना न होने का सन्देह किया जा सकता है।

संस्कृत साहित्य में श्रीहर्ष तथा रत्नावली का स्थान—संस्कृत-कवियों में श्रीहर्ष को (नाटककारों में) कालिदास के बाद गिना जाता है। वैसे भाषा की प्रौढ़ता एवं प्रांजलता कालिदास, भवभूति, विशाखदत्तादि की अधिक पाण्डित्यपूर्ण है फिर भी जिस सरलता एवं अकृत्रिमता से नाटक-तत्त्वों को श्रीहर्ष ने सफलता प्रदर्शित किया है वह कम प्रशंसनीय नहीं है। रत्नावली नाटिका का स्थान भी इस प्रकार कालिदासादि उपर्युक्त की नाटक रचनाओं के बाद दूसरी श्रेणी में आता है।

रत्नावली की विशेषता—कथावस्तु, घटना की गतिशीलता एवं अभिनेयता की दृष्टि से रत्नावली संस्कृत रूपकों में प्रमुख स्थान रखती है। इसका प्रधान रस श्रृङ्गार तथा कौशिकी वृत्ति है। नाटिका का नायक धीरललित वत्सराज उदयन है तथा नायिका मुग्धा-नवानुरागवासवदत्ता (सागरिका) है। इसमें नाट्यशास्त्र के अङ्गों (सन्ध्यादि) का समावेश तथा नियमों का पालन बड़े चातुर्य से किया गया है। इसकी कथा 'बृहत्कथा' से ली गई है। नाटिका की भाषा प्राकृत एवं संस्कृत दोनों ही व्याकरण सम्मत, सरल, विरल-समास युक्त तथा प्रसाद गुण-युक्त है। यद्यपि इसमें विलास-मय प्रणय का चित्रण है तथापि सर्वत्र भारतीय मर्यादा का समुचित-निर्वाह किया गया है। इसकी प्रशंसा में नवम शताब्दी के श्री दामोदरदास गुप्त ने लिखा है—

> आश्लिष्ट सीधबन्धं सत्पात्रसुवर्णयोजितं सुतराम्।
> निपुणपरीक्षक-दृष्टं राजति रत्नावलीरत्नम्॥

रत्नावली की कथावस्तु

पूर्वकथा—

कौशाम्बी नरेश राजा उदयन से सम्बद्ध चार अङ्कों की यह रत्नावली नाटिका है। सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या अनिन्द्य सुन्दरी 'रत्नावली' इसकी नायिका है। अतः इस नाटिका का नाम भी नायिका के नाम पर रत्नावली ही उपयुक्त भी है। इसका प्रेरक मन्त्री यौगन्धरायण है। यौगन्धरायण ने किसी सिद्ध पुरुष द्वारा यह भविष्यवाणी सुनी थी की सिंहलेश्वर दुहिता रत्नावली का जिस व्यक्ति के साथ विवाह होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा। अतः स्वामी उदयन के उत्कर्ष हेतु रत्नावली से उसका विवाह कराने की कामना से उसने सिंहलेश्वर विक्रमबाहु के पास एतद् विषयक प्रस्ताव भेजा। राजा उदयन की पटरानी वासवदत्ता विक्रमबाहु की ममेर बहन थी। अतः उसने यह प्रस्ताव वासवदत्ता की हित कामना से अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर मन्त्री यौगन्धरायण ने रानी वासवदत्ता के लावाणक गाँव की अग्नि में रानी वासवदत्ता के जलकर मर जाने का मिथ्या प्रचार कर दिया और पुनः बाभ्रव्य नामक कंचुकि (अन्तःपुरवासी वृद्ध ब्राह्मण) द्वारा रत्नावली का उदयन के साथ विवाह करने का प्रस्ताव सिंहलेश्वर विक्रमबाहु के पास भेजा। इस बार यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

सिंहलेश्वर विक्रमबाहु ने अपने मन्त्री वसुभूति के साथ रत्नावली को वत्सदेश को भेजा किन्तु समुद्र में नौका-दुर्घटना हो गई। संयोगवश नाव के टूटे तख्ते का सहारा लेकर किसी प्रकार रत्नावली समुद्र के किनारे पर आ लगी। उसी समय सिंहल की ओर से व्यापार करके लौटते हुये कौशम्बी के किसी व्यापारी ने रत्नावली को देखकर पहिचान लिया तथा उसे राजा उदयन के यहाँ मन्त्री यौगन्धरायण को सौंप दिया। सागर में पाये जाने के कारण यौगन्धरायण ने उसे सागरिका नाम से अन्तःपुर में रानी वासवदत्ता की सेवा में लगा दिया। मन्त्री ने यह प्रपञ्च केवल इस उद्देश्य से ही किया था कि अन्तःपुर में रहती हुई रत्नावली (अब सागरिका) स्वयं अपने रूप-लावण्य से राजा उदयन को मुग्ध कर लेगी तथा किसी न किसी दिन वह महारानी (उदयन की पत्नी) बन जायेगी। रानी वासवदत्ता भी सागरिका के सौन्दर्य से शंकित रहती थी तथा राजा उदयन के सामने उसे नहीं पड़ने देती थी।

प्रथम अङ्क

कौशाम्बी नगरी में मदनमहोत्सव मनाया गया। स्त्री-पुरुष सभी इस मदन महोत्सव को मनाने में लीन हो गये। चारों ओर अबीर-गुलाल उड़ाया जाने लगा। इधर रानी वासवदत्ता मकरन्दोद्यान में खड़े अशोक वृक्ष के नीचे मदन-पूजन के लिये गई। सेविका सागरिका जो कि सारिका रक्षा के बहाने मकरन्दोद्यान में जाने से रोक रखी गई थी, अन्य दासियों एवं सखियों के साथ वह भी मकरन्दोद्यान में पहुँच जाती है। कामदेव के पूजा-समारोह में मदनोद्यान मे आने के लिए रानी वासवदत्ता महाराज उदयन से भी निवेदन

करती है तथा महाराज विदूषक के साथ वहाँ पहुँचते हैं। रानी काम-पूजन में तत्पर हो जाती है। उसी समय उसे अन्य परिचारिकाओं के साथ सागरिका का भी वहाँ आना ज्ञात हो जाता है। वासवदत्ता सागरिका को पुनः सारिका की रक्षा के लिए अन्तःपुर जाने को कहती है परन्तु वहाँ से हटकर उत्सुकतावश सागरिका वृक्षों की आड़ से काम-पूजन को देखने की चेष्टा करती है। जब काम के रूप में राजा उदयन की पूजा की जाती है तो वह (राजा उदयन) सागरिका को साक्षात्कामदेव जैसे सुन्दर दिखलाई पड़ते हैं। सागरिका स्वयं काम-पूजा के लिए फूल चुनती है। वह भी कामदेव के व्याज से फूल चढ़ा देती है और उसी समय वैतालिक की स्तुति से उसे यह ज्ञात हो जाता है कि यही महाराज उदयन हैं जिनके लिये उसके पिता ने उसे अर्पित किया है। सागरिका राजा उदयन पर आसक्त हो जाती है।

द्वितीय अङ्क

राजा उदयन पर अनुरक्त सागरिका सखी सुसंगता से छिपकर कदली गृह में बैठकर राजा उदयन का चित्र बनाती है परन्तु सुसंगता उसे खोजती हुई वहीं आ जाती है। वह इस रहस्य को सुसंगता से छिपाना चाहती है परन्तु यह सब जान जाती है और राजा के समीप ही सागरिका का भी चित्र बना देती है। सुसंगता के आग्रह करने पर सागरिका अपनी विरह कथा सुसंगता को बता देती है। वहीं पर पिंजड़े में बन्द मेधाविनी सारिका दोनों का वार्त्तालाप सुनकर रट लेती है। इतने में इधर एक बानर आ जाता है जो कि सारिका के पिंजड़े को खोल देता है। सारिका पिंजड़े से उड़कर वकुल वृक्ष पर बैठकर सागरिका तथा सुसंगता के वार्त्तालाप को दुहराती है। श्री खण्डदास के द्वारा सीखे हुये दोहद (अकाल में फूल खिलाना) के प्रभाव से अकाल पुष्पित नव मालिका को देखने के लिये इसी समय राजा उदयन रानी वासवदत्ता के साथ मकरन्दोद्यान को आ जाते हैं। उधर वे दोनों सारिका द्वारा दोहराया गया सागरिका तथा सुसंगता का वार्त्तालाप सुनते हैं तभी भयभीत होकर कदलीकुंज से सागरिका तथा सुसंगता के जाते समय चित्रफलक वहीं रह जाता है। राजा उस चित्रफलक को देख लेते हैं, उस कदली गृह में कमलिनी शय्या मृणालहार तथा चित्रफलक से राजा को सागरिका की कामदशा का आभास हो जाता है, इतने में सुसंगता चतुरता से वहीं पर लताकुंज में उदयन को सागरिका से मिला देती है। इसी बीच महारानी वासवदत्ता भी उसी स्थान पर आ जाती है और उस चित्र फलक को देख लेती है। वासवदत्ता उस चित्रफलक में बने हुये राजा उदयन और सागरिका के चित्रों को देखकर क्षुब्ध हो जाती है तथा राजा के बार-बार मनाये जाने पर भी वह शिरोवेदना के व्याज से वहाँ से चली जाती है। विदूषक के साथ राजा भी उसे मनाने अन्तःपुर चले आते हैं।

तृतीय अङ्क

कदलीगृह में सागरिका से मिलने के पश्चात् राजा उदयन उस पर अनुरक्त हो जाता है तथा वह निरन्तर सागरिका के लिये दुःखी रहने लगता है। मित्र वसन्तक (विदूषक) सुसंगता से मिलकर सागरिका के राजा से मिलने की योजना बनाता है। इस योजनानुसार

सागरिका को वासवदत्ता का और सुसंगता को रानी की सखी काञ्चनलता का वेष बनाकर प्रदोष काल में माधवीलता मण्डप में उदयन से उसका मिलन कराना था। परन्तु रानी वासवदत्ता किसी प्रकार यह योजना जान लेती है तथा काञ्चनलता के साथ उस निश्चित समय पर स्वयं माधवीलता मण्डप में पहुँच जाती है। सागरिका प्रेम में आतुर राजा उदयन रानी को सागरिका ही समझ कर उसका नाम लेकर पुकारने लगते हैं तथा सागरिका विषयक ही प्रेमालाप करने लगते हैं। राजा के इस अशिष्ट व्यवहार से खिन्न होकर वासवदत्ता अपने को प्रकट कर देती है। राजा वासवदत्ता के पैरों पड़कर उससे अनुनय विनय करने लगते हैं परन्तु रानी न मानकर क्रुद्ध होकर वहाँ से चली जाती है। इधर सागरिका भी योजनानुसार नियत समय पर माधवीलतामण्डप में पहुँचती है तथा योजना के प्रकट हो जाने की सूचना पाकर अपमान-भय से आत्महत्या करने का प्रयास करती है।

वासवदत्ता वेष धारिणी सागरिका को आत्महत्या का प्रयास करते देखकर उसे रानी ही समझ कर रक्षार्थ मित्र वसन्तक राजा को बुलाता है। जब राजा वासवदत्ता के वेष में सागरिका को पाता है तो वह प्रसन्न हो जाता है तथा उससे पूर्व वासवदत्ता के प्रति किये गये प्रेमालाप को वह सेवा-मात्र बताने लगता है। उधर राजा की अनुनय-विनय का तिरस्कार कर चले जाने पर पुनः वासवदत्ता को अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होता है तथा वह पुनः मकरन्दोद्यान को आती है परन्तु वहाँ आकर जब वह पुनः राजा और सागरिका को प्रेमालाप करते देखती है तो क्रुद्ध होकर इस नाटक का उत्तरदायी वसन्तक को समझ कर उसे माधवीलता से बँधवा कर वसन्तक तथा सागरिका दोनों को साथ लेकर अन्तःपुर को चली जाती है। कुछ समय पश्चात् वसन्तक को छोड़ देती है परन्तु सागरिका को किसी अज्ञात स्थान पर कैद रखकर यह प्रचार कर देती है कि महारानी ने सागरिका को उज्जयिनी भेज दिया है।

चतुर्थ अङ्क

अन्तःपुर में कैद किये जाने पर सागरिका निराश होकर सुसंगता से माला (रत्नमाला) किसी ब्राह्मण को देने के लिये कहती है। सुसंगता माला लेकर जाती है तथा ब्राह्मण वसन्तक के मिल जाने पर वह उसे ही दे देती है। वसन्तक रत्नमाला लेकर राजा के पास पहुँचता है। राजा रत्नमाला देखकर सागरिका को यादकर दुःखी होने लगता है। इसी समय उसके सेनापति रुमण्वान् का भाञ्जा विजयवर्मा आकर सेनापति द्वारा विन्ध्य दुर्ग में स्थित कोसल राज्य पर विजय प्राप्त करने का समाचार बताता है जिससे राजा को कुछ धैर्य होता है। उसी समय उज्जयिनी से एक ऐन्द्रजालिक जादूगर (यौगन्धरायण द्वारा किया गया प्रयोग) आकर राजा से खेल देखने के लिये कहता है। राजा रानी वासवदत्ता के साथ खेल देखते हैं। इतने में सिंहलेश्वर के अमात्य वसुभूति तथा बाभ्रव्य कञ्चुकि के आ जाने पर राजा थोड़ी देर खेल बन्द रखने के लिए ऐन्द्रजालिक (जादूगर) से कह देता है। परन्तु वह राजा से यह कहता हुआ कि "आपको मेरा कम से कम एक खेल अवश्य देखना चाहिये।" चला जाता है। वसुभूति राजकुमारी रत्नावली के समुद्र में डूबने की

कहानी सुनाने लगता है, उसी समय अन्तःपुर में आग लगने का दृश्य दिखाई पड़ता है। आग की ऊँची-ऊँची लपटें मालूम पड़ती हैं। रानी वासवदत्ता अन्तःपुर में कैदकर रखी गई सागरिका को आग में जल जाने के भय से व्याकुल हो राजा से उसे बचाने के लिये प्रार्थना करती है। राजा आग में कूदकर सागरिका को बन्धन से छुड़ा तथा आग से बचाकर निकाल लाता है वसुभूति उसकी आकृति रत्नावली से मिलती जुलती देखकर उसे रत्नावली ही मान बैठता है तथा बभ्रुव्य के पास की रत्नमाला से इसकी पुष्टि हो जाती है। इसी अवसर पर मन्त्री यौगन्धरायण भी वहाँ आ जाते हैं तथा रत्नावली को राजा से मिलाने की सम्पूर्ण योजना को प्रकट कर देते हैं। तथा एतदर्थ राजा से क्षमा याचना करते हैं। रानी वासवदत्ता सागरिका को अपनी बहन रत्नावली समझ लेती है और उसे कष्ट देने के लिये पश्चात्ताप करती है। पुनः राजा को स्वयं अपनी बहन रत्नावली सौंपकर उसकी इस प्रकार रक्षा करने के लिए वह राजा से प्रार्थना करती है कि जिससे रत्नावली को प्रेम-व्यवहार से युक्त होकर अपने बन्धुजनों की याद न सता सके।

नाटिका के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

उदयन

राजा उदयन रत्नावली नाटिका का धीर ललित नायक है। साहित्यदर्पण में वर्णित धीर-ललित नायक निश्चिन्त, मृदुल तथा सदा कला परायण कहा गया है—'निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीर-ललितः स्यादिति'। यह सभी गुण उदयन में विद्यमान थे क्योंकि राज्य-भार से वह निश्चिन्त था- अर्थात् अपने पराक्रम से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर राज्य-भार योग्य मन्त्रियों को सौंप चुका था—'राज्यं निर्जितशत्रुयोग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः' इति रत्ना० ना० १.९। उसका सभी के साथ मृदु-व्यवहार था अर्थात् वह धन का अभिमान न कर अपने सेवक वर्ग के साथ भी अतीव नम्रता का व्यवहार करता था। परिचारिका सुसंगता से—'सुसंगते! स्वागतम्, इहोपविश्यताम्'। 'कथमिहस्थो भवत्या ज्ञातः' राजा उदयन के मृदु व्यवहार के उत्तम उदाहरण हैं। वह कला-विद् भी था क्योंकि सेनापति रुमण्वान् के भाजे विजयवर्मा के द्वारा कोसलाधीश के शौर्य की प्रशंसा शत्रु होते हुये ही वह स्वयं ही करने लगा—'साधु कोसलपते! साधु। मृत्युरपि ते श्लाघ्यो यस्य शत्रवोऽप्येवं पुरुषकारं वर्णयन्ति'। मदन-महोत्सव का मनाया जाना भी उसकी कलापरायणता ही मानी जा सकती है क्योंकि कलानभिज्ञ व्यक्ति गीत-वाद्यादि संगीत परक उत्सवों का आयोजन कदापि नहीं कर सकता है। ऐन्द्रजालिक द्वारा दिखाया गया इन्द्रजाल (जादूगरी) प्रदर्शन भी इसी का द्योतक है। इस प्रकार लक्षण में वर्णित सभी धीर ललित नायक के गुणों का उसमें समावेश था।

इसके अतिरिक्त अन्य गुण भी राजा उदयन के चरित्र में स्पष्ट मिलते हैं। यद्यपि रत्नावली नाटिका केवल दो दिन की घटनाओं का वर्णन है तथापि उदयन के वीरतादि अन्य गुण भी उसमें सरलतया देखे जा सकते हैं। 'राज्यं निर्जितशत्रु' से उदयन का कायर होना नहीं ज्ञात होता है। वह अपने पराक्रम से पूर्व ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुकता है और—

वीर पुरुष ही अन्य वीर की प्रशंसा भी कर सकता है कायर नहीं। जैसा कि कोसलपति के पराजित होने का समाचार पाकर हठात् उसकी प्रशंसा राजा स्वयं अपने मुँह से करने लगता है। वह प्रिय एवं उदार है। उदारता से परोपकार करते समय वह अपने को भी संकट में डालते समय हिचकता नहीं है। अन्तःपुर में लगी हुई आग से भयभीत होकर वासवदत्ता जब सागरिका (रत्नावली) को अन्तःपुर में बन्द आग से बचाने लिए उदयन से कहती है तो वह जलती हुई आग में कूदकर उसे बचा लेता है। वह अनुपम सुन्दर भी है। क्योंकि सुन्दरियाँ उसके रूप-लावण्य पर बरबस मुग्ध हो जाती हैं। सागरिका (अनुपमा सुन्दरी) प्रथम बार ही उदयन को देखकर कहने लगती है—'पर-प्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमतं सम्वृत्तम्।' उदयन उच्च कुलाभिमानी भी है क्योंकि सागरिका पर अनुरक्त होते हुये भी वह सागरिका के कुलीन होने की बात ज्ञात होने पर ही वसन्त सेना के कहने पर अपनी पत्नी बनाने का साहस कर सका, वैसे विलासी होना राजा का एक स्वाभाविक गुण है तदनुकूल ही वह सागरिका पर मुग्ध भी हो गया। इस प्रकार नाटिका के 'लोके हारि च वत्सराजचरितम्' के अनुसार राजा लोकरंजक भारतीय शासक था।

रत्नावली

विक्रमबाहुसिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली इस नाटिका की (कन्या) मुग्धा नायिका है जो कि प्रायः सर्वत्र 'सागरिका' नाम से कही गई है। वह अनुपमा सुन्दरी है, महामात्य यौगन्धरायण के आग्रह पर वासवदत्ता उसे अपनी परिचारिका भले ही बना लेती है पर उसे सागरिका (रत्नावली) के रूप लावण्य पर उदयन के मुग्ध हो जाने का सन्देह निरन्तर बना रहता है और वह सागरिका को राजा उदयन के सामने नहीं पड़ने देती है। सुसंगता का यह कथन कि—

'ईदृशस्य कन्यारत्नस्यावश्यमेवेदृशे वरेऽभिलाषेण भवितव्यम्'। उसकी सुन्दरता को ही प्रमाणित करता है। पुनः विदूषक (वसन्तक) भी यह कहकर कि—'ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते'। 'तत्तर्कयामि प्रजापतेरपीदं निर्माय विस्मयः समुत्पन्न' इति। उसके लावण्य की प्रशंसा ही करता है। स्वयं राजा उदयन भी चित्रलिखित सागरिका को देखकर सौन्दर्य-मुग्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी—'इस रत्नावली का जिस पुरुष के साथ विवाह होगा वह चक्रवर्त्ती राजा बनेगा' से रत्नावली की सुन्दरता में और भी 'चार चाँद' लग जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप महामात्य (यौगन्धरायण) महान् षड्यन्त्र करके भी रत्नावली को उदयन की प्रेयसी (पत्नी) बनाता है। उदयन का मित्र वसन्तक भी सागरिका (रत्नावली) के राजा से मिलने के लिये उसके भाग्य की प्रशंसा करने लगता है—'त्वयाऽपूर्वा श्रीः समासादिता'।

सुन्दरी होते हुये भी रत्नावली स्वाभिमानिनी है। अन्तःपुर में रहने पर भी वह अपना रहस्य किसी से प्रकट नहीं करती है। नाटकीय ढंग से अन्तःपुर में आने पर भी वह आन्तरिक ठेस से अपना जीवन दूषित समझती है—'तत परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितम्'। वह वासवदत्ता के सेवा रूपी गहन तप को स्वाभिमान से पत्थर की छाती करके सह

लेती है। इसके अतिरिक्त वह अपने प्रतिष्ठित कुल की मर्यादा का ध्यान निरन्तर रखती है। सुसंगता के द्वारा बार-बार प्रेम-रहस्य प्रगट करने के लिये आग्रह करने पर भी—'प्रिय सखि ! महती खलु मे लज्जा। तत् तथा कुरु यथा न कोऽप्यपरः एतद् वृत्तान्तं जानाति'। कहकर अपनी शालीनता का परिचय देती है। राजकुलानुरूप उसे शिक्षा भी मिली है क्योंकि उसके द्वारा अपने प्रिय उदयन का बनाया हुआ स्वाभाविक चित्र सरलता से सुसंगता पहिचान लेती है। इतना सब होते हुये भी उसका उदयन के प्रति अटूट प्रेम है, वह उदयन के बिना जीवित रहने को तैयार नहीं है। उदयन से मिलने से निराश होकर आत्महत्या का प्रयास करती है। अन्तःपुर में लगी आग को देखकर। 'अद्य हुतवहो दिष्ट्या करिष्यति मे दुःखावसानम्'। कह उठती है परन्तु जैसे ही वह रक्षार्थ आये हुये उदयन को देख लेती है तो हठात् कह उठती है—'भर्त्तः, परित्रायस्व, परित्रायस्व'। अन्त में वह उदयन को पाने में सफल भी हो जाती है।

वासवदत्ता

वासवदत्ता महाराज उदयन की पटरानी है। इसके पिता उज्जयिनी के राजा थे। वह सुन्दरी है तथा उसे अपने पति उदयन का पूर्ण प्रेम प्राप्त है। उसका सर्वस्व उदयन ही है। वह उदयन को किसी प्रकार अप्रसन्न रखना नहीं चाहती है। हाँ अपने और उदयन के मध्य किसी अन्य रमणी को वह सहन नहीं कर सकती है। मन्त्री यौगन्धरायण के आग्रह से भले ही उसने सागरिका को अपनी सेवा निमित्त अन्तःपुर में रख लिया, पर वह पुरुष की कमजोरी समझती है। सागरिका की सुन्दरता पर उदयन के मुग्ध हो जाने को उसे भय है। इसी हेतु वह सागरिका को राजा उदयन के सामने भी नहीं पड़ने देती है। वासवदत्ता उदार हृदया है, उसका व्यवहार अपने परिचारिका वर्ग पर भी सखिवत् है। इतना होने पर भी वह कठोर-हृदया भी है। उदयन के सागरिका के प्रेमालाप को सुनकर वह उसे अन्तःपुर में कैद तक कर लेती है। वह अतिमानिनी भी है। प्रेमालाप को सुनकर वह उदयन से भी रुष्ट हो जाती है और पाँवों पर गिरकर गिड़गिड़ाने एवं खुशामद करने पर भी वह रूठकर चली जाती है।

वासवदत्ता को अपने पितृकुल से भी अगाध स्नेह है। जैसे ही वह उज्जयिनी से आये ऐन्द्रजालिक का समाचार सुनती है तो वह तुरन्त उदयन को उसका खेल देखने के लिये आग्रह करती है। खेल देखते समय मामा विक्रमबाहु के यहाँ से वसुभूति एवं बाभ्रव्य के आने की बात सुनकर मनोरञ्जक इन्द्रजाल को भी बीच में ही रोक कर दोनों से मिलती है। यह है उसका नारी सुलभ मातृकुल से अगाध स्नेह। वह इतनी भावुक है कि सागरिका का उसकी ममेर बहन रत्नावली होना ज्ञात हो जाता है तो वह सागरिका को कैद आदि कर कष्ट देने के अपने कुकृत्य पर अत्यन्त पश्चात्ताप भी करती है और स्वयं महाराज को अपनी सपत्नी बनाने के लिये—'एतावदपि तावत् मे भगिनिकानुरूपं भवतु' कहकर अनुमति दे देती है। इतना ही नहीं बल्कि वह अपने हाथों ही सागरिका (अब पुनः रत्नावली) का सजाव-शृंगार करती है।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका में वासवदत्ता प्रेम और विनोद की कठपुतली सी बनी

रहता है। उसका व्यवहार अत्यन्त सुन्दर चित्रित किया गया है। वास्तव में वासवदत्ता भारतीय संस्कृति में पत्नी एक उत्तम ललना के रूप में आती है।

विदूषक (वसन्तक)

नाटकों में विदूषक को 'जान डालने वाला' माना जाता है। वह केवल नायक को हँसाने, प्रसन्न रखने का ही काम नहीं करता है अपितु प्रत्येक स्थिति में वह नायक का सहायक अर्थात् नर्म-सचिव भी होता है। वसन्तक भी इस नाटिका में इसी रूप में राजा उदयन को सर्वत्र प्रसन्न रखने का काम करता है। उसका राजा के प्रति निष्कपट प्रेम है। यहाँ तक कि सुसंगता द्वारा प्राप्त की हुई बहुमूल्य रत्नमाला भी वह अपने मित्र को ही सौंप देता है। उसकी धारणा है कि मित्र (उदयन) से बढ़कर संसार में कोई दूसरा व्यक्ति सुन्दर नहीं है—'कोऽन्यः कुसुमचापव्यपदेशेन निह्नुते'। वह राजा के प्रणय-व्यवहार में पूर्ण सहायता करता है। यद्यपि वसन्तसेना इस अपराध में उसे माधवीलता से बाँध तक देती है।

वह हास्यकर-स्वभाव का है। मदनमहोत्सव में अन्तःपुर की दो परिचारिकायें जब नाचती-गाती आती हैं तो उनके साथ स्वयं वह भी नाचने-गाने लगता है। चेटी द्वारा 'द्विपदी खण्ड' का नाम लेते ही 'खण्ड' (खांड) शब्द से वह लड्डुओं के लिये ललचा उठता है। वह निरा मूर्ख नहीं है अपितु बुद्धिमान् भी है क्योंकि 'वयस्य, नैते मधुकरा नूपुरशब्दमनुहरन्ति', 'नूपुरशब्द एवैष देव्याः परिजनस्य' कहकर भौंरों तथा नूपुर शब्दों का भेद बतलाता है। इस प्रकार विदूषक का भी उपयुक्त चरित्र चित्रित किया गया है।

अमात्य यौगन्धरायण

वास्तव में इस नाटिका का सम्पूर्ण उत्तर-दायी पात्र मन्त्री यौगन्धरायण ही है जो कि राजा उदयन का प्रधानामात्य है। अपने स्वामी के उत्कर्ष हेतु 'रत्नावली से विवाह करने वाला व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट् होगा' सिद्ध वाणी के अनुसार प्रत्येक उपाय करके भी वह राजा उदयन का सागरिका से विवाह कराने के अपने उद्देश्य में डटा रहता है। वह चाणक्य के समान कुशल कूटनीतिज्ञ तथा अपने स्वामी का अनन्य भक्त है। सिंहलेश्वर विक्रमबाहु द्वारा रत्नावली का उदयन से विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव ठुकराये जाने पर भी वह विचलित नहीं होता है बल्कि दृढ़ साहस से लावाणक की अग्नि में वासवदत्ता के जलने का मिथ्या प्रचार कर पुनः उससे विवाह का आग्रह करता है। वासवदत्ता को प्रसन्न रखने के लिये वह अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचता है। सागरिका नाम से दासी के रूप में अन्तःपुर में रत्नावली को रखकर उदयन का उसके प्रति सरलतया आकर्षण कराना, ऐन्द्रजालिक द्वारा अन्तःपुर के अग्निकाण्ड का दृश्य तथा आग से बचाने के लिये कैद की गई सागरिका के प्रति वासवदत्ता के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न करना एवं यथा समय सागरिका का स्वयं रहस्योद्घाटन कर वासवदत्ता द्वारा ही उस अपनी बहन रत्नावली को अपनी सपत्नी बनाने के लिये उदयन से अनुमति दिलाना यौगन्धरायण की ही बुद्धिमत्ता का परिचायक है। वास्तव में रत्नावली नाटिका प्रधानामात्य यौगन्धरायण की विलक्षण प्रतिभा का ही सुन्दरतम निदर्शन है।

पात्र-परिचयः

पुरुष-पात्राणि

राजा—उदयनः, कौशाम्बीनरेशः। (नायकः)

विदूषकः—उदयनस्य सखा वसन्तको नाम ब्राह्मणः।

यौगन्धरायणः—उदयनस्य प्रधानामात्यः।

विजयवर्मा—प्रधानसेनापतेः रुमण्वतो भागिनेयः।

बाभ्रव्यः—उदयनस्य कञ्चुकिः।

वसुभूतिः—सिंहलेश्वरस्य विक्रमबाहोः प्रधानामात्यः।

ऐन्द्रजालिकः—इन्द्रजालदर्शनोपजीवी।

सूत्रधारः—अभिनय-प्रबन्धकः।

स्त्री-पात्राणि

रत्नावली (सागरिका)—सिंहलेश्वरविक्रमबाहुसुता। (नायिका)

वासवदत्ता—राज्ञ उदयनस्य प्रधानमहिषी।

काञ्चनमाला—वासवदत्तायाः सहचरी।

सुसङ्गता—रत्नावल्याः सहचरी।

चूतलतिका, निपुणिका } वासवदत्तायाः दास्यौ।

वसुन्धरा—प्रतीहारी।

नटी—सूत्रधारस्य पत्नी।

स्थानम्

कौशाम्बीनगरी, (राज्ञः उदयनस्य राज्यम्।) याऽधुना 'इलाहाबादतः' दूरे 'कोसम' नाम्नाऽवस्थिता।

कालः

खृष्टीयस्य सप्तमशताब्दी।

॥ श्रीः ॥

महाकवि-श्रीहर्षदेवविरचिता

रत्नावली

'सुधा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

प्रथमोऽङ्कः

पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां
शम्भोः सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने।
ह्रीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया
विश्लिष्यन्कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः॥ १ ॥

अन्वयः—तदाराधने, मुहुः, पादाग्रस्थितया, स्तनभरेण, नम्रताम्, आनीतया, शम्भोः, सस्पृहलोचनत्रयपथम्, यान्त्या, सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया, ह्रीमत्या, गिरिजया, क्षिप्तः, शिरसि, ईहितः, अन्तरे, विश्लिष्यन्, कुसुमाञ्जलिः, वः, पातु ॥ १ ॥

तत्र श्रीहर्षदेवनामा कविः रत्नावलीं नाटिकां निर्मित्सुः निर्विघ्नतया तत्समाप्त्यर्थं मङ्गलमाचरन् नान्दीमुखमुपस्थापयति—पादाग्रस्थितयेति।

शिवजी की आराधना में उपस्थित, बार-बार पैरों के अग्रभाग (पंजों) पर खड़ी अर्थात् उचकती हुई परन्तु पयोधरों के भार से झुकी हुई, शंकरजी के लालसा युक्त तीनों नेत्रों से देखे जाने पर पुलकावली (रोमांच) पसीने एवं कम्पन से युक्त होने के कारण लज्जित

टिप्पणी—संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः पूजा, नमस्कार अथवा आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण से आरम्भ करने की परिपाटी है। नाटकों में इसको नान्दी कहा जाता है :—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देव-द्विज-नृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ (साहित्यदर्पण ६–२४)
आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः।
नान्दीति कथ्यते तस्यां पदादिनियमोऽपि वा ॥ (भरत नाट्यशास्त्र)

तदाराधने—तस्य = शिवस्य, आराधने = अर्चने । मुहुः = वारम्वारम् । पादाग्रस्थितया—पादयोः = चरणयोः, अग्रे = अग्रभागौ ताभ्याम् स्थितया = अवस्थितया 'तथा विघ्नमुन्नतिं गच्छन्त्या' इत्यर्थः । स्तनभरेण-स्तनयोः = कुचयोः भरः = भारः, तेन । नम्रताम् = अवनतिम् । आनीतया = प्रापितया । शम्भोः = शिवस्य, सस्पृहलोचनत्रयपथम्—स्पृहया सहितम् = सानुरागम्, लोचनान्तं त्रयम् = लोचनत्रयम्, सस्पृहञ्च तल्लोचनत्रयं सस्पृहलोचनत्रयम्, तस्य पन्थाः, तम् = सानुरागनयनत्रिमार्गम् । यान्त्या = गच्छन्त्या । सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया-पुलकाः = रोमाञ्चाः, स्वेदोद्गमः = धर्माविर्भावः, उत्कम्पश्च = वेपथुश्च तैः सहितया (अत एव) ह्रीमत्या = लज्जितया । गिरिजया = पार्वत्या । क्षिप्तः = प्रक्षिप्तः । शिरसि = मस्तके । ईहितः = इष्टः । अन्तरे = मध्ये । विशिलष्यन् = विकीर्णतां गच्छन्, कुसुमाञ्जलिः—कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् अञ्जलिः = पुष्पाञ्जलिः । वः = युष्मान् । (सामाजिकान्) । पातु = रक्षतु । इति । अत्र स्तनभरेणेत्यादि ह्रीमत्येत्यन्तानां पदानामञ्जलिक्षेपे हेतुत्वात् काव्यलिङ्गमलङ्कारः । तद्यथा—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' इति । शार्दूलविक्रीडितवृत्तञ्च यथा—'सूर्याश्वैर्मसजस्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ १ ॥

पार्वती जी के द्वारा शिव जी के शिर पर चढ़ाई गई किन्तु (रोमांच, स्वेद एवं कम्पन के कारण) बीच में ही विखर जाने वाली पुष्पाञ्जलि तुम सब (दर्शक सामाजिकों) की रक्षा करे ॥ १ ॥

कहीं 'नान्द्यन्ते । ततः प्रविशति सूत्रधारः' लिखकर मंगलाचरण किया जाता है तो कहीं मंगलाचरण के पश्चात् 'नान्द्यन्ते' इत्यादि । भरत मुनि के अनुसार—'सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः' अर्थात् सूत्रधार नान्दीपाठ मध्यम स्वर से करता है । रङ्गशाला के व्यवस्थापक को सूत्रधार कहते हैं । यथा—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥ इति

'स्तनभरेणानीतया नम्रताम्'—अर्थात् स्तनभार से झुकी स्त्रियों की संस्कृतसाहित्य एवं भारतीय मूर्तिकला की मर्यादा तथा विशेषता है । महाकवि कालिदास ने भी 'स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्' (रघुवंश सर्ग–१३) एवं स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम् (मेघदूत २–२२) द्वारा द्वारा वर्णन किया है ।

ह्रीमत्या—√ह्री + मतुप ।

अपि च—

> औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया
> तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।
> दृष्ट्वाऽग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे संगमे
> संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायास्तु वः ॥ २ ॥

अन्वयः—नवे, सङ्गमे, औत्सुक्येन, कृतत्वरा, सहभुवा, ह्रिया, व्यावर्तमाना, बन्धुवधूजनस्य तैः, तैः, वचनैः, पुनः आभिमुख्यम्, नीता, अग्रे, वरम्, दृष्ट्वा, संरोहत्पुलका, आत्तसाध्वसरसा, हसता, हरेण, श्लिष्टा, गौरी, वः, शिवाय, अस्तु ॥ २ ॥

पुनः द्वितीयं नान्दीपदमवतारयति कविः—औत्सुक्येनेति । नवे = नूतने । (विवाहानन्तरमिति) । सङ्गमे = समागमे । औत्सुक्येन = उत्कण्ठया । कृतत्वरा—कृता = विहिता, त्वरा = शीघ्रता यया सा तादृशी किन्तु सहभुवा—सह = साकं भवतीति सहभूस्तया = स्वाभाविकया । ह्रिया = लज्जया, व्यावर्त्तमाना = परावर्त-माना । बन्धुवधूजनस्य—बन्धुः = प्रियः, वधूजनः = भ्रातृजायादिसमूहः, तस्य । तैः तैः = अनेकविधैः । वचनैः = वाक्यैः । पुनः = भूयः । आभिमुख्यम् = साम्मु-ख्यम् । नीता = प्रापिता । ततः अग्रे = सम्मुखे । वरम् = परिणेतारं शङ्करम् । दृष्ट्वा = अवलोक्य । संरोहत्पुलका = संरोहन्तः = प्रादुर्भवन्तः पुलकाः = रोमाञ्चाः यस्याः सा । आत्तसाध्वसरसा = आत्तः = गृहीतः साध्वसस्य = भयस्य ('भीतिः साध्वसं भयम्' इत्यमरः) रसः = भावः—भयभावो यया सा तथा । हसता = स्मयमानेन । हरेण = शिवेन । श्लिष्टा = आलिङ्गिता । गौरी = पार्वती । वः = युष्माकं सामाजिकानाम् । शिवाय = कल्याणाय । अस्तु = भवत्विति । अत्र नवोढायाः यथावत् क्रियावर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः । तद्यथा—'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्' । इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

और भी—परिणयापरान्त नव (प्रथम) समागम में उत्सुकता से शीघ्रता करने वाली स्वाभाविक रूप से लज्जा के कारण वापस लौटने का उपक्रम किये हुये, प्रियजन (भौजाई आदि) के अनेक प्रकार के वचनों से पुनः सम्मुख ले जाई गई, सामने पति (शिवजी) को देखकर भयभीत तथा रोमाञ्चयुक्त, हँसते हुए शिवजी द्वारा आलिङ्गन की गई पार्वती जी तुम सब सामाजिकों के कल्याण के लिए होवें अर्थात् तुम सब का कल्याण करें ॥ २ ॥

औत्सुक्यम—उत्सुक+ष्यञ् (भावार्थक प्रत्यय) । व्यावर्तमाना—वि+आ+√वृत् +शानच् = लौटती हुई । आत्त—आ+√दा+क्त । वरम्—वृञ्+अप् ।

अपि च—

क्रोधेद्धैर्दृष्टिपातैस्त्रिभिरुपशमिता वह्नयोऽमी त्रयोऽपि
त्रासार्ता ऋत्विजोऽधश्चपलगणहृतोष्णीषपट्टाः पतन्ति।
दक्षः स्तौत्यस्य पत्नी विलपति करुणं विद्रुतं चापि देवैः
शंसन्नित्यात्तहासो मखमथनविधौ पातु देव्यै शिवो वः ॥३॥

अन्वयः—क्रोधेद्धैः, दृष्टिपातैः, अमी, त्रयः, अपि, वह्नयः, उपशमिताः, चपलगणहृतोष्णीषपट्टाः, त्रासार्त्ताः, ऋत्विजः, अधः, पतन्ति, दक्षः, स्तौति, अस्य, पत्नी, करुणम्, विलपति, अपि, च, देवैः, विद्रुतम्, इति देव्यै, मखमथनविधौ, शंसन्, आत्तहासः, शिवः, वः, पातु ॥ ३ ॥

एतत् तृतीयं नान्दीमवतारयति कविः—क्रोधेद्धैरिति। क्रोधेद्धैः-क्रोधेन = रुषा, इद्धैः = प्रदीप्तैः। दृष्टिपातैः = लोचनप्रक्षेपैः। अमी = प्रसिद्धाः। त्रयः अपि = दक्षिणगार्हपत्याहवनीयाः। वह्नयः = अग्नयः। उपशमिताः = शान्ताः बभूवुः। चपलगणहृतोष्णीषपट्टाः-चपलैः = चञ्चलैः गणैः = रुद्रगणैः = हृताः = दूरीकृताः उष्णीषपट्टाः-शिरोवेष्टनवस्त्राणि ('उष्णीषं तु शिरोवेष्टने' इति विश्वः) येषां ते। त्रासार्त्ताः—त्रासेन = भयेन आर्ताः = त्रस्ताः, ऋत्विजः = याजकाः। अधः = अधस्तले। पतन्ति = च्युताः भवन्ति। दक्षः = प्रजापतिः। स्तौति = स्तुतिं करोति (कोपशमनार्थमिति)। अस्य = दक्षस्य, पत्नी = भार्या। करुणम् विलपति = परिदेवयति-रोदिति वा। अपि च = तथा, देवैः = यज्ञे गृहीतभागैः

और भी—

'अत्यन्त क्रोध से जलते हुए दृष्टिपात से यह तीनों प्रकार की गार्हपत्य आदि अग्नि शान्त हो गईं। चञ्चल प्रमथादि गणों द्वारा उड़ाई गई पगड़ी वाले भय से व्याकुल ऋत्विग् नीचे गिरे जा रहे हैं। दक्ष प्रजापति स्तुति कर रहे हैं और उनकी पत्नी करुण क्रन्दन कर रही है। देवता भागे जा रहे हैं"। इस प्रकार (दक्ष यज्ञ विध्वंस काल में) पार्वती जी से अट्टहास करते हुए शङ्कर जी तुम सब सामाजिकों की रक्षा करें ॥ ३ ॥

इस तृतीय नान्दी पाठ में शिव जी को अपमानित करने पर अपने पिता दक्ष के यज्ञ में कूद कर जलने की सती जी की घटना की ओर इंगित किया गया है। त्रयोऽपि वह्नयः = गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिण नामक तीन यज्ञाग्नि। वह्नि = √वह्+नि (उणादि प्रत्यय)। ऋत्विज = ऋतु+√यज्+क्विप्। यज्ञ में ४ प्रमुख होते थे—होता, उद्गाता, अध्वर्यु एवं ब्रह्मा। विद्रुतम्—वि+√द्रु+क्त।

अपि च—

जितमुडुपतिना नमः सुरेभ्यो द्विजवृषभा निरुपद्रवा भवन्तु ।
भवतु च पृथिवी समृद्धसस्या प्रतपतु चन्द्रवपुर्नरेन्द्रचन्द्रः ॥ ४ ॥

सुरैः । विद्रुतम्—भयात् पलायनं कृतम् । इति=इत्थम् । देव्यै=गौर्यै । मखमथनविधौ-मखस्य=यज्ञस्य मथनम्=विध्वंसनम्, तस्य विधौ=विधाने (दक्षयज्ञविध्वंसकर्मणि) शंसन्=कथयन् । आत्तहासः-आत्तः=गृहीतः हासो येन सः । शिवः=हरः । वः=युष्मान् सामाजिकान्, पातु=रक्षतु । अत्र स्रग्धरा-वृत्तम् । यथा—'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' ॥ ३ ॥

अन्वयः—उडुपतिना, जितम्, सुरेभ्यः, नमः, द्विजवृषभाः, निरुपद्रवाः, भवन्तु, पृथ्वी, समृद्धसस्या भवतु, नरेन्द्रचन्द्रः, चन्द्रवपुः, प्रतपतु ॥ ४ ॥

एतच्चतुर्थं श्लोकं माङ्गलिकं कविरवतारयति—जितमिति । उडुपतिना—उडूनाम्=नक्षत्राणाम् पतिः=स्वामी, तेन चन्द्रेण । ('तारकाप्युडु वा स्त्रियाम्' इत्यमरः) । अत्र लाक्षणिकया चन्द्रवंशीयेन श्रीहर्षेणेत्यर्थः । जितम्=सर्वोत्कर्षेण वर्तितम् । सुरेभ्यः=देवेभ्यः । नमः=नमस्कारः । द्विजवृषभाः-द्विजाः वृषभा, इवेति=ब्राह्मणश्रेष्ठाः । निरुपद्रवाः=उपद्रवरहिताः । भवन्तु=सन्तु । पृथ्वी=भूमिः । समृद्धसस्या-समृद्धं सस्यं यस्यां सा=प्रभूतव्रीह्यादियुक्ता भवतु=जायताम् । नरेन्द्रचन्द्रः-नरेन्द्रः चन्द्र इवेति=नृपतिः । चन्द्रवपुः-चन्द्र इव वपुः यस्य सः=चन्द्रवदाह्लादकरः सन् अपि । प्रतपतु=प्रतापं प्रकटयतु । अत्र उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्रावृत्तम् । तद्यथा—'अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरजाश्च पुष्पिताग्रे'ति ॥ ४ ॥

और भी—

चन्द्रमा (चन्द्रवंशीय राजाओं) की जय हो, देवताओं के लिए प्रणाम है । श्रेष्ठ ब्राह्मण उपद्रव रहित होवें, पृथ्वी शस्य (फसल) से सम्पन्न बने । राजाधिराज (श्रीहर्ष) चन्द्रमा के समान सुन्दर एवं सौम्य प्रकृति के होते हुए प्रताप का विस्तार करें ॥ ४ ॥

इस चतुर्थ श्लोक में मङ्गल कामना की गई है ।

द्विजवृषभाः—वृषभ, पुंगव, व्याघ्र आदि शब्द अन्त में जुड़ने पर श्रेष्ठार्थ सूचक होते हैं । यथा—'स्युरुत्तरपदे व्याघ्र-पुंगवर्षभकुंजराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः' इत्यमरः ।

(नान्द्यन्ते ।)

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण । अद्याहं वसन्तोत्सवे सबहुमानमाहूय नानादिग्देशागतेन राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्तो यथा–अस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता । सा चास्माभिः श्रोत्रपरम्परया श्रुता न तु प्रयोगतो दृष्टा । तत्तस्यैव राज्ञः सकलजनहृदयाह्लादिनो बहुमानादस्मासु चानुग्रहबुद्धया

नान्द्यन्त इति । नान्द्याः रङ्गविघ्नोपशान्तये कृताशीर्नमस्कारादिमङ्गलाचरण-रूपायाः, अन्ते सूत्रधारः प्रविश्याहेत्याशयः । नन्दयति = आनन्दं जनयतीति वा नान्दी ।

अतिविस्तरेण = अतिप्रसङ्गेन । अलम् = पर्याप्तम् । अद्य = वसन्तोत्सवे प्रारम्भेऽस्मिन् । अहम् = सूत्रधारः । नानादिग्देशागतेन—नाना=अनेके ये दिशाम्= काष्ठानाम्, देशाः = प्रदेशाः ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः ।) तेभ्यः आगतेन = समायातेन । राज्ञः = श्रीहर्षदेवस्य, एतन्नामकस्य चन्द्रवंशीयनृपस्ये-त्यर्थः । पादपद्मोपजीविना–पादौ पद्म इवेति पादपद्मे, ते उपजीवति = स्वाश्रयी करोतीति पादपद्मोपजीवी, तेन = चरणकमलोपासकेन । राजसमूहेन = नृपवृन्देन । सबहुमानम् = ससम्मानम् । आहूय = आकार्य । उक्तः = विज्ञप्तः । यथा—अस्मत्स्वामिना = अस्मत्पालकेन । श्रीहर्षदेवेन = तन्नामकेन राज्ञा । अपूर्ववस्तु-रचनालङ्कृता = न पूर्वमपूर्वम् = नूतनम् तद् वस्तु = कथावस्तु तस्य रचनया = निर्माणेन । अलंकृता = भूषिता, रत्नावली नाम=रत्नावलीति संज्ञिता । नाटिका= रूपकविशेषः । कृता = रचिता । सा = रत्नावली नाटिका च । अस्माभिः = सामाजिकैः । श्रोत्रपरम्परया = श्रोत्राणां परम्परा तया = कर्णाकर्णितया । श्रुता= श्रुतिपथानीता । न तु प्रयोगतः=अभिनयद्वारा । दृष्टा=अवलोकिता । तत्=तस्मात्

सूत्रधार—अधिक विस्तार व्यर्थ है । मुझे आज वसन्तोत्सव पर आदर के साथ बुला कर अनेक दिशाओं (स्थानों) से आये हुए, राजा श्रीहर्षदेव के चरण कमल के आश्रित राजाओं के समूह ने कहा है कि हमारे स्वामी श्रीहर्षदेव ने अपूर्व वस्तु रचना से अलंकृत रत्नावली नाम की नाटिका की रचना की है और वह हम लोगों ने कानों से तो सुनी है पर अभिनय रूप से नहीं देखी है । (तुम) उन्हीं महाराज (श्रीहर्ष) की सभी लोगों के

नाटिका—नाटक के १८ उपभेदों में से एक, जिसमें प्रायः चार अङ्क, कैशिकी वृत्ति तथा स्त्रीपात्र होते हैं । यथा—'नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात्स्त्रीप्राया चतुरङ्किका । प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥' इति ।

यथावत्प्रयोगेण त्वया नाटयितव्येति । तद्यावदिदानीं नेपथ्यरचनां कृत्वा यथाभिलषितं सम्पादयामि । (परिक्रम्य अवलोक्य च ।) अये आवर्जितानि सकलसामाजिकानां मनांसीति मे निश्चयः । कुतः—

श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।

कारणात् । तस्यैव सकलजनहृदयाह्लादिनः=सकलानां जनानां हृदयानि आह्लादयतीति तस्य = निखिललोकमनोरञ्जकस्य । राज्ञः = श्रीहर्षदेवस्य । बहुमानात्= अत्यादरात् । अस्मासु = प्रजाजनेषु । अनुग्रहबुद्ध्या = कृपया च । यथावत् = समुचितम् । प्रयोगेण = अभिनयेन । त्वया = नटचा । नाटयितव्या = अभिनयेन प्रयोक्तव्या इति । तत् = अतः । यावत् = यावत्कालम् । इदानीम् = सम्प्रति । नेपथ्यरचनाम् = वेषविन्यासम् ('आकल्पवेषौ नेपथ्यम्' इत्यमरः) कृत्वा = विधाय, यथाभिलषितम् = इच्छानुसारम् । सम्पादयामि=विदधामि । (परिक्रम्य, अवलोक्य च) अये = इति प्रसन्नतासूचकं सम्बोधनम् । सकलजनमनांसि— सकलानां जनानां मनांसि = सकलसमाजचेतांसि । आवर्जितानि = आकृष्टानि । इति । मे = मम सूत्रधारस्येति । निश्चयः = विश्वासः । कुतः—

अन्वयः—श्रीहर्षः, निपुणः, कविः, एषा, परिषद्, अपि, गुणग्राहिणी, वत्सराजचरितम् च लोके हारि, वयम्, च, नाटये, दक्षाः, इह, एकैकम्, अपि, वस्तु, वांछितफलप्राप्तेः, पदम्, पुनः, मद्भाग्योपचयाद्, अयम्, गुणानाम्, सर्वः गणः समुदितः, किम् ॥ ५ ॥

श्रीहर्ष इति । श्रीहर्षः=तदाख्यो नाटिकायाः रचयिता । निपुणः=दक्षः, कविः

मन को प्रसन्न करने वाले हम (कवि) पर अति सम्मान तथा कृपा बुद्धि से यथोचित अभिनय द्वारा उस नाटिका को अभिनीत करो। अतएव अब जब तक नेपथ्य रचना करके इच्छानुकूल सब कार्य पूर्ण करता हूँ। **(घूमकर और देखकर)** अहा ! सभी सामाजिकों (नाटक दर्शकों) के मन हमने अपनी ओर आकृष्ट कर लिये हैं ऐसा मेरा विश्वास है। क्योंकि—

श्रीहर्षदेव निपुण कवि हैं, यह परिषद् (दर्शक सभा) भी गुणों को ग्रहण करने

नेपथ्यम्—नाट्यशाला में वेष विन्यास अथवा प्रसाधन का स्थान। यथा—'रामादिव्यञ्जको वेषो नटे नेपथ्यमुच्यते' इति (भरतनाट्यशास्त्र)।

आवर्जितानि—आ + √वृज् + णिच् + क्त ।

इस श्लोक में सभासदों को प्रवृत्ति की उन्मुख करने के कारण प्ररोचना नामक भारती

वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुन-
मँद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥ ५ ॥

तद्यावद् गृहं गत्वा गृहिणीमाहूय संगीतकमनुतिष्ठामि (परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य च ।) इदमस्मदीयं गृहम् । यावत्प्रविशामि । (प्रविश्य ।) आर्ये ! इतस्तावत् ।

=काव्यकर्त्ता (अस्ति)। एषा परिषद् अपि = इयम् पुरः समुपस्थिता सभा अपि, गुणग्राहिणी = गुणानाम् ग्राहिणीति = गुणविवेकिनी (वर्तते)। वत्सराजचरितम् = वत्सराजस्य = उदयनस्य चरितम् = चरित्रम् च लोके = संसारे, हारि= चित्ताकर्षकम् । वयम् = अभिनयप्रयोक्तारः च नाट्ये = अभिनयकर्मणि । दक्षाः= प्रवीणाः । इह = अत्र । एकैकम् = प्रत्येकम् । अपि वस्तु = पदार्थं । वांछितफलप्राप्तेः—वांछितस्य = अभीप्सितस्य फलस्य = परिणामस्य । प्राप्तेः = सम्प्राप्तेः । पदम्=स्थानम् । ('पदं व्यवसितं त्राणस्थानलक्ष्मांघ्रिवस्तुषु' इत्यमरः) पुनः=तर्हि । मद्भाग्योपचयात् = मम प्रधाननटस्य भाग्यस्य = शुभादृष्टस्य उपचयात् = समृद्धेः अयम् = एषः गुणानां गणः=गुणसमृद्धिः । समुदितः = एकत्रीभूय स्थितः, किमिति जिज्ञासायाम् । तन्नूनमेतेन सामाजिकानाम् मनोरञ्जनं भवेत् इत्याशयः । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५ ॥

तद्यावदिति । गृहम् = भवनम् । गत्वा = यात्वा । गृहिणीम्=गृहस्वामिनीम् । आहूय = आकार्य । संगीतकम् = नृत्यादिकम् । अनुतिष्ठामि = स्थापयामि । परिक्रम्य, नेपथ्याभिमुखम्—नेपथ्यस्य अभिमुखम् = सम्मुखम् जवनिकासम्मुखम् । अवलोक्य = दृष्ट्वा ।

वाली है, वत्सराज उदयन का चरित्र अतीव हृदयहारी है तथा हम सब नाट्य कर्म में दक्ष हैं । इस प्रकार एक एक गुण का होना भी वांछितफल (सफलता) दिलाने वाला होता है तो फिर यहाँ हमारे सौभाग्य से समस्त गुण एकत्र प्राप्त हो रहे हैं ॥ ५ ॥

अत एव तब तक घर जाकर पत्नी को बुला कर संगीत कार्य प्रारम्भ करता हूँ (घूम कर तथा नेपथ्य की ओर देखकर) यही मेरा घर है । तो प्रवेश करूँ । (प्रविष्ट होकर) आर्ये ! इधर तो आओ ।

वृत्ति का अङ्ग है । यथा—उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना । (दशरूपक) । हारि—√हृ+णिनि । उपचय--उप+√चि+अच् ।

संगीतकम् = नृत्यगीतवाद्यादि संगीतक कहलाता है । यथा—नृत्यगीतादिकं वाद्यं त्रयं संगीतमुच्यते । (संगीत रत्नाकर) ।

नटी—अज्जउत्त ! इअम्हि आणवेदु अज्जो को णिओओ अणुचिट्ठीअदुत्ति । [**आर्यपुत्र ! इयमस्मि । आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति ।**]

सूत्रधारः—आर्ये ! रत्नावलीदर्शनोत्सुकोऽयं राजलोकः । तद् गृह्यतां नेपथ्यम् ।

नटी—(निःश्वस्य । सोद्वेगम् ।) अज्जउत्त ! णिच्चिन्तो दाणि सि तुमं ता कीस ण णच्चसि मह उण मन्दभाआए एक्का ज्जेव दुहिदा । सावि तुए कहिंपि देसन्तरे दिण्णा । कहं एव्वं दूरदेसट्ठिदेण भत्तुणा सह से पाणिग्गहणं भविस्सदि त्ति इमाए चिन्ताए अप्पावि मे ण पडिहवि । किं पुण णच्चिदव्वम् ? [**आर्यपुत्र ! निश्चिन्त इदानीमसि त्वं तत्कस्मान्न नृत्यसि । मम पुनर्मन्दभाग्याया एकैव दुहिता । सापि त्वया कस्मिन्नपि देशान्तरे दत्ता । कथमेवं दूरदेशस्थितेन भर्त्रा सहास्याः पाणिग्रहणं भविष्यतीत्यनया चिन्तयात्मापि मे न प्रतिभाति । किं पुनर्नर्तितव्यम् ?]**

आर्यपुत्र ! = स्वामिन् ! नियोगः = आदेशः । अनुष्ठीयताम् = विधीयताम् । रत्नीवलीति—रत्नावल्याः = एतन्नाटिकायाः । दर्शने = अवलोकने । उत्सुकः = उत्कण्ठितः यः सः । राजलोकः = राज्ञां लोकः = राजसमाजः । नेपथ्यम्=वेषः ।

नटीति । सोद्वेगम्=सखेदम् । निश्चिन्तः=गृहकार्यादिनिवृत्तः । मन्दभाग्यायाः= मन्दं भाग्यं यस्यास्तस्याः = अल्पभाग्यायाः । दुहिता = कन्या । देशान्तरे=भिन्न-

---

नटी—(**प्रवेश करके**) आर्यपुत्र ! मैं यह उपस्थित हूँ । आज्ञा दीजिये कौन सा आदेश सम्पन्न किया जावें ।

सूत्रधार—आर्य ! यह राज समाज रत्नावली नाटिका का अभिनय देखने के लिए उत्सुक है । अतः वेष धारण कर लिया जावे ।

नटी—(**निःश्वास लेकर उद्वेग से**) आर्यपुत्र ! आप इस समय निश्चिन्त हैं तो क्यों नहीं नाचूँगी । पर मुझ मन्दभागिनी के तो एक ही कन्या है उसे तुमने 'कहीं दूर देश में रहने वाले पति के साथ इसका विवाह होगा' यह कहा है । इस चिन्ता से मुझे अपनी भी सुध नहीं रहती है । तो फिर नाचना क्या ?

आर्यपुत्र—नाट्यशास्त्र में पति को आर्यपुत्र तथा पत्नी को आर्ये शब्द से सम्बोधित किया जाता है । यथा—सर्वस्त्रीभिः पतिर्वाच्यः आर्यः पुत्रेति यौवने । (भरत नाट्यशास्त्र) । नाटक में नायक अथवा विशिष्टपात्र के अतिरिक्त नायिका सहित समस्त स्त्री तथा नीच पात्रों की प्राकृत भाषा रहती है । यथा—'आर्यावर्तप्रसूतासु सर्वास्वेव हि जातिषु । शौरसेनीं समाश्रित्य भाषां काव्ये प्रयोजयेत् ॥' (भरत नाट्यशास्त्र) । नियोगः- नि√युज्+घञ् ।

सूत्रधारः—आर्ये ! दूरस्थितेनेत्यलमुद्वेगेन । पश्य—

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥ ६ ॥

(नेपथ्ये)

साधु भरतपुत्र ! साधु । एवमेतत् । कः सन्देहः ? (द्वीपादन्यस्मादिति पठति)

सूत्रधारः—(आकर्ण्य । नेपथ्याभिमुखमवलोक्य । सहर्षम्) आर्ये ! एष मम यवीयान्भ्राता गृहीतयौगन्धरायणभूमिकः प्राप्त एव । तदेहि । आवामपि नेपथ्यग्रहणाय सज्जीभवावः ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

इति प्रस्तावना

प्रदेशे । दत्ता = वाचा समर्पिता । भर्त्रा = स्वामिना । पाणिग्रहणम् = विवाहः । प्रतिभाति = रोचते । नर्तितव्यम् = नर्त्तनम् । उद्वेगेन = खेदेन ।

अन्वयः—अभिमुखीभूतः,विधिः, अन्यस्मात्, द्वीपात्, अपि, जलनिधेः, मध्यात् अपि, दिशः, अन्तात् (अपि), अभिमतम्, आनीय, झटिति, घटयति ॥ ६ ॥

द्वीपादिति । द्वीपात् = अन्तरीपात् । अपि च, जलनिधेः = सागरस्य, मध्यात् = अन्तरालात् । अपि च, दिशः=काष्ठायाः ('दिशस्तु ककुभः काष्ठा' इत्यमरः) अन्तात् = अन्तिमभागात् । (अपि च) अभिमतम्=अभीष्टम् (वस्तु) । झटिति= शीघ्रम् । आनीय = उपकल्प्य । घटयति = मेलयति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः । आर्यावृत्तम् । तद्यथा-'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रा तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या' इति ॥ ६ ॥

साध्विति । भरतपुत्र = तत्सम्बोधनम् । यवीयान् = कनिष्ठः ('यवीयोऽवर-

---

सूत्रधार—आर्ये ! उस (पति) के साथ दूर रहने की चिन्ता करना व्यर्थ है । देखो- अनुकूल भाग्य दूसरे द्वीप से, समुद्र के मध्य से तथा दिशाओं के छोर से भी लाकर अभीष्ट वस्तु (अथवा व्यक्ति) को शीघ्रता से मिला देती है ॥ ६ ॥

(नेपथ्य में)

वाह वाह भरतपुत्र ! ऐसा ही है । (इसमें) क्या सन्देह है ? ('अन्य द्वीप से' इत्यादि श्लोक कहने लगता है) ।

सूत्रधार—(सुन कर, नेपथ्य की ओर देख कर प्रसन्नता के साथ) आर्ये ! यह

घटयति—√घट+णिच् (लट् प्रथम पु०, एकवचन) ।

भरत पुत्र—नाट्यशास्त्राचार्य श्री भरत मुनि के नाम पर सूत्रधार को भी आदर से भरत पुत्र से सम्बोधित किया जाता है ।

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः ।)

यौगन्धरायणः—एवमेतत् । कः सन्देहः ? (द्वीपादन्यस्मादिति पुनः पठित्वा ।) अन्यथा क्व सिद्धादेशप्रत्ययप्रार्थितायाः सिंघलेश्वरदुहितुः समुद्रे प्रवहणभङ्गनिमग्नायाः फलकासादनं क्व च कौशाम्बीयेन वणिजा सिंह-

---

जानुजः' इत्यमरः) गृहीतयौगन्धरायणभूमिकः—गृहीता यौगन्धरायणस्य भूमिका येन सः = कृतयौगन्धरायणमन्त्रिवेषः ('भूमिकारचनायां तु रूपान्तरपरिग्रहे' इति हैमः) । प्राप्तः = आगतः ।

यौगन्धरायणेति । अन्यथा = प्रतिकूलभाग्ये । सिद्धादेशप्रत्ययप्रार्थितायाः—सिद्धस्य आदेशः, तत्र यः प्रत्ययस्तेन प्रार्थिता या सा तस्याः = सिद्धपुरुषविश्वास-

---

मेरे छोटे भाई यौगन्धरायण (वेष बनाकर) बन कर आ ही गये हैं । अतः आओ । हम दोनों भी वेष बदलने के लिए तैयार हो जायँ ।

(दोनों निकल जाते हैं ।)

इति प्रस्तावना ।

(तब यौगन्धरायण प्रवेश करता है ।)

यौगन्धरायण—ऐसा ही है । (इसमें) क्या सन्देह है ? ('द्वीपादन्यस्मादिति' पुनः पढ़कर) अन्यथा कहाँ तो सिद्ध पुरुष के वचनों के विश्वास से माँगी गई सिंघलेश्वर कन्या का समुद्र में पोत भङ्ग हो जाने से डूबी हुई का तख्ता पा जाना, और कहाँ सिंघल देश से

प्रस्तावना—नटी, विदूषक अथवा परिपार्श्वक आदि सूत्रधार के सहित विचित्र प्रकार से परस्पर जो अभिनेय वार्त्तालाप करते हैं, नाट्यशास्त्र में वह प्रस्तावना अथवा आमुख कहलाता है । यथा—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिता संल्लापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैः वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥ इति ।

(साहित्यदर्पण ६–३३, ३४ ।)

सिंघल द्वीप—यह लंका के निकट था । यथा—जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ एके उपदिशन्ति, तत्तथा—स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्त्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंघलो लङ्केति ।

कौशाम्बी—आधुनिक इलाहाबाद से ३० मील दूर कुश-पुत्र द्वारा बसाई गई प्राचीन काल में कौशाम्बी नगरी थी । यथा—

लेभ्यः प्रत्यागच्छता तदवस्थायाः संभावनं रत्नमालाचिह्नायाः प्रत्यभिज्ञानादिहानयनं च। (सहर्षम्।) सर्वथा स्पृशन्ति नः स्वामिनमभ्युदयाः। (विचिन्त्य।) मयापि चैनां देवीहस्ते सगौरवं निक्षिपता युक्तमेवानुष्ठितम्। श्रुतं च मया—बाभ्रव्योऽपि कञ्चुकी सिंहलेश्वरामात्येन वसुभूतिना सह कथं कथमपि समुद्रादुत्तीर्य कोशलोच्छित्तये गतवता रुमण्वता मिलित इति। तदेवं निष्पन्नप्रायमपि प्रभुप्रयोजनं न मे धृतिमावहतीति कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः। कुतः—

याचितायाः। सिंघलेश्वरदुहितुः = सिंघलेश्वरस्य = सिंघलराजस्य या दुहिता = पुत्री, तस्याः = रत्नावल्याः। समुद्रे = सागरे। प्रवहणभङ्गनिमग्नायाः—प्रवहणस्य = पोतस्य भङ्गः = नाशः तेन निमग्नायाः। ('पोतः प्रवहणं स्मृतम्' इति हलायुधः।) फलकस्य = काष्ठपटलस्य, आसादनम् = प्राप्तिः। कौशाम्बीयेन—कौशाम्ब्यां भवस्तेन = कौशाम्बीवासिना। वणिजा = व्यापारिणा। सिंघलेभ्यः = सिंघलदेशात्। प्रत्यागच्छता = परावर्तमानेन। तदवस्थायाः = विपत्तिपतितायाः।

लौटते हुए कौशम्बी निवासी व्यापारी का इस अवस्था (जल में डूबी हुई) में सामने आना तथा रत्नावली (माला) की पहचान वाली उसकी पहिचान कर यहाँ ले आना। (प्रसन्नता से) इस प्रकार से अभ्युदय हमारे स्वामी उदयन को स्पर्श कर रहे हैं। (सोचकर) और मैंने भी महारानी जी के हाथ में गौरव सहित इसको सौंप कर ठीक किया है। मैंने सुना है—बाभ्रव्य नामक अन्तःपुरवासी कञ्चुकी भी सिंघलेश्वर के मन्त्री वसुभूति के साथ किसी प्रकार समुद्र को पार कर कौशल राज्य का विनाश करने के लिए गये हुए रुमण्वान् से मिल गया है। इस प्रकार स्वामिकार्य लगभग पूर्ण हो जाने पर भी मुझे धैर्य नहीं हो रहा है। वास्तव में सेवा कार्य कष्ट-दायक होता है। क्योंकि—

यो गङ्गयापहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवत्स्यतीति।

(महाभारत १४-२१-२)

मतान्तर से मध्य देश में इसकी स्थिति मानी गई है तथा इसी का दूसरा नाम वत्स देश भी कहा गया है। यथा—

"अस्ति वत्सदेश इति ख्यातो देशो दर्पोपशान्तये।
स्वर्गस्य निर्मितो धात्रा प्रतिमल्ल इव क्षितौ॥
कौशाम्बी नाम तत्रास्ति मध्यभागे महापुरी"।

(कथासरित्सागर ९।४।६।)

कञ्चुकी—अन्तःपुरवासी वृद्ध नपुंसक सेवक।
उच्छित्तये—उत् + √छिद् + क्तिन्। (चतुर्थ्येकवचन)।

प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ
दैवेनेत्थं दत्तहस्तावलम्बे ।
सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि
स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः ॥ ७ ॥

सम्भावनम् = आश्वासनम्, उद्धरणसान्त्वनावचोभिः सम्मानम् इत्यर्थः । रत्नमाला-प्रत्यभिज्ञानात्—रत्नमालायाः प्रत्यभिज्ञानम्, तस्मात् = हीरकादिबहुमूल्यमणिनिर्मितस्रक्परिचयात् । इह = कौशाम्ब्याम् । आनयनम् = प्रापणम् । सर्वथा = सर्वप्रकारेण । अभ्युदयाः = सिद्धयः । नः = अस्माकम् । स्वामिनम् = प्रभुम् वत्सराजम् । स्पृशन्ति = आनयन्ति । अनुष्ठितम् = कृतम् । बाभ्रव्यः = अन्तःपुरवासी कञ्चुकी । अमात्येन = मन्त्रिणा । कोशलोच्छित्तये=कोशलस्य उच्छित्तये=कोसलराज्यविनाशाय । निष्पन्नप्रायम् = सम्पन्नजातमेव । धृतिभावम् = धैर्यम् । आदहति = धारयति । भृत्यभावः = दासत्वम् ।

अन्वयः—स्वामिनः, वृद्धिहेतौ, अस्मिन्, प्रारम्भे, दैवेन, इत्थम्, हस्तदत्तावलम्बे, सिद्धेः, भ्रान्तिः, न, अस्ति, सत्यम्, तथापि, स्वेच्छाचारी, (अहम्) भर्त्तुः, भीतः, एव अस्मि ॥ ७ ॥

प्रारम्भ इति । स्वामिनः = प्रभोः (उदयनस्य) । वृद्धिहेतौ—वृद्धेः हेतौ = उन्नत्यर्थम् । अस्मिन् = एतस्मिन् । प्रारम्भे = रत्नावल्या सह उदयनस्य परिणयकार्ये । दैवेन = भाग्येन । इत्थम् = अनेकप्रकारेण हस्तदत्तावलम्बे—दत्तः हस्तस्यावलम्बः येन तत्, तस्मिन् = विहितानुकूलसहायके सति । सिद्धेः=सफलतायाः । भ्रान्तिः = भ्रमः । न अस्ति = नैव वर्त्तते । (इति) सत्यम् = तथ्यम् ('सत्यं कृते च तदर्थतथ्यम्' इति मेदिनी ।) तथापि = तदापि । स्वेच्छाचारी—स्वेच्छया चरतीति = स्वतन्त्रः । अहम् = बाभ्रव्यः । भर्त्तुः = स्वामिन उदयनात् । भीतः = त्रस्तः । एवास्मि । अत्र शालिनीवृत्तम् । तद्यथा—'मात्तौ गौ चेच्छालिनीवेदलोकैः' इति ॥ ७ ॥

(स्वामि कार्य) अभ्युदय के लिए आरम्भ किये गये इस कार्य में भाग्य ने इस प्रकार सहायता की है कि सिद्धि में कोई भ्रम अथवा संशय नहीं है, यह सच है, तथापि स्वेच्छा से कार्य करने वाला मैं (बाभ्रव्य) स्वामी उदयन से डर ही रहा हूँ ॥ ७ ॥

'दासत्व' अत्यन्त कठिन कार्य है । इसमें पूर्णरूपेण सफलता की आशा होते हुए भी सदा भ्रम बना रहता है ।

स्वेच्छाचारी—स्व + इच्छा + √चर् + णिनि (इन) ।

(नेपथ्ये कलकलः ।)

योग०—(आकर्ण्य ।) अये ! मधुरमभिहन्यमानमृदुमृदङ्गानुगतसंगीतमधुरः पुरः पौराणां समुच्चरति चर्चरीध्वनिस्तथा तर्कयामि यदेनं मदनमहमहीयांसं पुरजनप्रमोदमवलोकयितुं प्रासादाभिमुखं प्रस्थितो देव इति। य एषः—

विश्रान्तविग्रहकथो रतिमाञ्जनस्य
चित्ते वसन्प्रियवसन्तक एव साक्षात्।
पर्युत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय
वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति ॥ ८ ॥

मधुरमिति । मधुरम् = कर्णप्रियम् । अभिहन्यमानमृदुमृदङ्गानुगतसंगीतमधुरः—अभिहन्यमानः = करतलेन ताड्यमानः, मृदुः = मृदुलः, यो मृदङ्गम् = वाद्यविशेषस्तेनानुगतम् = मिलितम् यत् सङ्गीतम् = गानम्, तेन मधुरः = श्रुतिसुखकरः । चर्चरीध्वनिः = हस्ततालशब्दः । समुच्चरति = उत्पद्यते । तर्कयामि = सम्भावयामि । मदनमहमहीयांसम्—मदनस्य = मन्मथस्य महः = उत्सवः, तेन महीयान्, तम् ('मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः' इत्यमरः ('मह उद्धव उत्सव' इत्यपि) । पुरजनप्रमोदम् = पुरजनानामानन्दम् । प्रासादाभिमुखम् = राजमन्दिरमुखम् । देवः = उदयनः ।

अन्वयः—विश्रान्तविग्रहकथः, रतिमान्, जनस्य, चित्ते, वसन्, प्रियवसन्तकः, निजमहोत्सवदर्शनाय, पर्युत्सुकः, वत्सेश्वरः, साक्षात्, एव, कुसुमचाप, इव अभ्युपैति ॥ ८ ॥

विश्रान्त इति । विश्रान्तविग्रहकथः—विश्रान्ताः = समाप्ताः विग्रहस्य =

(नेपथ्य में कलकलध्वनि होती है)

यौगन्धरायण—(सुनकर) मधुरता से बजाये हुए कोमल मृदङ्ग की संगति करने वाले गीत के कारण चित्ताकर्षक यह पुरवासियों की करतलध्वनि हो रही है। इससे ज्ञात होता है कि इस मदन महोत्सव से उत्पन्न पुरवासियों के आनन्द को देखने के लिए महाराज राजप्रासाद की अटारी की ओर जा रहे हैं। जो यह—

(शत्रुओं के न रहने के कारण) युद्ध चर्चाओं से शान्त, अनुरागी तथा प्रजाजन के

चर्चरी—वाद्यविशेष, गीतभेद, ताली बजाना, अनेक शब्दों का मिश्रण, हर्ष, क्रीडा आदि नानार्थक है।

मदन महोत्सव—वसन्त ऋतु के आरम्भ में मनाया जाने वाला प्राचीन उत्सव। आज

(ऊर्ध्वमवलोक्य ।) अये ! कथमधिरूढ एव देवः प्रासादम् । तद्यावद् गृहं गत्वा कार्यशेषं चिन्तयामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशत्यासनस्थो गृहीतवसन्तोत्सववेषो राजा विदूषकश्च ।)

राजा—(सहर्षमवलोक्य ।) सखे वसन्तक ।

युद्धस्य कथाः = चर्चा यस्य सः । रतिमान्—रतिः = अनुरागो विद्यते यस्मिन् सः = अनुरागी । ('रतिः स्त्री स्मरदारेषु रागे सुरतगुह्ययोः' इति मेदिनी) जनस्य = लोकस्य । चित्ते = मनसि । वसन् = निवसन् । प्रियः = प्रेमभाजनम् । वसन्तकः = एतदभिधानो विदूषकः यस्य सः । निजमहोत्सवदर्शनाय—निजस्य = स्वस्य महोत्सवस्य = वसन्तोत्सवस्य दर्शनाय = अवलोकनाय । पर्युत्सुकः = उत्कण्ठितः । वत्सेश्वरः = वत्सराज उदयनः । साक्षात् एव = सदेह एव । कुसुमचापः = कुसुमायुधः । इव = यथा । अभ्युपैति = समागच्छति । अत्रोपमालंकारः । वसन्ततिलका-वृत्तम् । तद्यथा—'ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' इति ॥ ८ ॥

तदिति । तत् = अतः । कार्यशेषम् = अवशिष्टं कार्यम् ।

चित्त में निवास करने वाले वसन्तक नाम विदूषक के मित्र अपने वसन्तोत्सव को देखने के लिए उत्कण्ठित वत्सेश्वर उदयन साक्षात् कामदेव के समान आ रहे हैं ॥ ८ ॥

(ऊपर देखकर) अरे, महाराज महल पर आ गये ?

अतः जब तक घर जाकर शेष कार्य सोचता हूँ । **(यह कह कर निकल जाता है ।)**

इति विष्कम्भक ।

(तब आसन पर बैठे हुए वसन्तोत्सव का वेष धारण किये हुए राजा तथा वसन्तक (विदूषक) प्रवेश करते हैं ।)

राजा—(सहर्ष देखकर) मित्र वसन्तक !

कल इसे वसन्त पञ्चमी तथा (कतिपय) होलिकोत्सव मानते हैं । यह सामन्ती विलासिता का द्योतक था जिसे राजा तथा प्रजा मिलकर मनाते थे ।

अभ्युपैति—अभि + उप + √इण् (गतौ) ।

विष्कम्भक—अंक के आदि में संक्षेप में (नाटकीय अंक का सारांश निर्दिष्ट] करना विष्कम्भक कहलाता है । यथा—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥ (साहित्यदर्पण)

विदूषकः—आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।)

राजा—राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः
सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः॥ ९॥

अन्वयः—राज्यम्, निर्जितशत्रु, समस्तः, भरः, योग्यसचिवे, न्यस्तः, सम्यक्-पालनलालिताः, प्रजाः, प्रशमिताशेषोपसर्गाः, प्रद्योतस्य, सुता, वसन्तसमयः, त्वम्, च, इति, कामः, नाम्ना, कामम्, धृतिम्, उपैतु, पुनः मन्ये, अयम्, मम महान्, उत्सवः॥ ९॥

राज्यमिति। राज्यम् = आधिपत्यम्। निर्जितशत्रु—निर्जिताः = पराजिताः शत्रवः = रिपवः—यस्मिन्, तत् – विजितशत्रु (अस्ति)। समस्तः = निखिलः। भरः = प्रजापालनादिकभारः। योग्यसचिवे = कुशलमन्त्रिणि। न्यस्तः = धृतः। सम्यक्पालनलालिताः—सम्यक् = समुचितम् पालनेन = रक्षणेन लालिताः = सम्वर्धिताः। प्रजाः = प्रकृतयः। प्रशमिताशेषोपसर्गाः = प्रशमिताः = शान्ताः अशेषाः = निखिलाः, उपसर्गाः यासां तादृश्यः। ('उपसर्गः पुमान् रोगभेदो-पप्लवयोरपि' इति मेदिनी।) (सन्ति इति)। प्रद्योतस्य = तदाख्यस्यावन्ति-नृपस्य। सुता – दुहिता = (वासवदत्ता) (मम पत्नी) वसन्तसमयः=ऋतुराज-कालः। त्वम् – वयस्यः वसन्तकः। इति = अतः। कामः = मदनः। नाम्ना =

विदूषक—आज्ञा दीजिए महाराज!

राज्य के सभी शत्रुओं को पराजित कर दिया है। सम्पूर्ण राज्यभार योग्य सचिव को सौंप दिया है। भलीभाँति पाली-पोषी गई प्रजा सभी प्रकार के उपद्रवों से मुक्त हो चुकी है। राजा प्रद्योत की पुत्री (अनुपमा सुन्दरी) वसन्तसेना मेरी पत्नी है। सुखदो वसन्तकाल है तथा तुम (वसन्तक) जैसे मेरे मित्र हैं अर्थात् मैं समझता हूँ कि सब प्रकार से यह मदनमहोत्सव मेरा ही है मदन का तो नाम मात्र है॥ ९॥

विदूषक—अपने कार्य, वेषभूषा तथा भाषादि से स्वामी को प्रसन्न रखने वाला नाटक का पात्र विदूषक कहलाता है। यथा—कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैरिति।

निश्चिन्त, मृदुल एवं कलाप्रिय होने के कारण नाटिका में राजा उदयन नायक धीर ललित है। यथा—

'निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।' (साहित्यदर्पण)

विदूषकः—(सहर्षम्।) भो वअस्स एव्वं ण्णेदम्। अहं पुण जाणामि ण भवदो ण कामदेअस्स मम ज्जेव एकस्स बह्मणस्स अअं मअणमहूसवो जस्स पिअवअस्सेण एव्वं मन्तीअदि। ता किं इमिणा। पेक्ख दाव इमस्स महुमत्तकामिणीजणसअंगाहगहिदसिङ्गकजलप्पहारणच्चन्तणा अरजणजणिदकोदूहलस्स समन्तदो घुम्मन्तमद्दलुद्दामचच्चरीसद्दमुहररच्छामुहसोहिणोपइण्णेपडवासपुञ्जपिञ्जरिज्जन्तदसदिसामुहस्स सस्सिरीअदं मअणमहूसवस्स। [भो वयस्य, एवं नेदम्। अहं पुनर्जानामि न भवतो न कामदेवस्य ममैवैकस्य ब्राह्मणस्यायं मदनमहोत्सवो यस्य प्रियवयस्येनैवं मन्त्र्यते। (विलोक्य।) तत्किमनेन। प्रेक्षस्व तावदस्य मधुमत्तकामिनीजनस्वयंग्राहगृहीतंशृङ्गकजलप्रहारनृत्यन्नागरजनजनितकौतूहलस्य समन्ततः शब्दायमानमर्दलोद्दामचर्चरीशब्दमुखररथ्यामुखशोभिनः प्रकीर्णपटवासपुञ्जपिञ्जरितदशदिशामुखस्य सश्रीकतां मदनमहोत्सवस्य।]

'मदनमहोत्सव' इति नाममात्रेणैव। कामम् = यथेच्छम्। धृतिम् = धैर्यम्। उपैतु = प्राप्नोतु। पुनः = परम् (अहम्) मन्ये = तर्कयामि। अयम् = एषः। मम = वत्सराजस्य। महान् = समधिकः। उत्सवः प्रमोदकालः (अस्तीति)। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः। तद्यथा—'स्यात्काव्यलिङ्गं वागर्थो नूतनार्थसमर्थकः ॥ ९ ॥

भो वयस्येति। मन्त्र्यसे = विचार्यसे। प्रेक्षस्व = पश्य। मधुमत्तकामिनीजनस्वयंग्राहगृहीतम्—मधुना मत्तः = मद्यपानजातमदः यः कामिनीजनः = तरुणीलोकः तेन स्वयं ग्राहेण = स्वैरग्रहणेन = गृहीतानि = तानि यानि शृङ्गकाणि = धारायन्त्राणि ('पिचकारी'ति भाषायाम्) तैः तैः ये जलप्रहाराः = पयःप्रक्षेपाः, तैः नृत्यद्भिः = इतस्ततः कूर्दद्भिः, नागरजनैः = पौरजनैः, जनितम् = उत्पादितम्,

---

विदूषक—(सहर्ष) हे मित्र! ऐसा ही है। मैं तो यह जानता हूँ कि यह न तो आपका और न कामदेव का, अपितु अकेले मुझ ब्राह्मण का ही मदन महोत्सव है। जिस मुझ ब्राह्मण के लिए प्रिय मित्र ऐसा सोच रहे हैं। (देखकर) इससे क्या? अब मदिरा पान से मतवाली कामिनियों के द्वारा स्वयं हाथों से पकड़ी हुई पिचकारियों द्वारा जल प्रहार से इधर-उधर उछल-कूद करते हुए नागरिक जनों के कौतूहल तथा चारों ओर ध्वनि मृदंगों के बढ़ते हुए चर्चरी (करतल ध्वनि) से मुखरित कुओं के मध्य से निकलने वाली पगदण्डियों के निकास तथा उड़ाये गये गुलालों के ढेर से पीली बनी हुई दशों दिशाओं वाले उस मदन महोत्सव की शोभा देखिये।

रथ्या—पगडण्डी जो कि प्रायः वृक्षों के झुरमुट से होकर जाती है।

राजा—(समन्तादवलोक्य ।) अहो परां कोटिमधिरोहति प्रमोदः पौराणाम् । तथाहि—

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरै-
र्हेमालंकारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः ।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा
कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ॥१०॥

कौतूहलम् = उत्कण्ठा यस्मिन्, तस्य । समन्ततः = सर्वतः । शब्दायमानमर्दलोद्दामचर्चरीशब्दमुखररथ्यामुखशोभितः = शब्दायमानाः = मधुरं ध्वनन्तः ये मर्दलाः = मृदङ्गाः तेः उद्दामः = प्रचण्डवर्धितः यः चर्चरीशब्दः = गीतावाद्यादिविशेषशब्दः, तेन मुखराणि = शब्दायमानानि, रथ्यामुखानि = वीथीनिर्गमनस्थानानि, तैः शोभते = राजते इति तस्य । प्रकीर्णपटवासपुञ्जपिञ्जरितदशदिशामुखस्य—प्रकीर्णाः = प्रक्षिप्ताः पटं = वस्त्रम् वासयन्ति = सुगन्धीकुर्वन्ति ये तादृशाः ये पटवासाः = पिष्टातकाः ('गुलाल' इति भाषायाम्)। तेषां पुञ्जाः = समूहाः पिञ्जरितानि = पीततां नीतानि दशदिशानाम् = दशकाष्ठानाम् मुखानि = आननानि यस्मिन् तथाविधस्य मदनमहोत्सवस्य = वसन्तोत्सवस्य । सश्रीकताम् = शोभाशालित्वम् । 'अहो' इति हर्षसूचकम् । पराम् = चरमाम् । कोटिम् = श्रेणीम् । अधिरोहति = प्राप्नोति । प्रमोदः = प्रसन्नता । पौराणाम् = पुरवासिनाम् ।

अन्वयः—कुङ्कुमक्षोदगौरैः, कृतदिवसमुखैः, कीर्णैः, पिष्टातकौघैः, हेमालङ्कारभाभिः, भरनमितशिखैः, कैङ्किरातैः शिखरैः, शातकुम्भद्रवखचितजना इव, वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा, एषा, कौशाम्बी, एकपीता विभाति ।

कीर्णैरिति । कुङ्कुमक्षोदगौरैः—कुङ्कुमानाम् = केसराणाम्, क्षोदैः = चूर्णैः

राजा—(चारों ओर देखकर) अरे आश्चर्य है कि, नगरनिवासियों का प्रमोद सीमा पर पहुँच रहा है । क्योंकि,

केसर रज से पीले, प्रातःकालीन छटा को उपस्थित करने वाले, बिखेरे गये सुगन्धित चूर्ण (अबीर-गुलाल), स्वर्णाभूषणों की कान्तिवाले अशोक पुष्पों के भार से झुकी हुई चोटियों, सोने के पानी से पुती व्यक्तियों (पीतवस्त्राभूषण युक्त) एवं वेष-भूषा से अभिलक्ष्य अपने वैभव से कुबेर के सम्पूर्ण खजाने को जीते हुए यह कौशाम्बी नगरी पीली-पीली दिखलाई दे रही ॥ १० ॥

इस श्लोक में केसर, गुलाल, अशोक पुष्प एवं स्वर्ण कोश के पीतत्व से कौशाम्बी को सोने के पानी से पुती पीतवर्णा दिखलायी गयी है ।

अपि च—

धारायन्त्रविमुक्तसंततपयःपूरप्लुते सर्वतः
सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्राङ्गणे।
उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ॥ ११ ॥

गौरा = गौरवर्णास्तैः। अत एव कृतदिवसमुखैः—कृतं दिवसस्य मुखं यैस्तैः विग्रिहतप्रभातैः। कीर्णैः = क्षिप्तैः। पिष्टातकानाम् = सुगन्धितचूर्णानाम्। ओघैः = समूहैः ('स्तोमौघं निकरव्राते'त्यमरः)। हेमालङ्कारभाभिः = स्वर्णभूषणकान्तिभिः। भरनमितशिखैः—भरेण = भारेण, नमिता शिखा येषां तैः=भारावनमिताग्रभागैः। शिखरैः = शिरोभूषणैः। कैङ्किरातैः—किंकिरातानाम् = अशोक पुष्पाणां विकारैः। शातकुम्भद्रवरचितजना इव = शातकुम्भनाम्नि पर्वते भवं शातकुम्भम् = सुवर्णम् तस्य द्रवेण = रसेन खचिताः व्याप्ताः जनाः = लोकाः यस्यां तादृशी = स्वर्णद्रवव्याप्तपुरवासिलोका। इव = समम्। वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा—वेषेण = परिधानेनाभिलक्ष्यः = अनुमेयः यः स्वविभवः= निजवैभवम् तेन विजितः = तिरस्कृतः अशेषः = निखिलः वित्तेशस्य = कुबेरस्य कोशः = धनसञ्चयः यया तादृशी ('कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गाभिधानेऽर्थौघदिव्ययः' इति कल्पद्रुमकोषः) एषा = इयम्। कौशाम्बी = कौशाम्बीनगरी। एकपीता = एकमात्रपीतवर्णा। भाति = शोभते। अत्र उदात्तोत्प्रेक्षयोः सङ्करालंकारः। स्रग्धरावृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—सर्वतः, धारायन्त्रविमुक्तसन्ततपयः पूरप्लुते, सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे, प्राङ्गणे, उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः चरणन्यासैः, जनेन, पुरः कुट्टिमम्, सद्यः, क्षणम्, सैन्दूरीक्रियते ॥ ११ ॥

धारायन्त्रेति। सर्वतः = सर्वत्र। धारायन्त्रविमुक्तसन्ततपयःपूरप्लुते—धारायन्त्रैः = शृङ्गकैः विमुक्तानि = व्यक्तानि सन्ततम् पयांसि = निरन्तरजलानि तेषां

और भी—चारों ओर पिचकारियों से छोड़े गये निरन्तर जलधारों से व्याप्त, घनी उछल-कूद से उत्पन्न हुई कीचड़ में किये गये खेल वाले आगन में मतवाली स्त्रियों के भाल पर गिरते हुए सिन्दूर के रङ्ग से लाल बने पद चिह्नों से लोग सामने के फर्श को क्षण भर में सिन्दूर वर्ण बनाये दे रहे हैं ॥ ११ ॥

सन्तत—सम् + √तन् + क्त।

विदू०—(विलोक्य ।) इमं पि दाव सुविअद्धजणभरिदसिङ्गकजलप्पहारमुक्कसिक्कारमणहरं वारविलासिणीजणविलसिदं आलोएदु विअवअस्सो । [इदमपि तावत्सुविदग्धजनभरितशृङ्गकजलप्रहारमुक्तसीत्कारमनोहरं वारविलासिनीजनविलसितमवलोकयतु प्रियवयस्यः ।]

राजा—(विलोक्य ।) वयस्य सम्यग्दृष्टं त्वया । कुतः—

अस्मिन्प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे
दृष्टो मनाङ् मणिविभूषणरश्मिजालैः ।

पूरैः = प्रवाहैः प्लुते = प्लाविते । सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे = सान्द्रः = निविडः यो विमर्दः = सम्मर्दः, तेन यः कर्दमः = पङ्कः, तस्मिन् कृता क्रीडा = सिन्दूरक्रीडा यस्मिन् तथाविधे प्राङ्गणे = अजिरे ('अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः ।) उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः—उद्दामाः = मदोद्धताः या प्रमदाः = स्त्रियः, तासां कपोलेभ्यः = गण्डदेशेभ्यः निपतत् यत् सिन्दूरम् तस्य रागेण = रक्ततया, अरुणैः = लोहितैः, चरणन्यासैः = पादविक्षेपैः । जनेन = लोकेन । पुरः = अग्रे । कुट्टिमम् = बद्धाभूमिः । सद्यः = झटिति । क्षणम् = किञ्चित्कालम् । सैन्दूरीक्रियते = सिन्दूरस्येदं सैन्दूरम् असैन्दूरं सैन्दूरं क्रियते इति सिन्दूरवर्णमिव विधीयते । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

इदमिति । सुविदग्धजनभरितशृङ्गकजलप्रहारमुक्तसीत्कारमनोहरम्—सुविदग्धाः = केलिनिपुणाः ये जनाः = नराः, तैः भरितानि = पूरितानि यानि शृङ्गकानि = धाराजलयन्त्राणि तैः ये जलप्रहाराः = पयःप्रवाहाः, तैर्मुक्तो यः सीत्कारः = 'सी-सी'शब्दः तेन मनोहरम् = मनोरमम्, वारविलासिनीजनविलसितम् = वारविलासिनीनाम् = वाराङ्गनानाम् विलसितम् = विहारम् ('वारस्त्री गणिका वेश्या' इत्यमरः ।)

अन्वयः—अस्मिन्, प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे, मणिविभूषणरश्मिजालैः, मनाक्,

---

विदूषक—(**देखकर**) चतुर जनों द्वारा भरे गये पिचकारियों के जल प्रवाहों से कर रहे सी-सी शब्द से मनोहर वेश्या जनों के विहार (अनुरागपूर्ण हाव-भाव) को तो मित्र जरा देखिये ।

राजा—(**देखकर**) मित्र, तुमने ठीक देखा । क्योंकि—

इस उड़ाये गये गुलाल आदि सुगन्ध चूर्ण से छाये अन्धकार में मणि जटित आभूषण

गुलालादि उड़ाये जाने से छाये अन्धकार में रत्नजटित आभूषणों (अथवा आभूषण

पातालमुद्यतफणाकृतिशृङ्गकोऽयं
मामद्य संस्मरयतीह भुजङ्गलोकः ॥ १२ ॥

विदूषकः—भो एसा क्खु मअणिआ मअणवसविसंठुलं वसन्ताभिणअं णच्चन्ती चूअलदिआए सह इदो ज्जेव्व आअच्छदि। ता अवलोएदु एदं पिअवअस्सो। (विलोक्य।) [**भोः एषा खलु मदनिका मदनवशविसंष्ठुलं वसन्ताभिनयं नृत्यन्ती चूतलतिकया सहेत एवागच्छति। तदवलोकयत्वेतां प्रियवयस्यः।**]

(ततः प्रविशतो मदनलीलां द्विपदीखण्डं गायन्त्यौ चेट्यौ ।)

दृष्टः उद्यतफणाकृतिशृङ्गकः, अयम् भुजङ्गलोकः, अद्य इह माम् पातालं संस्मरयति ॥ १२ ॥

अस्मिन्निति। अस्मिन् = एतस्मिन्। प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे–प्रकीर्णः = क्षिप्तः यः पटवासः = पिष्टातकः, तेन कृतः = सम्पादितः यः अन्धकारः तप्त, तस्मिन्। मणिविभूषणरश्मिजालैः-मणीनाम् विभूषणानि तेषां रश्मिजालैः (पक्षे–मणयः एव विभूषणानि, तेषां रश्मिजालैः)=रत्नालङ्कारकिरणसमूहैः। मनाक् = ईषत्। दृष्टः=विलोकितः। उद्यतफणाकृतिशृङ्गकः–उद्यतानि फणाकृतीनि शृङ्गकाणि येन तथा = उच्छ्रितफणाकारधारायन्त्रः। अयम्=एषः। भुजङ्गलोकः=विटसमूहः (पक्षे–सर्पसमूहः) ('भुजङ्गोऽहौ च पिङ्गे च' इति मेदिनी)। अद्य=अधुना। इह =

(मणि ही आभूषण है जो, ऐसी मणियों की) कान्ति से कुछ-कुछ दिखलाई देते हुए, उठाये हुए फणाकार पिचकारियों वाला (अथवा पिचकारियों के रूप में उठाये हुए फणों वाला यह विट (कामुक) समाज (अथवा नाग लोक) आज मुझे पाताल लोक की याद दिला रहा है ॥ १२ ॥

विदूषक—(देखकर) यह मदनवश व्याकुल वसन्त का अभिनय करती हुई नाचती हुई मदनिका सखी चूतलतिका के साथ इधर को ही आ रही है।

(तब मदन लीला का अभिनय करती हुई [मदनिका और चूतलिका] दोनों सखियाँ द्विपदी खण्ड गाती हुई प्रवेश करती हैं।)

रूप में मणियों) के रश्मि जाल की चमक में कामिजनों के हाथ में ली गई पिचकारियों को देख कर यहाँ वत्सराज उदयन को अपने पाताललोक जाने का स्मरण हो आता है।

उद्यत—उद्+√यण्+क्त। संस्मरयति–सम्+स्मृ+णिच् (लट् प्र० पु०, एकवचन)

द्विपदी खण्ड—यह ताल पर गाया जाने वाला विशेष प्रकार का गीत होता है जिसमें चार चरण एवं प्रत्येक चरण में १२ मात्रायें होती हैं। यथा—

चेट्यौ—

कुसुमाउहपिअदूअओ मउलीकिदबहुचूअओ।
सिढिलिअमाणग्गहणओ वाअदि दाहिणपवणओ ॥ १३ ॥
[कुसुमायुधप्रियदूतको मुकुलायितबहुचूतकः ।
शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिणपवनकः ॥ १३ ॥]

अत्र । माम् = वत्सराजम् । पातालम् = अधोलोकम् । संस्मरयति = स्मृतिपथं नयति । अत्र रसिकजनं दृष्ट्वा पातालस्मरणेन स्मरणालङ्कारः, भुजङ्गपदे च सर्पविटश्लिष्टत्वेन श्लेषालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति ॥ १२ ॥

भोः एषेति । मदनवशविसंष्ठुलम्—मदनस्य = कामस्य वशेन = अधीनेन । विसंष्ठुलम् = व्याकुलं यथा स्यात् तथा । वसन्ताभिनयम् = वसन्तस्याभिनयो यत्रेति तत् । नृत्यन्ती = नृत्यपरा । पूतलतिकया = तन्नाम्न्या चेटचा । मदनलीलाम् = कामविलासम् । द्विपदीखण्डम् = गीति-विशिष्टम् ।

अन्वयः—कुसुमायुधप्रियदूतकः, मुकुलायितबहुचूतकः, शिथिलितमानग्रहणकः, दक्षिणपवनकः, वाति ॥ १३ ॥

कुसुमायुधेति । कुसुमायुधप्रियदर्शकः—कुसुमानि = पुष्पाणि, आयुधानि = प्रहरणानि यस्य सः कुसुमायुधः = मदनः, तस्य, प्रियदूतकः = प्रियसन्देशवाहकः । मुकुलायितबहुचूतकः—मुकुलायिताः = मुकुलीकृताः बहवः = अनेके चूताः = आम्रपादपाः येन सः । शिथिलितमानग्रहणकः—शिथिलितम् = त्याजितम् नामग्रहणम् = प्रणयस्वीकरणम् येन सः । दक्षिणपवनकः = मलयानिलः । वाति = प्रवहति ॥ १३ ॥

कामदेव का प्रिय दूत, बहुत से आम्र वृक्षों को मुकुलित करने वाला प्रणय स्वीकार का परित्याग करने वाला मलयानिल चल रहा है ॥ १३ ॥

'भवेद् द्विपद्विका गीतिर्भरतेन प्रकीर्तिता ।
युक्ता चतुर्भिश्चरणैस्त्रयोदशकलात्मकैः' ॥

मदन को कुसुमायुध अथवा पञ्चशर भी कहा जाता है । पञ्चशरों की गणना इस प्रकार है—

'अरविन्दमशोकं च चूतञ्च नवमल्लिका ।
नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः' ॥ इति ॥

विअसिअबउलासोअओ कङ्खिअपि अजणमेलओ ।
पडिवालणासमत्थओ तम्मइ जुवईसत्थओ ॥ १४ ॥

[विकसितबकुलाशोकक: काङ्क्षितप्रियजनमेलक: ।
प्रतिपालनासमर्थकस्ताम्यति युवतिसार्थक: ॥ १४ ॥]

इह पढनं महुमासो जणस्स हिअआइं कुणइ भिउलाई ।
पच्छा विद्धइ कामो लद्धप्पसरेंहि कुसुमबाणेंहि ॥ १५ ॥

[इह प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि ।
पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसरै: कुसुमबाणै: ॥ १५ ॥]

अन्वयः—विकसितवकुलाशोकक:, कांक्षितप्रियजनमेलक:, प्रतिपालनसमर्थक:, युवतिसार्थक: ताम्यति ॥ १४ ॥

विकसितवकुलाशोकक:—विकसिता: = पुष्पिता: वकुला: = अशोकाश्च येन स: । कांक्षितप्रियजनमेलक:—कांक्षित: = अभिलषित: प्रियजनानाम् = वल्लभानाम् मेलक: = सम्मेलनम् येन स: । प्रतिपालनासमर्थक: = प्रतिपालने = प्रियजनानां प्रतीक्षमाणे, असमर्थक: = अशक्त: स: । युवतिसार्थक:—युवतीनाम् = तरुणीनाम् सार्थक: = संघ: । ताम्यति = खिद्यते ॥ १४ ॥

अन्वयः—इह, मधुमास:, प्रथमम् जनस्य, हृदयानि, मृदुलानि, करोति, पश्चात् काम:, लब्धप्रसरै:, कुसुमबाणै:, विध्यति ॥ १५ ॥

इह = अस्मिन् काले । मधुमास: = चैत्रमास: । ('स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधु:' इत्यमर: ।) प्रथमम् = पूर्वम्, जनस्य = लोकस्य, हृदयानि = चेतांसि । मृदुलानि = कोमलानि । करोति = विदधाति, पश्चात् = अनन्तरम् । काम: = मदन: ('मदनो मन्मथो मार: प्रद्युम्नो मीनकेतन:' इत्यमर:) लब्धप्रसरै:—लब्ध: = प्राप्त: प्रसर: = प्रवेशावकाशो यैस्तै: । कुसुमबाणै: = कुसुमसायकै: । विध्यति = भिनत्ति । अत्र रूपकालङ्कार: । तद्यथा—'रूपकं रोपितारोपाद् विषये निरपह्नवे' इति ॥ १५ ॥

मौलसिरी तथा अशोक वृक्षों को विकसित करने वाला, अभीष्ट प्रियजनों से मिलने की उत्कण्ठा वाला, प्रतीक्षा करने में असमर्थ युवतियों का झुण्ड दुःखी हो रहा है ॥ १४ ॥

इस अवसर पर मधुमास (चैत्र) प्रथम तो लोगों के हृदयों को मृदुल बना देता है तदनन्तर कामदेव प्रवेश का अवसर पाये हुए कुसुम सायकों से बींध देता है ॥ १५ ॥

राजा—(निर्वर्ण्य सविस्मयम् ।) अहो निर्भरः क्रीडारसः परिजनस्य । तथाहि—

स्रस्तः स्रग्दामशोभां त्यजति विरचितामाकुलः केशपाशः
क्षीबायां नूपुरौ च द्विगुणतरमिमौ क्रन्दतः पादलग्नौ ।
व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्याः
क्रीडन्त्याः पीडयेव स्तनभरविनमन्मध्यभङ्गानपेक्षम् ॥ १६ ॥

निर्वर्ण्य = सूक्ष्मदृष्ट्या निरीक्ष्य । सविस्मयम् = विस्मयेन सहितम् । पौरजनस्य = सेवकवर्गस्य । क्रीडारसः–क्रीडायाः = खेलायाः रसः = आनन्दः, निर्भरः= निःसीमः (भवतीति) ।

अन्वयः—क्षीबायाः, स्तनभरविनमन् मध्यभङ्गानपेक्षम्, क्रीडन्त्याः, अस्याः, स्रस्तः, आकुलः, केशपाशः, विरचिताम्, स्रग्दामशोभाम्, त्यजति, पादलग्नौ, इमौ, नूपुरौ, च, द्विगुणतरम्, क्रन्दतः, कम्पानुबन्धात्, व्यस्तः, अयम्, हारः, अनवरतम्, पीडया, इव, उरः, हन्ति ॥ १६ ॥

स्रस्त इति । क्षीबायाः = मत्तायाः (अत एव) स्तनभरविनमन्मध्यभङ्गानपेक्षम्–स्तनयोः भरः = कुचभारः, तेन विनमत् = अवनयत्–नम्रीभवत् यत् मध्यम् = कटिः, तस्य भङ्गः = त्रोटनम् तस्मिन् अपेक्षा = अवधानता न विद्यते यस्मिन् कर्मणि तत् तथा । क्रीडन्त्याः=इतस्ततः धावन्त्याः । अस्याः = एतस्याः, स्रस्तः= शिथिलबन्धनः (अतः) आकुलः = अस्तव्यस्तः । केशपाशः = कचकलापः । विरचिताम् = विशिष्टतया निर्मिताम् । स्रग्दामशोभाम् = स्रग्दाम्नः शोभाम्—पुष्पमालाश्रियम् । त्यजति = जहाति । पादलग्नौ = चरणबद्धौ । इमौ = एतौ । नूपुरौ = मञ्जीरौ ('मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः) च द्विगुणताम् = अतिशयेन द्विगुणितम् । क्रन्दतः = रुदितः । कम्पानुबन्धात् = कम्पनस्य, अनु-

---

राजा—(ध्यान से देखकर, आश्चर्य सहित) अरे आश्चर्य है कि सेवक वर्ग का खेल का आनन्द निःसीम होता है ।

मतवाली (अतएव) स्तनों के भार से झुकी हुई कमर के टूटने की अपेक्षा न कर, क्रीड़ा करती हुई (सेविका मदनिका) का ढीला अस्त-व्यस्त केशपाश (बालों का जूड़ा) सप्रयत्न धारण की गई पुष्प माला की शोभा का त्याग कर रहा है । पैरों में पहने हुए यह दोनों बिछुए पहले से दुगुना बज रहे हैं । काँपने के कारण डोलता हुआ यह हार निरन्तर पीड़ा से वक्षःस्थल को पीट सा रहा है ॥ १६ ॥

विदूषकः—भो वअस्स अहं पि एताणं मज्झे गदुअ णच्चन्तो गाअन्तो मअणमहूसवं माणइस्सम् । [भो वयस्य अहमप्येतयोर्मध्ये गत्वा नृत्यन् गायन् मदनमहोत्सवं मानयिष्यामि ।]

राजा—(सस्मितम् ।) वयस्य एवं क्रियताम् ।

विदूषकः—(उत्थाय चेटयोर्मध्ये नृत्यन् ।) भोदि मअणिए भोदि चूअलदिए मं पि एदं चच्चरिं सिक्खावेहि । [भवति मदनिके भवति चूतलतिके मामप्येतां चर्चरीं शिक्षयतम् ।]

उभे—(विहस्य) हदास ण क्खु एसा चच्चरी । [हताश न खल्वेषा चर्चरी]

विदूषकः—ता किं क्खु एदं । [तत् किं खल्वेतत् ।]

मदनिका—दुअईखण्ड खु एदं । [द्विपदीखण्डं खल्वेतत् ।]

विदूषक—(सहर्षम् ।) किं एदिणा खण्डेण मोअआ करीअन्दि । [किमेतेन खण्डेन मोदकाः क्रियन्ते ।]

बन्धात्=सम्बन्धात् हेतोः ('अनुबन्धस्तु सम्बन्धे' इति मेदिनी) । व्यस्तः=इतस्ततः क्षिप्यमाणः । अयम्=एषः । हारः=मुक्तावली । अनवरतम्=निरन्तरम् । पीडया=दुःखानुभूत्या इव=समम् । उरः=वक्षः । हन्ति=ताडयन्ति । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ १६ ॥

मानयिष्यामि=सत्करिष्यामि । हताश–हता=भग्ना आशा=मनोरथः यस्य तत्सम्बुद्धौ ।

सहर्षमिति । खण्डेन=शर्करया । मोदकाः='लड्डू' इति भाषायाम् । खण्डशब्द-

---

विदूषक—अरे मित्र, मैं भी इन दोनों के बीच में जाकर नाचता-गाता हुआ मदन महोत्सव मनाऊँगा ।

राजा—(मुस्कराते हुए) मित्र ऐसा ही करो ।

विदूषक—(उठकर सेविकाओं के बीच नाचता गाता हुआ) हे देवि मदनिके देवि चूतलतिके, मुझे भी यह चर्चरी (विशेष प्रकार का गीत अथवा ताली बजाना) सिखाओ ।

दोनों—(हँसकर) अरे टूटे दिल वाले ! यह चर्चरी नहीं है ।

विदूषक—तो फिर यह क्या है ?

मदनिका—यह तो द्विपदी खण्ड है ।

विदूषक—(प्रसन्नता से) क्या इस खांड से लड्डू बनाये जाते हैं ?

चेट्यौ—(विहस्य ।) ण हि ण हि पढीअदि क्खु एवं । [नहि नहि पठ्यते खल्विदम् ।]

विदूषकः—(सविषादम् ।) जइ पढीअदि ता अलं मम एदिणा । वअस्सस्स सआसं जेव्व गमिस्सम् । [यदि पठ्यते तदलं ममैतेन । वयस्यस्य सकाशमेव गमिष्यामि ।] (गन्तुमिच्छति ।)

उभे—(हस्ते गृहीत्वा) एहि कीलह्म । वसन्तअ कहिं गच्छसि । [एहि क्रीडामः । वसन्तक कुत्र गच्छसि ।] (इति बहुविधं वसन्तकमाकर्षतः ।)

विदू०—(आकृष्य हस्तं प्रपलाय्य राजानमुपसृत्य ।) वअस्स णच्चिदोम्हि । णहि णहि । कीलिअ पलाइदोम्हि । [वयस्य नर्तितोऽस्मि । नहि नहि । क्रीडित्व पलायितोऽस्मि ।]

राजा— साधु कृतम् ।

चूतलतिका—हञ्जे मअणिए । चर क्खु अह्माइ कीलिदम् । ता एहि । णिवेदेह्म दाव भट्टिणीए संदेसं महाराअस्स । [हञ्जे मदनिके चिरं खल्वावाभ्यां क्रीडितम् । तदेहि । निवेदयावस्तावद्भर्त्र्याः संदेशं महाराजाय ।]

श्रवणेन शर्करां सम्भावयतः विदूषकस्य प्रसन्नता । विहस्य = हसित्वा । सविषादम् = सखेदम् (मोदकासम्भावनया) अलं मयैतेन = मम एतेन किमपि प्रयोजनं नास्ति । 'हञ्जे' इदं चेटीं प्रति सम्बोधनम् । यथा—'हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति' इति ।

दोनों चेटियाँ—(हँसकर) नहीं-नहीं । यह तो पढ़ा जाता है ।

विदूषक—(खेद के साथ) यदि पढ़ा जाता है तो मुझे इससे क्या ? मित्र के पास ही चला जाऊँ । (जाना चाहता है)

दोनों चेटियाँ—(हाथ पकड़कर) आओ खेलें । वसन्तक कहाँ जा रहे हो ?

(यह कह कर दोनों अनेक प्रकार से वसन्तक को खींचने लगती हैं ।)

विदूषक—(हाथ खींचकर भाग कर राजा के पास जाकर) मित्र, नाच आया । नहीं-नहीं । खेल कर भाग आया हूँ ।

राजा—अच्छा किया ।

चूतलतिका—सखी मदनिके ! हम लोग तो बहुत देर तक खेल चुके । अतः आओ तब तक महारानीजी का सन्देश महाराज के लिए सुनायें ।

प्रपलाय्य—प्र + परा + √अय् + ल्यप् । परा उपसर्ग का रेफ लकार बन जाता है ।

मदनिका—सहि एवं करह्म । [सखि एवं कुर्वः ।]

उभे—(परिक्रम्य उपसृत्य च ।) जेदु जेदु भट्टा । भट्टा देवी आणवेदि णहि णहि । विण्णवेदि । [जयतु जयतु भर्ता । भर्तः देव्याज्ञापयति-इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयन्त्यौ ।) नहि नहि । विज्ञापयति ।]

राजा—(सहर्षं विहस्य सादरम् ।) मदनिके नन्वाज्ञापयतीत्येव रमणीयम् । विशेषतोऽद्य मदनमहोत्सवे । तत्कथय किमाज्ञापयति देवी ।

विदू०—आः दासीए धीए । किं देवी आणवेदि । [आः दास्याः पुत्रि । किं देव्याज्ञापयति ।]

उभे—एवं देवी विण्णवेदि-अज्ज क्खु मए मअरन्दोद्दाणे गदुअ रत्तासोअपाअवतले संठाविदस्स भअवदो कुसुमाउहस्स पूआ णिव्वत्तइदव्वा । तहिं अज्जउत्तेण संण्णिहिदेण होदव्वम् । [एवं देवी विज्ञापयति-अद्य खलु मया मकरन्दोद्यानं गत्वा रक्ताशोकपादपतले संस्थापितस्य भगवतः कुसुमायुधस्य पूजा निर्वर्तयितव्या । तत्रार्यपुत्रेण सन्निहितेन भवितव्यम् ।]

रमणीयम् = सुन्दरम् । मकरन्दोद्यानम् = तदाख्यमुपवनम् । संस्थापितस्य = विहितप्रतिष्ठस्य । निवर्त्तयितव्या = सम्पादयितव्या । तत्र = पूजोपक्रमे । सन्निहितेन = समुपस्थितेन ।

मदनिका—सखि, हम दोनों ऐसा ही करें ।

दोनों चेटियाँ (घूम कर और निकट जाकर) जय हो, महाराज की जय हो । स्वामिन् ! देवी आज्ञा देती हैं···(लज्जित होने लगती हैं) नहीं नहीं निवेदन करती हैं ।

राजा—(हँस कर आदर से) मदनिके ! वास्तव में 'आज्ञा देती हैं' यही सुन्दर है । विशेष कर आज महोत्सव में । अत एव कहो महारानी क्या आज्ञा देती हैं ?

विदूषक—अरी दासीपुत्रि ! देवी जी क्या आज्ञा देती हैं ?

दोनों चेटियाँ—देवी जी निवेदन करती हैं—आज मुझे मकरन्दोद्यान को जाकर रक्ताशोक वृक्ष के नीचे स्थापित किये गये भगवान् कामदेव की पूजा करनी है । वहाँ आर्यपुत्र को उपस्थित होना चाहिए ।

आः—यह क्रोध और पीड़ा की अवस्था का सम्बोधन है ।

दास्याः पुत्रि—सेविकाओं के लिए प्रयुक्त एक प्रकार की गाली ।

राजा—(सानन्दम् ।) वयस्य ननु वक्तव्यमुत्सवादुत्सवान्तरमापतित-मिति ।

विदूषकः—भो वअस्स ता उट्ठेहि। तहिं ज्जेव गच्छह्म जेग तहिं गदस्स ममावि बह्मणस्स सोत्थिवाअणं किवि भविस्सदि। [भो वयस्य, तदुत्तिष्ठ । तत्रैव गच्छामो येन तत्र गतस्य ममापि ब्राह्मणस्य स्वस्तिवायनं किमपि भविष्यति ।]

राजा—मदनिके, गम्यतां देव्यै निवेदयितुमयमहमागत एव मकरन्दोद्यानमिति ।

चेटचौ—जं भट्टा आणवेदि। [यद्भर्ताऽऽज्ञापयति ।] (इति निष्क्रान्ते)

राजा—वयस्य, एहि। अवतरावः। (उभौ प्रासादादवतरणं नाटयतः) वयस्य, आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मार्गम् ।

विदूषकः—एदु एदु भट्टा [एतु एतु भर्ता।] (इति परिक्रामतः)

विदूषकः—(अग्रतोऽवलोक्य) एदं तं मअरन्दुज्जाणं ता एहि पविसह्म। [एतत्तन्मकरन्दोद्यानं तदेहि प्रविशावः ।]

(इति प्रविशतः)

उत्सवादुत्सवान्तरम्—एकस्मात् उत्सवात् अनन्तरमन्योत्सवः । आपतितम् = उपस्थितः । स्वस्तिवायनम् = पुण्याहवाचनम् । निवेदयितुम् = आवेदयितुम् । अवतरावः = अवरोहावः । प्रासादात् = सौधात् ।

राजा—(सानन्द) मित्र, कहना तो यही चाहिए कि एक उत्सव के बाद दूसरा उत्सव आ गया ।

विदूषक—अरे मित्र ! तो उठो वहीं चलें जिससे वहाँ गये हुए मुझ ब्राह्मण का भी कुछ स्वस्त्याइवाचन हो जायेगा ।

राजा—मदनिके ! महारानी को निवेदन करने के लिए जाओ कि मैं मकरन्द उद्यान को आ ही रहा हूँ ।

दोनों चेटियाँ—जैसी स्वामी की आज्ञा। (यह कह कर निकल जाती हैं।)

राजा—मित्र, जाओ। महल से उतरें (दोनों अटारी से उतरने का अभिनय करते हैं) मित्र ! मकरन्दोद्यान का मार्ग बतलाओ !

विदूषक—आइये आइये महाराज ! (इस प्रकार दोनों चलने लगते हैं)

विदूषक—(सामने देखकर) यही वह मकरन्दोद्यान है । अतः आओ प्रवेश करें।

(दोनों प्रवेश करते हैं)

वाचन—√व्रू + णिच् + ल्युट् (अन)। कल्याणार्थ आशीर्वादात्मक वेद मन्त्र पढ़ना स्वस्त्याइवाचन कहलाता है ।

विदूषकः—(अवलोक्य सविस्मयम्) भो महाराज, पेक्ख पेक्ख दाव एदं खु मलअमारुदान्दोलणपहुल्लन्तसहआरमञ्जरीरेणुपडलपडिबद्धपढविआणं मत्तमहुअरमुत्तझङ्कारमिलिदमहुरकोइलारावसंगोदसुदिसुहं तुहागमणदंसिआअरं विअ मअरन्दुज्जाणं लक्खीअदि । ता पेक्खदु भवं । [भो महाराज, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व तावदेतत् खलु मलयमारुतान्दोलनप्रफुल्लत्सहकारमञ्जरीरेणुपटलप्रतिबद्धपटवितानं मत्तमधुकरमुक्तझङ्कारमिलितकोकिलारावसंगीतश्रुतिसुखं तवागमनदर्शितादरमिव मकरन्दोद्यानं लक्ष्यते । तत्प्रेक्षतां भवान् ।]

राजा—(समन्तादवलोक्य) अहो मकरन्दोद्यानस्य परा श्रीः । इह हि—

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो
भृङ्गालोविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः ।

मलयमारुतान्दोलनप्रफुल्लत्सहकारमञ्जरीरेणुपटलप्रतिबद्धपटवितानम्—मलयस्य = मलयपर्वतादागतस्य, मारुतेन = पवनेन यद् आन्दोलनम् = सञ्चालनम् तेन हेतुना प्रफुल्लन्त्यः = विकसन्त्य। याः सहकारस्य = आम्रस्य मञ्जर्यः = वल्लर्यः। ('वल्लरिर्मञ्जरी स्त्रियाम्' इत्यमरः) तासां रेणवः = परागाः तेषां पटलम् = समूहः तेन प्रतिबद्धम् = विरचितम् पटवितानम् = वस्त्रवितानम् यस्मिन् तत् । मत्तमधुकरमुक्तझङ्कारमिलितमधुरकोकिलारावसंगीतश्रुतिसुखम्—मत्ताः=मधुपानेन उन्मत्ताः ये मधुकराः = भ्रमराः, तैर्मुक्तः = उत्सृष्टः यो झङ्कारः = गुञ्जनम् तेन मिलितम् = युक्तः मधुरः श्रुतिसुभगः यः कोकिलारावः = कोकिलाशब्दः स एव संगीतम् = गीतवाद्यादिकम् तेन श्रुतेः = कर्णरन्ध्रस्य सुखम्=सुखावहम्, तवागमनदर्शितादरम्—तव = भवतः आगमने = उपस्थितौ, दर्शितः = प्रकाशितः, आदरः = सम्मानम् येन तादृशम् इव लक्ष्यते = प्रतीयते इति भावः ।

अन्वयः—अधुना, मधुप्रसङ्गम्, प्राप्य, उद्यद्-विद्रुमकान्तिभिः, किसलयैः,

---

विदूषक—(देखकर आश्चर्य से) हे महाराज, देखिये देखिये तो यह मलय पवन से हिलने के कारण फूले हुए आम के बौरों का पराग बनाये गये पट वितान (चन्दोआ अथवा शामिआना) सा बना हुआ है । मतवाले भौंरों द्वारा छेड़ी गई मधुर झनकार से युक्त कानों को मधुर लगने वाला कोकिला कूजन रूपी संगीत तुम्हारे आगमन का स्वागत सा करता हुआ दिखलाई दे रहा है ।

राजा—(चारों ओर देखकर) मकरन्दोद्यान की रमणीयता धन्य है । क्योंकि यहाँ—इस वसन्त के आगमन पर वसन्तावसर (मधपानावसर) पाकर (अंकुरित मूंगों की

घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहु-
र्भान्ति प्राप्य मधुप्रसंगमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः ॥ १७ ॥

अपि च—

मूले गण्डूषसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या
मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति ।

ताम्राम्, त्विषम्, बिभ्रतः, कलैः, भृङ्गालीविरुतैः, अविशदव्याहारलीलाभृत।, मलयानिलाहतिचलैः, शाखासमूहैः मुहुः, घूर्णन्तः, अमी, द्रुमाः, मत्ताः, इव, भान्ति ॥ १७ ॥

उद्यदिति । अधुना = साम्प्रतम् (वसन्ततौ), मधुप्रसङ्गम् = मधोः वसन्तस्य (पक्षे-मद्यस्य) प्रसङ्गम् = अवसरम् । प्राप्य = लब्ध्वा उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः = उद्यताम् = उद्गच्छताम् विद्रुमाणाम् = प्रवालानाम् कान्तयः = आभाः इव आभा। येषां तैः । किसलयैः = नवदलैः । ताम्राम् = ताम्रवर्णाम् । त्विषम् = कान्तिम् । बिभ्रतः = धारयतः । कलैः = मनोहरैः । भृङ्गालीविरुतैः = भृङ्गालीनां = भ्रमरावलीनाम् । विरुतैः = कूजनैः । अविशदव्याहारलीलाभृतः = अविशदः = अस्पष्टाक्षरार्था यः व्याहारः = भाषितम् तस्य लीलाम् = शोभाम् । बिभ्रति = धारयति, इति तथाविधाः । मलयानिलाहतिचलैः—मलयानिलस्य = मलयपवनस्य, आहतिभिः = आघातैः । चलैः = चञ्चलैः, शाखासमूहैः = विटपसमुदायैः । मुहुः = भूयोभूयः । घूर्णन्तः = घूर्णमानाः । अमी = एते । द्रुमाः = वृक्षाः । मत्ता इव = क्षीबा इव । भान्ति = शोभन्ते । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । तद्यथा—'उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विने'ति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—अद्य, इह, हि, चिरात्, बकुलैः, मूले, गण्डूषसेकासवः, पुष्पवृष्ट्या,

---

कान्ति वाले कोमल पत्तों से ताम्रवर्णी कान्ति धारण करते हुए मधुर भृङ्गावलि की गुञ्जार से अस्पष्टाक्षर भाषण की शोभा धारण किए हुए, मलय पवन के झकोरों से कम्पित शाखासमूह से बारम्बार झूमते हुए यह वृक्ष मतवालों जैसे प्रतीत हो रहे हैं ॥ १७ ॥

और भी—आज इस मकरन्दोद्यान में मौलसिरी के वृक्षों द्वारा जड़ में युवतियों के द्वारा गालों में यह भर कर सींचा हुआ आसव पुष्प वर्षा करके सुगन्ध सा फैला है।

आहतिः—आ + √हन् + क्तिन् ।

गण्डूषासव—गालों में भरा हुआ आसव । गण्डूषासव से सींचने से अधखिले मौलसिरी पुष्प पूर्ण खिल जाते हैं, ऐसा प्रसिद्ध है—

आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रसितं निर्भरं नूपुराणां
झङ्कारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते भृङ्गसार्थैः ॥१८॥

विदूषकः—(आकर्ण्य) भो वअस्स ण एदे महुअरा णेत्तरसद्दं अणुहरन्ति। णेउरसद्दो ज्जेव एसो देवीए परिअणस्स। [**भो वयस्य, नैते मधुकरा नूपुरशब्दमनुहरन्ति। नूपुरशब्द एवैष देव्याः परिजनस्य।**]

वास्यते, इव, तरुण्याः, मुखशशिनि, मध्वाताम्रे, चम्पकानि, भान्ति, भृङ्गसार्थैः, आकर्ण्य, अशोकपादाहतिषु, निर्भरम्, रसितम्, नूपुराणाम्, झङ्कारस्य अनुगीतैः, अनुकरणम्, इव, आरभ्यते ॥ १८ ॥

मूल इति। अद्य=सम्प्रति। इह=अत्र मकरन्दोद्याने हि चिरात्=बहुकालात्। वकुलैः=मोलिश्रीपादपैः—मूले=मूलावच्छेदने। गण्डूषसेकासवः–गण्डूषसेकस्य=मुखपूर्तिप्रदानस्य आसवः=मद्यम्। पुष्पवृष्ट्या=प्रसूनवर्षणेन, वास्यते इव=क्रियते इव। तरुण्याः=युवत्याः। मुखशशिनि—मुख एव शशी=चन्द्रः, तस्मिन्। मध्वाताम्रे—मधुना=मद्येन, आताम्रे=किञ्चिद् रक्तवर्णे (सति), चम्पकानि =चम्पकपुष्पाणि। भान्ति=शोभन्ते। भृङ्गसार्थैः—भृङ्गाणाम्=मधुकराणाम् सार्थैः=समूहैः। च=अपि। आकर्ण्य=श्रुत्वा। अशोकपादाहतिषु—अशोकेषु यः पादाहतयः=अशोकवृक्षचरणप्रहारः तासु। निर्भरम्=अत्यर्थम्। रसितम्=स्रवितम्। नूपुराणाम्=मञ्जरीणाम्। झङ्कारस्य=शिञ्जितस्य। अनुगीतैः=पश्चाद् भवैः झङ्कारैः। अनुकरणम् इव=अनुकृतिरिव। आरभ्य=प्रारभ्यते। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। सुग्धरावृत्तम् ॥ १८ ॥

भो वयस्य इति। अनुहरन्ति=अनुकुर्वन्ति। परिजनस्य=परिचारिकावर्गस्य।

तरुणियों के चन्द्रमुख पर मधु से कुछ कुछ रक्त वर्ण होने पर चम्पा के फूल शोभित हो रहे हैं। और भ्रमर समूह से सुनकर अशोक वृक्षों पर मारी गई युवतियों की पादाहति (पाँव की ठोकर) में अत्यन्त रसित नूपुरों की झनकार की अनुगीति (बाद में होने वाली झनकार) सी प्रारम्भ की जा रही है ॥ १८ ॥

विदूषक—(सुनकर) मित्र, यह भौंरे नूपुर ध्वनि का अनुसरण नहीं कर रहे हैं यह तो साक्षात् देवी जी के परिजन (नौकरानियों) का नूपुर शब्द है।

'स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरोर्नर्तनात् कर्णिकारः ॥' इति।

राजा—वयस्य सम्यगुपलक्षितम् ।

(ततः प्रविशति वासवदत्ता काञ्चनमाला पूजोपकरण-
हस्ता सागरिका विभवतश्च परिवारः ।)

वासवदत्ता—हञ्जे कञ्चणमाले आदेसेहि मे मअरन्दुज्जाणस्स मग्गं। [हञ्जे काञ्चनमाले आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मार्गम् ।]

काञ्चनमाला—एदु एदु भट्टिणी । [एत्वेतु भर्त्री ।]

वासव०—(परिक्रम्य ।) हञ्जे कञ्चणमाले अध केत्तिअ दूरो सो रत्तासोअपाअवो जहिं मए भअवदो कुसुमाउहस्स पूआ णिव्वत्तइदव्वा । [हञ्जे काञ्चनमाले अथ कियद्दूरे स रक्ताशोकपादपो यत्र मया भगवतः कुसुमायुधस्य पूजा निर्वर्तयितव्या ।]

काञ्चन०—भट्टिणि आसण्णो ज्जेव । किं न पेक्खदि भट्टिणी । इअं क्खु सा निरन्तरुब्भिण्णकुसुमसोहिणी भट्टिणीए परिग्गिहिदा माहवी लदा । एसा वि अवरा णोमालिआ लदा जाए अआलकुसुमसमुग्गमसद्धालुणा भट्टिणा अणुदिणं आआसीअदि अप्पा । ता एदं अतिक्कमिअ दीसदि ज्जेव सो रत्तासोअपाअवो जहिं देवी पूआं णिव्वत्तइस्सादि । [भर्त्रि, आसन्न एव । किं न प्रेक्षते भर्त्री । इयं खलु सा निरन्तरोद्भिन्नकुसुमशोभिनी भर्त्र्या परिगृहीता माधवी लता । एषाप्यपरा नवमालिका लता यस्या अकालकुसुमसमुद्गमश्रद्धालुना भर्त्राऽनुदिनमायाऽस्यत आत्मा । तदेतामतिक्रम्य दृश्यत एव स रक्ताशोकपादपो यत्र देवी पूजां निर्वर्तयिष्यति ।]

उपलक्षितम् = तर्कितम् । पूजोपकरणहस्ता—पूजायाः = अर्चनाया उपकरणम्= सामग्री हस्ते = करे यस्याः सा । विभवतः = विभवानुसारम् । आदेशय = ज्ञापय । निवर्तयितव्या = सम्पादनीया ।

भर्त्रीति । आसन्नः = निकट एव । निरन्तरोद्भिन्नकुसुमशोभिनी- निरन्तरम्=

राजा—मित्र, तुमने, ठीक समझा ।

(तब वासवदत्ता, काञ्चनमाला, हाथ में पूजा सामग्री लिये हुए सागरिका तथा यथायोग्य सेवक वर्ग प्रवेश करता है ।)

वासवदत्ता—सखि कांचनमाले ! मुझे मकरन्दोद्यान का मार्ग बतलाओ ।

काञ्चनमाला—आवें, आवें महरानी जी ।

वासवदत्ता—(घूमकर) सखि काञ्चनमाले । अभी कितना दूर वह रक्ताशोकपादप है जहाँ मुझे भगवान् कुसुमायुध (कामदेव) की पूजा करनी चाहिए ।

काञ्चनमाला—हे स्वामिनी ! निकट ही है । आप देख क्यों न लें । यही वह निरन्तर

वासव०—ता एहि । तहिं ज्जेव लहु गच्छम्ह । [तदेहि । तत्रैव लघु गच्छामः ।]

काञ्चन०—एदु एदु भट्टिणी । [एत्वेतु भर्त्री ।]

(सर्वाः परिक्रामन्ति ।)

काञ्चन०—भट्टिणि अअं खु सो रत्तासोअपाअवो जहिं देवी पूआं णिव्वत्तइस्सदि [भर्त्रि अयं खलु स रक्ताशोकपादपो यत्र देवी पूजां निर्वर्तयिष्यति ।]

वासव०—तेण हि मे पूआणिमित्ताइ उवअरणाइउवणेहि । [तेन हि मे पूजानिमित्तान्युपकरणान्युपनय ।]

साग०—(उपसृत्य ।) भट्टिणि एदं सव्वं सज्जम् । [भर्त्रि एतत्सर्वं सज्जम् ।]

सततम् उद्भिन्नानि = विकसितानि कुसुमानि = पुष्पाणि, तैः शोभितुं शीलं यस्यास्तादृशी = सततविकासिकुसुमविराजिता । भर्त्र्या = स्वामिन्या (त्वयति) परिगृहीता = स्वीयतया स्वीकृता । माधवीलता = वासन्तीलता । अकालकुसुमसमुद्गमश्रद्धालुना = अकाले = अनवसरे यः कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् उद्गमः = उत्पत्तिः यस्मिन्, तस्मिन्, श्रद्धालुना = स्पृहाशालिना । भर्त्रा = स्वामिना वत्सराजेन । अनुदिनम् = प्रतिदिनम् । आयास्यते = परिभ्रम्यते । आत्मा—स्वशरीरम् । निर्वर्तयिष्यति = सम्पादयिष्यति ।

लघु=शीघ्रम् । ('लघुक्षिप्रमरं द्रुतम् । सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च' इत्यमरः । उपकरणानि = वस्तूनि । उपनय = आहर । सज्जम् = सम्भृतम् ।

फूल खिलने से शोभित महारानी (आप) के द्वारा अपनाई गई माधवीलता है और यह दूसरी नवमालिका है जिसके असमय पर फूलों के खिलने की श्रद्धावाले महाराज नित्य-नित्य चिन्तित रहते हैं । अतः इसे लाँघ (पार) कर वह रक्ताशोक वृक्ष ही दिखलाई पड़ रहा है जहाँ आप पूजा करेंगी ।

वासवदत्ता—तो आओ वहीं (हम सब) शीघ्र चलते हैं ।

काञ्चनमाला—आइये, आइये महारानी जी !

(सभी चलती हैं)

काञ्चनमाला—महारानी जी ! यही वह रक्ताशोक वृक्ष है जहाँ देवी जी पूजा करेंगी ।

वासवदत्ता—तो फिर मेरे लिए पूजा सामग्री ले आओ ।

सागरिका—(निकट आकर) महारानी जी ! यह सब तैयार है ।

वासव०—(निरूप्य आत्मगतम् ।) अहो पमाओ परिअणस्स। जस्स ज्जेव दंसणपधादो पअत्तेण रक्खीअदि तस्स ज्जेव दिट्टिगोअरे पडिदा भवे। भोदु । एदं ताव भणिस्सम् । हञ्जे साअरिए कीस तुमं अज्ज मअणमहूस्सव-पराहीणे परिअणे सारिअं उज्झिअ इह आगदा । ता तहिं ज्जेवलहुं गच्छ। एदं वि सव्वं पूओवअरणं कञ्चणमालाए इत्थे समप्पेहि। [अहो प्रमादः परिजनस्य । यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत् । भवतु । एवं तावद् भणिष्यामि । (प्रकाशम् ।) हञ्जे सागरिके कस्मात्त्वमद्य मदनमहोत्सवपराधीने परिजने सारिकामुज्झित्येहागता । तत्त्रैव लघु गच्छ । एतदपि सर्वं पूजोपकरणं काञ्चनमालाया हस्ते समर्पय ।]

साग०—जं भट्टिणी आणवेदि । सारिया मए उण सुसंगदाए हत्थे-समप्पिदा एदं वि अत्थि मे पेक्खिदुं कोदूहलं किं जहा तादस्स अन्तेउरे भअवं अणङ्गो अच्चीअदि इह वि तह ज्जेव किं अण्णहेत्ति । ता अलक्खिदा भविअ पेक्खिस्सम् । जाव इह पूआसमओ होइ ताव अहं पि भअवन्तं अणंग ज्जेव पूअइदुं कुसुमाइं अवचिणिस्सम् । [यद्भर्त्र्याज्ञापयति । (इति तथा कृत्वा कतिचित्पदानि गत्वा । आत्मगतम् ।) सारिका मया पुनः सुसंगताया

आत्मगतम् = स्वगतम् । प्रमादः = असावधानता ('प्रमादोऽनवधानता' इत्यमरः ।) दर्शनपथात् = नेत्रमार्गात् । दृष्टिगोचरे = नेत्रव्यापारक्षेत्रे । मदनमहोत्सव-पराधीने–मदनमहोत्सवे = वसन्तोत्सवे पराधीनः–परायत्तः यस्तस्मिन् । परिजने–सेवकवर्गे । उज्झित्य – परित्यज्य ।

प्रेक्षितुम् = द्रष्टुम् । तातस्य=पितुः सिंहलेश्वरविक्रमबाहोः। अर्च्यते=पूज्यते ।

वासवदत्ता—(**देखकर मन ही मन**) सेवक वर्ग की यह लापरवाही विचित्र है। जिसकी दृष्टि से प्रयत्न करके बचाई जा रही थी उसी के सामने पड़ जायेगी अस्तु, तो कहूँगी (**प्रकट रूप में**) सखि सागरिके! आज तू मदन महोत्सव के पराधीन सेवक वर्ग पर सारिका (मैना पक्षी) को छोड़कर यहाँ कैसे चली आई। अतएव वहीं शीघ्र चली जा और इस सब पूजा सामग्री को भी काञ्चनमाला के हाथ में दे दे।

सागरिका—जैसी महारानी जी की आज्ञा। (**कहकर, कुछ कदम चलकर, मन ही**

आत्मगतम्—नाटक में जो बात सुनाई नहीं पड़ती है उसे आत्मगत या स्वगत कहते हैं यथा—'अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्'।

प्रकाशम्—नाटक में जो बात सभी को सुनाई पड़ती है उसे 'प्रकाश' कहा जाता है। यथा—'सर्वं श्राव्यं प्रकाशं स्यात्।'

हस्ते समर्पिता । एतदप्यस्ति मे प्रेक्षितुं कौतूहलं कि यथा तातस्यान्तःपुरे भगवाननङ्गोऽर्च्यते इहापि तथैव किमन्यथेति । तदलक्षिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये । यावदिह पूजासमयो भवति तावदहमपि भगवन्तमनङ्गमेव पूजयितुं कुसुमान्यवचेष्यामि ।]
(इति कुसुमावचयं नाटयति ।)

वासव०—कञ्चणमाले पडिट्ठावेहि असोअमूले भअवन्तं पज्जुण्णम् ।
[काञ्चनमाले प्रतिष्ठापयाशोकमूले भगवन्तं प्रद्युम्नम् ।]

काञ्चन०—जं भट्टिणी आणवेदि । [यद्भर्त्र्याज्ञापयति ।] (तथा करोति ।)

विदू०—भो वअस्स जधा वीसन्तो णेउरसद्दो तहा तक्केमि आअदा देवी असोअमूलंत्ति । [भो वयस्य यथा विश्रान्तो नूपुरशब्दस्तथा तर्कयामि आगता देव्यशोकमूलमिति ।]

अलक्षिता = आत्मानं गोपयित्वा । अवचेष्यामि = अवचयं करिष्यामि । प्रतिष्ठापय = स्थापितं कुरु । प्रद्युम्नम् = मदनम् ('मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो

मन) सारिका (मैना) को तो मैंने सुसंगता के हाथों सौंप दिया है। मुझे यह भी देखने का कौतूहल है कि क्या पिताजी के अन्तःपुर में जिस प्रकार कामदेव की पूजा की जाती है वैसे ही यहाँ भी अथवा दूसरे प्रकार से की जाती है। अतः अलक्षित होकर (छिप कर) देखूँगी। जब तक यहाँ पूजा का समय होता है तब तक भगवान् अनङ्ग (कामदेव) को पूजने के लिए फूल तोड़ लेती हूँ। (फूल तोड़ने का अभिनय करती है।)

वासवदत्ता—सखि काञ्चनमाले ! अशोक वृक्ष के नीचे भगवान प्रद्युम्न (कामदेव) को स्थापित करो।

काञ्चनमाला—जैसी देव की आज्ञा। (वैसा ही करती है।)

विदूषक—मित्र, नूपुरों की ध्वनि रुक गई है जिससे ज्ञात होता है कि महारानी जी अशोक वृक्ष के पास आ गई हैं।

सागरिका—इसका वास्तविक नाम रत्नावली था। यह अतीव सुन्दरी थी अतः रानी वासवदत्ता ईर्ष्या एवं आशंका के कारण उसे महाराज उदयन के समक्ष नहीं पड़ने देती थी।

अनङ्ग—शिवजी के द्वारा तीसरे नेत्र से कामदेव को शरीर से भस्म कर देने के कारण अनङ्ग कहा जाता है। सृष्टि को बनाये रखने के कारण पुनः शिवजी ने ही कामदेव को अनङ्ग (शरीर रहित) बना रहने का वरदान भी दिया था, जैसा कि कहा जाता है—

'हरताऽपि तनुं यस्य शम्भुना न बलं हृतमि'ति ।

अवचय—अव + √चि + अच् ।

राजा—(अवलोक्य ।) वयस्य सम्यगवधारितम् । पश्येयं देवी या किलेषा—

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् ।
आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ॥ १९ ॥

तदेहि । उपसर्पावः । (उपसृत्य ।) प्रिये वासवदत्ते !

वासव०—(विलोक्य ।) कधं अज्जउत्तो । जअदु अज्जउत्तो । एदं आसणं । एत्थ उववसदु अज्जउत्तो । [कथमार्यपुत्रः । जयतु जयत्वार्यपुत्रः । एतदासनम् । अत्रोपविशत्वार्यपुत्रः]

(राजा नाट्येनोपविशति ।)

काञ्चन०—भट्टिणि सहत्थदिण्णकुङ्कुमचच्चिआसोहिदं कदुअ रत्तासो-

मीनकेतन' इत्यमरः) । विश्रान्तः = झंकृतिरहितः । नूपुरशब्दः = नूपुरध्वनिः । तर्कयामि = मन्ये । अवधारितम् = मनसि कृतम् ।

अन्वयः—कुसुमसुकुमारमूर्त्तिः, नियमेन तनुतरम्, मध्यम् दधती मकरकेतोः, पार्श्वस्था, चापयष्टिः, इव, आभाति ॥ १९ ॥

कुसुमेति । कुसुमसुकुमारमूर्त्तिः—कुसुमम् = पुष्पम् इव सुकुमारा मूर्त्तिः = कोमलकायः यस्याः सा । नियमेन = उपवासव्रतादिना । तनुतरम् = क्षीणतरम् । मध्यम् = कटिभागम् । दधती = धारयन्ती । मकरकेतोः = मदनस्य, पार्श्वस्थाः = समीपस्था । चापयष्टिः = धनुर्लता इव आभाति = भासते । अत्रोपमालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥ १९ ॥

स्वहस्तदत्तकुंकुमर्चाचिकाशोभितम्—स्वहस्तेन दत्तम् = समर्पितम् कुंकुमर्चचि-

---

राजा—(देखकर) मित्र, मैंने ठीक समझ लिया । यह महारानी हैं । जो कि—

फूलों जैसी सुकुमार मूर्ति एवं व्रतोपवासादि के कारण क्षीण मध्य भाग वाली महारानी वासवदत्ता कामदेव के पास में स्थित धनुर्लता जैसी प्रतीत हो रही है ॥ १९ ॥

अतएव आओ चलें । (आगे जाकर) प्रिये वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(देखकर) क्या आर्यपुत्र हैं । आर्यपुत्र की जय हो, जय हो । यह आसन है, यहाँ आर्यपुत्र विराजें । (राजा नाटकीय ढङ्ग से बैठ जाता है)

काञ्चनमाला—स्वामिनि ! रक्ताशोक वृक्ष को अपने हाथ से किये हुए कुंकुम लेप से

इस श्लोक में रानी वासवदत्ता को 'कुसुमसुकुमार' एवं व्रतोपवासादि नियम धारण करने के कारण क्षीण कटि वाली दिखाया गया है ।

अपाअवं अच्चीअदु भअवं पज्जुण्णो। [भर्त्रि स्वहस्तदत्तकुङ्कुमर्चर्चिका-शोभितं कृत्वा रक्ताशोकपादपमर्च्यतां भगवान्प्रद्युम्नः ।]

वासव०—उवणेहि मे पूजोवअरणाइं । [उपनय मे पूजोपकरणानि ।]

(काञ्चनमालोपनयति । वासवदत्ता तथा करोति ।)

राजा—प्रिये !

प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता ।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती
बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥ २० ॥

कया = कुंकुमलेपनक्रियया शोभितम् = भूषितम् तत् ।

अन्वयः—प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः, कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता, मकरकेतनम्, अर्चयन्ती, बालप्रवालविटपिप्रभवा, लता, इव विभ्राजसे ॥ २० ॥

प्रत्यग्रेति । प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः—प्रत्यग्रेण=सद्यः कृतेन मज्जन-विशेषेण = स्नानातिशयेन विविक्ता=निर्मलकान्तिः=देहप्रभा यस्याः सा । कौसुम्भ-रागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता=कुसुम्भस्य=कुसुम्भपुष्पस्यायं कौसुम्भः यः रागः ('स्यात् कुसुम्भं वह्निशिखम्' इत्यमरः) = लोहितयम् तेन रुचिरम् = रमणीयम् यथा स्यात् तथा स्फुरन् = लसन् अंशुकान्तः = वस्त्रप्रान्तः यस्याः सा, मकरकेतनम्=प्रद्युम्नम् । अर्चयन्ती = पूजयन्ती । त्वम् = वासन्तिका । बालप्रवालविटपिप्रभवा लता—बालाः = नवीनाः ये प्रबालाः = पल्लवाः यस्मिन् तादृशः यो विटपिः = वृक्षः तस्मिन् प्रभवः = उत्पत्तिः यस्याः सा तादृशी लता = व्रततिः इव यथा । विभ्राजसे = राजसे । अत्र श्लेषसंकीर्णोपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २० ॥

लतापक्षे तु—मकरकेतनमर्चयन्ती त्वं (वसन्तसेना) प्रत्यग्रेण = तात्कालिकेन

शोभित (सजा) कर भगवान् प्रद्युम्न (कामदेव) की पूजा की जाय ।

वासवदत्ता—मेरी पूजा करने की सामग्री ले आओ ।

(काञ्चनमाला सामग्री ले आती है, वासवदत्ता वैसा ही करती है ।)

राजा—प्रिये ! तत्काल स्नान करने के कारण विशेष निर्मल कान्तिवाली (लता पक्ष में—शीघ्र सींचे जाने के कारण विशेष कान्तिवाली) कुसुम्भ पुष्प के समान लालरंग से रुचिर उड़ते हुए अंचल वाली (लता पक्ष में—कुसुम्भपुष्प के समान लालरंग से रुचिर बिखरती किरणों वाली) नूतन किसलयों वाली वृक्ष लता सी सुन्दर लग रही हो ॥ २० ॥

अपि च—

स्पृष्टस्त्वयैष दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन ।
उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः ॥ २१ ॥

अपि च—अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् ।
यदनेन न संप्राप्तः पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥ २२ ॥

मज्जनेन = जलसेकेन विशिष्टा विविक्ता कान्तिः = विशेषस्पष्टप्रभा यस्याः सा = कुसुम्मपुष्परञ्जनलसच्चञ्चलकान्तिमनोहरा । नूतनपल्लववृक्षप्रभवेति ॥ २० ॥

अन्वयः—दयिते, त्वया, स्मरपूजाव्यापृतेन, हस्तेन, स्पृष्टः, एषः अशोकः, उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय, इव, लक्ष्यते ॥ २१ ॥

स्पृष्ट इति । दयिते = प्रिये । त्वया = वासवदत्तया । स्मरपूजाव्यापृतेन = स्मरस्य = मदनस्य पूजायाम् = अर्चनायाम् व्यापृतेन = संलग्नेन । हस्तेन = करेण । स्पृष्टः = संजातस्पर्शः । एषः = अयम् । अशोकः = अशोकपादपः । उद्भिन्नापर मृदुतरकिसलयः–उद्भिन्नः = प्रकटीभूतः अपरः = अन्यः मृदुतरः = कोमलतरः किसलयः = नूतनपल्लवः यस्य तथाविधः । इव = समम् । लक्ष्यते = प्रतीयते । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—अयम्, अनङ्गः, अद्य, ध्रुवम्, अनङ्गत्वम्, निन्दिष्यति, यद् अनेन, तव पाणिस्पर्शोत्सवः न प्राप्तः ॥ २२ ॥

अनङ्ग इति । अयम् = एषः । अनङ्गः = मदनः । अद्य = तव पूजावसरे । ध्रुवम् = खलु । अनङ्गत्वम् = स्वशरीरधारणहीनताम् । निन्दिष्यति = धिक् करिष्यति । यद् = यतः अनेन = मदनेन (अनङ्गत्वात्) तव = ते । पाणिस्पर्शोत्सवः—पाणेः = करस्य, स्पर्शः = आमर्शनम्, तेन उत्सवः = आनन्दलाभः । न = नैव, प्राप्तः = आसादितः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् । यथा—'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥' इति ॥ २२ ॥

और भी—हे प्रिये ! तुम्हारे कामदेव की पूजा में व्यस्त हाथ से छुआ गया यह अशोक वृक्ष निकले हुए दूसरे कोमलतर किसलय पल्लव जैसा प्रतीत हो रहा है ॥ २१ ॥

और भी—यह अनङ्ग (कामदेव) आज अवश्य ही अपने शरीर हीन होने पर पछता रहा होगा क्योंकि उसने तुम्हारे (कोमलता) हाथ के स्पर्श का आनन्द नहीं प्राप्त कर पाया है । अर्थात् शरीर हीन होने के कारण कामदेव को पूजा करने में व्यस्त होते हुए भी तुम्हारे हाथ का स्पर्श नहीं हो पाया ॥ २२ ॥

काञ्चन०—भट्टिणि अच्चिदो भअवं पज्जुण्णो । ता करेहि भत्तुणो उइदं पूजासक्कारम् । [भर्त्रि अर्चितो भगवान्प्रद्युम्नः तत्कुरु भर्तुरुचितं पूजासत्कारम्]

वासव०—तेण हि उवणेहि मे कुसुमाइं विलेवणं च । [तेन हि उपनय मे कुसुमानि । विलेपनं च]

काञ्चन०—भट्टिणि एदं सव्वं सज्जं । [भर्त्रि एतत्सर्वं सज्जम् ।]

(वासवदत्ता नाटयेन राजान पूजयति ।)

सागरिका—(गृहीतकुसुमा ।) हद्धी हद्धी । कहं कुसुमलोहोक्खित्तहिअआए अदिचिरं ज्जेव मए किदम् । ता जाव इमिणा सिन्दुवारविडवेण ओवारिअसरीरा भविअ पेक्खामि । कहं पच्चक्खो एव्व भअवं कुसुमाउहो इह पूआं पडिच्छदि अम्हाणं तादस्स अन्तेउरे उण चित्तगदो अच्चीअदि । ता अहं वि इह त्यिदा ज्जेव इमेहिं कुसुमेहिं भअवन्तं कुसुमाउहं पूअइस्सं । णमो दे भअवं कुसुमाउह अमोइदंसणो मे दाणिं तुमं भविस्ससि । दिट्ठं जं दिट्ठव्वम् । पा जाव ण कोवि मं पेक्खदि तावज्जेव गमिस्सम् । [हा धिक् हा धिक् । कथं कुसुमलोभोत्क्षिप्तहृदययातिचिरमेव मया कृतम् । तद्यावदनेन सिन्धुवारविटपेनापवारितशरीरा भूत्वा प्रेक्षे । (तथा कृत्वा विलोक्य सविस्मयम् ।) कथं प्रत्यक्ष एव भगवान्कुसुमायुध इह पूजां प्रत च्छति । अस्माकं तातस्यान्तःपुरे पुनश्चित्रगतोऽर्च्यते । तदहमपीह स्थितैवैभिः कुसुमैर्भगवन्तं कुसुमायुधं पूजयिष्ये । (कुसुमानि प्रक्षिप्य ।) नमस्ते भगवन्कुसुमायुध अमोघदर्शनो मे इदानीं त्वं भविष्यसि । (इति प्रणम्य ।) दृष्टं यद् द्रष्टव्यम् । तद्यावन्न कोऽपि मां प्रेक्षते तावदेव गमिष्यामि ।] (इति कतिचित्पदानि गच्छति ।)

गृहीतकुसुमा—गृहीतानि कुसुमानि यया सा = हस्तगृहीतपुष्पा । कुसुमलोभोत्क्षिप्तहृदया—कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् लोभेनोत्क्षिप्तः हृदयः यस्याः सा = पुष्पलोभाकृष्टचेतसी । सिन्धुवारविटपेन = निर्गुण्डीवृक्षेण । अपवारितशरीरा—

काञ्चनमाला—स्वामिनि, भगवान् प्रद्युम्न (कामदेव) की पूजा की जा चुकी है अतः महाराज का उचित पूजा—सत्कार कीजिये ।

वासवदत्ता—तो फिर मेरे लिए पुष्प तथा चन्दनादि लेप ले आ ।

काञ्चनमाला—महारानी जी ! यह सब तैयार है ।

(वासवदत्ता राजा को पूजने का अभिनय करती है)

सागरिका—(फूल लिये हुए) हाय हाय, फूलों के लोभ से आकृष्ट हृदय वाली मुझ (सागरिका) ने तो बड़ी ही देर कर दी । अतः तब तक इस सिन्धुवार वृक्ष से अपने शरीर को छिपा कर (स्वयं छिप कर) देखती हूँ । **(वैसा करके, आश्चर्य से देखकर)**

काञ्चन०—अज्ज वसन्तअ एहि संपद तुमं वि सोत्थिवाअणं पडिच्छ। [आर्य बसन्तक एहि सांप्रतं त्वमपि स्वस्तिवाचनं प्रतीच्छ।] (विदूषक उपसर्पति।)

वासव०—(विलेपनकुसुमाभरणदानपूर्वकम्।) अज्ज सोत्थिवाअणं षडिच्छ। [आर्य स्वस्तिवायनं प्रतीच्छ।] (इत्यर्पयति।)

विदू०—(सहर्षं गृहीत्वा।) सोत्थि भोदोए। [स्वस्ति भवत्यै।]

(नेपथ्ये वैतालिकः पठति।)

अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा-
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतन्।

अपवारितम् = अन्तर्हितम् शरीरम् = तनुः यस्याः सा। प्रत्यक्षः = लोचनगोचरः। प्रतीच्छति = आदत्ते। चित्रगतः=चित्रांकितः। प्रक्षिप्य = विकीर्य। अमोघदर्शनः-अमोघं = निष्फलम् दर्शनम् यस्य सः।

आर्य । = श्रेष्ठ। स्वस्तिवाचनम् = फलपुष्पादिदानम्। प्रतीच्छ = आदेहि। वैतालिकः = गीतोपजीवी सेवकः।

अन्वयः—सम्प्रति, सायन्तने, समये, नभसः, पारम्, प्रयाते, रवौ, अस्ता-

---

क्या भगवान् कुसुमायुध यहाँ साक्षात् ही पूजा को स्वीकार कर रहे हैं? हमारे पिताजी के अन्तःपुर में तो चित्र में बने हुए कामदेव पूजे जाते हैं। तो मैं भी यहाँ खड़ी होकर ही इन फूलों से भगवान् कुसुमायुध की पूजा करूँगी (फूल बिखेर कर) नमस्ते भगवन् कुसुमायुध! अब तुम मेरे लिए अमोघदर्शन वाले बनोगे (इस प्रकार प्रणाम करके) मुझे जो देखना था देख लिया। अतः जब तक कोई मुझे देख न ले उससे पहले ही चली जाऊँगी। (कुछ कदम आगे बढ़ती है)

काञ्चनमाला—आर्य वसन्तक! आओ। अब तुम भी स्वस्तिवाचन लो। (विदूषक आगे बढ़ता है।)

वासवदत्ता—(पुष्पचन्दनादि विलेपन सामग्री तथा आभूषण देती हुई) आर्य स्वस्तिवाचन ग्रहण करो। (अर्पण करती है)

विदूषक—(प्रसन्नता से लेकर) आपका कल्याण हो।

(नेपथ्य में वैतालिक पढ़ता है)

इस सन्ध्या काल में आकाश के छोर पर पहुँचे हुए सूर्य के अपनी सम्पूर्ण कान्ति को

आर्य—नाटक में ब्राह्मण को भी आर्य शब्द से अभिहित किया जाता है। यथा—

'आर्येति ब्राह्मणं ब्रूयादि'ति भरतोक्तिः।

वैतालिक—अनेक प्रकार की ताल (धुनियों) के जानकार को नाटक में वैतालिक कहा जाता है,

इस श्लोक में उदयन की चन्द्रमा से तुलना की गई है, जो सागरिका प्राप्ति के हेतुभूत

संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेवितुं
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ॥ २३ ॥

सागरिका—(श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य राजानं सस्पृहं पश्यन्ती।) कहं अअं सो राआ उदअणो जस्स अहं तादेण दिण्णा ता परप्पेसणदूसिदं [मे

पास्तसमस्तभासि, (सति) समम्, आस्थानीम्, सम्पतन्, एषः, नृपजनः, इन्दोः इव, दृशाम्, प्रीत्युत्कर्षकृतः, तव, उदयनस्य, सरोरुहद्युतिमुषः, पादान्, आसेवितुम्, उद्वीक्ष्यते ॥ २३ ॥

अस्तापास्तेति। सम्प्रति=इदानीम्। सायन्तने=सन्ध्याकाले। समये=अवसरे। नभसः=आकाशस्य। पारम्=प्रान्ते। प्रयाते=गच्छति। रवौ=सूर्यं (सति) अस्तापास्तसमस्तभासि–अस्ते=अस्ताचले, अपास्ताः=क्षिप्ताः समस्ताः=निखिलाः भासः=किरणाः येन तस्मिन्। (सति) समम्=साकम्, आस्थानीम्=राजसभाम्। सम्पतन्=समागच्छन्। एषः=अयम्। नृपजनः=राजलोकः। इन्दोः=चन्द्रस्य। इव=समम्। दृशाम्=नेत्राणां प्रीत्युत्कर्षकृतः–प्रीतेः=प्रसन्नतायाः उत्कर्षः=अतिशयः, तं करोतीति तादृशस्य=नेत्रानन्दजननस्य। तव=ते। उदयनस्य=राज्ञः वत्सराजस्य (चन्द्रपक्षे तु—उदितस्य) सरोरुहद्युतिमुषः–सरोरुहाणाम्=पद्मानाम्, द्युतिम्=कान्तिम् मुष्यन्ति=हरन्ति, तान्=कमलकान्तिहरान्। पादान्=चरणान् (किरणान् वा) आसेवितुम्=उपासितुम्। उद्वीक्ष्यते=ऊर्ध्वमुखम् प्रेक्षते। अत्रोपमाश्लेषयोः सङ्करालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २३ ॥

परप्रेषणदूषितम्—परस्य=अन्यस्य राजवर्गस्य प्रेषणम्=प्रेरणम्, तेन

अस्ताचल की चोटियों पर बिखेर देने पर एक साथ सभामण्डप को जाता हुआ यह राजसमाज चन्द्रमा के समान नेत्रों की प्रीति को बढ़ाने वाले आप (उदयन) देदीप्यमान चन्द्र) के कमलकान्ति को तिरस्कृत करने (चुराने) वाले चरणों (किरणों) को झाँक रहा है ॥ २३ ॥

सागरिका—(सुनकर हर्ष के सहित घूमकर राजा को चाह से देखती हुई) क्या यह वही राजा उदयन हैं जिनको मैं पिताजी के द्वारा समर्पित की गई हूँ। (दीर्घ

प्रथमानुराग रूप बीज के अनुकूल है। अतः यहाँ विलोभन नामक सन्ध्यङ्ग है, यथा—'गुणनिर्वर्णनं चैव विलोभनमिति स्मृतम्। कामदेव के बहाने छिपा हुआ उदयन प्रकट हो जाता है अतः मुखसन्धि का उद्भेदाङ्ग भी है। यथा—'बीजार्थस्य प्ररोहो यः स उद्भेद इति स्मृतः।'

जीविदं एदस्स दंसणेण दाणिं बहुमतं संवृत्तम् । [**कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता । (दीर्घं निःश्वस्य ।) तत्परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमतं संवृत्तम् ।**]

राजा—अये कथमुत्सवापहृतचेतोभिः संध्यातिक्रमोऽप्यस्माभिर्नोपलक्षितः । संप्रति परिणतमहः । देवि पश्य—

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम् ।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥ २४ ॥

देवि तदुत्तिष्ठ । आवासाभ्यन्तरमेव प्रविशावः । (सर्वे उत्थाय परिक्रामन्ति ।)

दूषितम् = पतितम् । जीवितम् = जीवनम् । बहुमतम् = धन्यम् । संवृत्तम्=जातम् । उत्सवापहृतचेतोभिः—उत्सवेन = समारोहेण अपहृतानि = आक्षिप्तानि चेतांसि = मनांसि येषां तैः । संध्यातिक्रमः–सन्ध्यायाः अतिक्रमणम्=समाप्तिः । उपलक्षितः= दृष्टः परिणतम् = समाप्तम् । अहः = दिवसम् ।

अन्वयः—परिपाण्डुना, मुखेन, हृदयस्थितम्, प्रियम्, रमणी, इव, इयम्, प्राची उदयतटान्तरितम्, दिङ्नाथम्, सूचयति ॥ २४ ॥

उदयतटेति । परिपाण्डुना = विरहपाण्डुरत्वेन । मुखेन = आननेन । हृदयस्थितम्–हृदये = चित्ते स्थितम् । प्रियम् = वल्लभम् (सूचयन्ती) रमणी = युवती इव । इयम्=एषा । प्राची = पूर्वदिशा । उदयतरान्तरितम्=उदयाचलापवारितम् । दिङ्नाथम् = दिक्पतिं चन्द्रम् । सूचयति = निर्दिशति । अत्रोपमालंकारः । आर्यावृत्तम् ॥ २४ ॥

देवि = हे राजमहिषि । आवासाभ्यन्तरम् = गृहान्तरम् । त्वरितम्=शीघ्रम् ।

निःश्वास लेकर) तो दूसरे के द्वारा भेजे जाने से दूषित भी मेरा जीवन इनके दर्शन से अब धन्य हो गया है ।

राजा—क्या उत्सव के द्वारा आकृष्ट चित्तवाले हम लोगों ने सन्ध्याकाल व्यतीत होना भी नहीं देख पाया । अब दिन समाप्त हो गया । देवि, देखोः—

विरह के कारण पीले हुए मुख से हृदय में स्थित पति को विदित कराती हुई युवती के समान यह पूर्व दिशा उदयाचल में छिपे हुए दिशा के स्वामी चन्द्रमा की (चन्द्रोदय होने की) सूचना दे रही है ।

हे देवि, तो उठो । महल के अन्दर ही (हम दोनों) प्रवेश करें । **(सभी उठकर चलने लगते हैं ।)**

सागरिका—कधं पत्थिदा देवी । भोदु । ता अहंवि तुरिदं गमिस्सम् । हद्धी हद्धी । मन्दभाइणीए मए पेक्खिदुमपि चिरं ण पारिदो अअं जणो । [कथं प्रस्थिता देवी । भवतु । तदहमपि त्वरितं गमिष्यामि । (राजानं सस्पृहं दृष्ट्वा । निःश्वस्य ।) हा धिक् हा धिक् । मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः ।]

(इति राजानं पश्यन्ती निष्क्रान्ता ।)

राजा—(परिक्रामन् ।)

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।
श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव ॥ २५ ॥

प्रेक्षितुम् = द्रष्टुम् । चिरम् = बहुकालम् । पारितः = पारंगतः । अयं जनः = प्रियतमो वत्सराजः ।

अन्वयः—देवि पश्य, शशिनः, शोभातिरस्कारिणा, त्वन्मुखपङ्कजेन, विनिर्जितानि, अब्जानि, सहसा, विच्छायताम्, गच्छन्ति । ते, परिवारवारवनितागीतानि, श्रुत्वा, भृङ्गाङ्गनाः, सञ्जातलज्जाः, इव, शनकैः, मुकुलान्तरेषु, लीयन्ते ॥२५॥

देवीति । देवि, प्रिये । पश्य = अवलोकय । शशिनः = चन्द्रस्य । शोभातिरस्कारिणा–शोभाम् = कान्तिम् तिरस्करोति = अभिभावयति तेन । त्वन्मुखपङ्कजेन—तव = भवत्याः मुखम् = आननम् एव पङ्कजम् = कमलम् तेन । विनिर्जितानि = पराजितानि अब्जानि = वारिजानि । सहसा=झटिति । विच्छायताम् = कान्तिहीनताम् । गच्छन्ति = प्रयान्ति । ते = तव । परिवारवारवनितागीतानि = परिवाराः = परिजनाः वारवनिताः = वाराङ्गनाश्च, तासां गीतानि =

सागरिका—क्या देवी जी चल दीं । अस्तु, तो मैं भी शीघ्र चलूँ । ((सस्पृह नजरों से राजा को देखकर, निःश्वास लेते हुये) हाय हाय ! मुझ मन्दभागिनी द्वारा देर तक यह महाराज देखे तक न जा सके ।

(इस प्रकार राजा को देखती हुई निकल जाती है ।)

राजा—(घूमते हुए) देवि, देखो, चन्द्रमा की शोभा का तिरस्कार करने वाले तुम्हारे मुखकमल से पराजित (तिरस्कृत) कमल सहसा मलिन पड़ रहे हैं । तुम्हारी सेविकाओं तथा नर्तकियों के गीतों को सुनकर भ्रमरियाँ लज्जित होकर मुकुलित कमल की कलियों में छिपी जा रही हैं ॥ २५ ॥

(इति निष्कान्ताः सर्वे ।)

इति मदनमहोत्सवो नाम प्रथमोऽङ्कः ।

गेयानि श्रुत्वा = आकर्ण्य । भृङ्गाङ्गनाः = भ्रमर्यः । सञ्जातलज्जाः = सञ्जाता= उत्पन्ना लज्जा = व्रीडा (आत्मगीतहीनतया लज्जिताः) यासु ताः । इव भूत्वा, शनकैः = शनैः शनैः । मुकुलान्तरेषु = कलिकान्तरेषु । लीयन्ते—निलीनाः भवन्ति । अत्र प्रतीपहेत्वलङ्कारोत्प्रेक्षाणामङ्गाङ्गिभावेन संकरः । शार्दूलविक्री- डितं वृत्तम् ॥ २५ ॥

(इति सर्वे निष्क्रान्ताः)

इति परमेश्वरदीनपाण्डेय प्रणीतायां सुधाटीकायां रत्नावली- नाटिकाया मदनमहोत्सव नाम प्रथमोऽङ्कः ।

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार मदनमहोत्सव नामक प्रथम अङ्क की हिन्दी टीका समाप्त ।

अंक समाप्ति पर इस प्रकार सबके मञ्च से निकल जाने का विधान होता है ।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सारिकापञ्जरव्यग्रहस्ता सुसंगता ।)

सुसंगता—हद्धी हद्धी । कहिं दाणिं मम हत्थे सारिआपञ्जरं णिक्खिविअ गदा मे पिअसही साअरिआ । ता कहिं पुण एणं पेक्खिस्सम् । कहं एसा खु णिउणिआ इदो ज्जेव आअच्छदि । ता जाव एदं पुच्छिस्सम् । [हा धिक् हा धिक् । कुत्रेदानीं मम हस्ते सारिकापञ्जरं निक्षिप्य गता मे प्रियसखी सागरिका । तत्क्व पुनरेनां प्रेक्षिष्ये ? (अग्रतोऽवलोक्य ।) कथमेषा खलु निपुणिकेत एवागच्छति । तद्यावदेनां प्रक्ष्यामि ।]

(ततः प्रविशति निपुणिका ।)

निपुणिका—(सविस्मयम् ।) अच्चरिअं अच्चरिअं अणण्णसदिसो पभावो मण्णे देवदाए। उवलद्धो खु मए भट्टिणो वुत्तन्तो। ता गदुअ भट्टिणीए णिवेदइस्सम् । [आश्चर्यमाश्चर्यम् । अनन्यसदृशः प्रभावो मन्ये देवतायाः । उपलब्धः खलु मया भर्तुर्वृत्तान्तः । तद्गत्वा भर्त्र्यै निवेदयिष्यामि ।] (इति परिक्रामति ।)

सुसं०—(उपसृत्य) सहि णिउणिए कहिं दाणिं तुमं विम्हओक्खित्तहिअआ विअ इह ट्ठिदं मं अवधीरिअ इदो अदिक्कामसि । [सखि निपुणिके क्वेदानीं त्वं विस्मयोत्क्षिप्तहृदयेव इह स्थितां मामवधीर्यतोऽतिक्रामसि ।]

निक्षिप्य = प्रक्षिप्य । प्रेक्षिष्ये=अवलोकयिष्यामि । निपुणिका=अपरा सखी । अनन्यसदृशः = अनुपमः । प्रभावः = सामर्थ्यम् । उपलब्धः=प्राप्तः । वृत्तान्तः समाचारः । भर्त्र्यै = स्वामिन्यै वासवदत्तायै ।

विस्मयोत्क्षिप्तहृदया—विस्मयेन = आश्चर्येण, उत्क्षिप्तम् = ऊर्ध्वीकृतम्

(तब सारिका के पिंजड़े को हाथ में लटकाये हुए सुसंगता प्रवेश करती है)

सुसंगता—हा धिक् हा धिक् । इस समय मेरे हाथ में सारिका के पिंजड़े को डालकर मेरी प्रिय सखी सागरिका न जाने कहाँ चली गई। तो कहाँ इसे देखूँ । (सामने देखकर) क्या यह निपुणिका इधर ही आ रही है । तो इसी से पूछती हूँ ।

(तब निपुणिका प्रवेश करती है ।)

निपुणिका—(आश्चर्य के साथ) आश्चर्य है, आश्चर्य है देवताओं का मैं अनुपम प्रभाव मानती हूँ । मुझे महाराज का समाचार तो मिल ही गया । अतः जाकर महारानी जी से कहूँगी । (घूमती है)

सुसंगता—(आगे बढ़कर) सखि निपुणिके ! इस समय विस्मयपूर्ण हृदय वाली

अवधीर्य—अव + √धृ + ल्यप् ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति मदनमहोत्सवो नाम प्रथमोऽङ्कः ।

गेयानि श्रुत्वा = आकर्ण्य । भृङ्गाङ्गनाः = भ्रमर्यः । सञ्जातलज्जाः = सञ्जाता-उत्पन्ना लज्जा = व्रीडा (आत्मगीतहीनतया लज्जिताः) यासु ताः । इव भूत्वा, शनकैः = शनैः शनैः । मुकुलान्तरेषु = कलिकान्तरेषु । लीयन्ते—निलीनाः भवन्ति । अत्र प्रतीपहेत्वलङ्कारोत्प्रेक्षाणामङ्गाङ्गिभावेन संकरः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २५ ॥

(इति सर्वे निष्क्रान्ताः)

इति परमेश्वरदीनपाण्डेय प्रणीतायां सुधाटीकायां रत्नावली-नाटिकाया मदनमहोत्सव नाम प्रथमोऽङ्कः ।

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार मदनमहोत्सव नामक प्रथम अङ्क की हिन्दी टीका समाप्त ।

अंक समाप्ति पर इस प्रकार सबके मञ्च से निकल जाने का विधान होता है ।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सारिकापञ्जरव्यग्रहस्ता सुसंगता ।)

सुसंगता—ह्द्धी ह्द्धी । कहिं दाणिं मम हत्थे सारिआपञ्जरं णिक्खिविअ गदा मे पिअसही साअरिआ । ता कहिं पुण एणं पेक्खिस्सम् । कहं एसा खु णिउणिआ इदो ज्जेव आअच्छदि । ता जाव एदं पुच्छिस्सम् । [हा धिक् हा धिक् । कुत्रेदानीं मम हस्ते सारिकापञ्जरं निक्षिप्य गता मे प्रियसखी सागरिका । तत्क्व पुनरेनां प्रेक्षिष्ये ? (अग्रतोऽवलोक्य ।) कथमेषा खलु निपुणिकेत एवागच्छति । तद्यावदेनां प्रक्ष्यामि ।]

(ततः प्रविशति निपुणिका ।)

निपुणिका—(सविस्मयम् ।) अच्चरिअं अच्चरिअं अणण्णसदिसो पभावो मण्णे देवदाए। उवलद्धो खु मए भट्टिणो वुत्तन्तो। ता गदुअ भट्टिणीए णिवेदइस्सम् । [आश्चर्यमाश्चर्यम् । अनन्यसदृशः प्रभावो मन्ये देवतायाः । उपलब्धः खलु मया भर्तुर्वृत्तान्तः । तद्गत्वा भर्त्र्यै निवेदयिष्यामि ।] (इति परिक्रामति ।)

सुसं०—(उपसृत्य) सहि णिउणिए कहिं दाणिं तुमं विम्हओक्खित्तहिअआ विअ इह ट्ठिदं मं अवधीरिअ इदो अदिक्कामसि । [सखि निपुणिके क्वेदानीं त्वं विस्मयोत्क्षिप्तहृदयेव इह स्थितां मामवधीर्यतोऽतिक्रामसि ।]

निक्षिप्य = प्रक्षिप्य । प्रेक्षिष्ये=अवलोकयिष्यामि । निपुणिका=अपरा सखी । अनन्यसदृशः = अनुपमः । प्रभावः = सामर्थ्यम् । उपलब्धः=प्राप्तः । वृत्तान्तः समाचारः । भर्त्र्यै = स्वामिन्यै वासवदत्तायै ।

विस्मयोत्क्षिप्तहृदया—विस्मयेन = आश्चर्येण, उत्क्षिप्तम् = ऊर्ध्वीकृतम्

(तब सारिका के पिंजड़े को हाथ में लटकाये हुए सुसंगता प्रवेश करती है)

सुसंगता—हा धिक् हा धिक् । इस समय मेरे हाथ में सारिका के पिंजड़े को डालकर मेरी प्रिय सखी सागरिका न जाने कहाँ चली गई । तो कहाँ इसे देखूँ । (सामने देखकर) क्या यह निपुणिका इधर ही आ रही है । तो इसी से पूछती हूँ ।

(तब निपुणिका प्रवेश करती है ।)

निपुणिका—(आश्चर्य के साथ) आश्चर्य है, आश्चर्य है देवताओं का मैं अनुपम प्रभाव मानती हूँ । मुझे महाराज का समाचार तो मिल ही गया । अतः जाकर महारानी जी से कहूँगी । (घूमती है)

सुसंगता—(आगे बढ़कर) सखि निपुणिके ! इस समय विस्मयपूर्ण हृदय वाली?

अवधीर्य—अव + √धृ + ल्यप् ।

निपु०—कधं सुसंगदा । हला सुसंगदे सुट्ठु तुए जाणिदं । एदं क्खु मम विम्हअस्स काअणम् । अज्ज किल भट्टा सिरिपव्वतादो आअदस्स सिरिखण्डदासणामधेअस्स धम्मिअस्स सआसादो अकालकुसुमसंजणदोहलअं सिक्खिअ अत्तणो पडिगिहीदं णोमालिअं कुसुमसमिद्धिसोहिदं करिस्सदित्ति तहि एदं वुत्तान्तं जाणिदुं देवीए पेसिदम्हि । तुमं उण कहिं पत्थिदा । [कथं सुसंगता । हला सुसंगते सुष्ठु त्वया ज्ञातम् । एतत्खलु मम विस्मयस्य कारणम् । अद्य किल भर्ता श्रीपर्वतादागतस्य श्रीखण्डदासनामधेयस्य धार्मिकस्य सकाशादकालकुसुमसंजननदोहदं शिक्षित्वात्मनः परिगृहीतां नवमालिकां कुसुमसमृद्धिशोभितां करिष्यतीति तत्रैतं वृत्तान्तं ज्ञातुं देव्या प्रेषितास्मि । त्वं पुनः कुत्र प्रस्थिता ।]

हृदयम् = चेतः यस्याः सा । इह = अत्र । स्थिताम् = वर्त्तमानाम् । अवधीर्य = अनाहृत्य । इतः = अस्मात् स्थानात् । अतिक्रामसि = पुरः सरसि । सुष्ठु = सम्यक् । ज्ञातम् = अवगतम् । भर्त्ता = स्वामी वत्सराजः । धार्मिकस्य = धर्माचारिणः । सकाशात् = निकटात् । अकालकुसुमसंजननदोहदम्—अकाले = असमये कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् सञ्जननम् = उत्पत्तिः, तस्य दोहदम् = कारकम् शिक्षित्वा = विज्ञाय । आत्मनः = स्वस्य । परिगृहीताम् = अङ्गीकृताम् । कुसुमसमृद्धिशोभिताम्—कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् समृद्धिः = विपुलता, तया शोभिताम् = अलंकृताम् ।

(तुम) यहाँ खड़ी मुझको उपेक्षित कर के कहाँ जा रही हो ?

निपुणिका—क्या सुसंगता है । सखि सुसंगते ! तुमने ठीक जान लिया । वास्तव में मेरे विस्मय का कारण है कि आज महाराज (उदयन) श्री पर्वत से आये हुए श्रीखण्डदास नामक धार्मिक के समीप से असमय में फूल पैदा करने वाली क्रिया सीखकर अपनी नवमालिका को फूलों की समृद्धि से शोभित कर देंगे । इस बात को ज्ञात करने के लिए महारानी ने भेजा है । फिर तुम कहाँ जा रही हो ।

दोहद—उत्पत्तिसाधन । यहाँ दोहद शब्द फूलों को उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त द्रव्य के अर्थ में आया है ।

यथा—'तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् । पुष्पाण्युत्पादकं द्रव्यं दोहदः स्यात तत्क्रिया' इति शब्दार्णव ।

सुसंगता—पिअसहिं साअरिअं अण्णेसिदुम्। [प्रियसखीं सागरिका-मन्वेष्टुम्।]

निपुणिका—सहि दिट्ठा मए दे पिअसही साअरिआ गहिदचित्तफलक-वत्तिआसमुग्गआ समुव्विग्गा विअ कदलीघरअं पविसन्ती। ता गच्छ तुमं। अहं पि देवीए सआसं गमिस्सम्। [सखि दृष्टा मया ते प्रियसखी सागरिका गृहीतचित्रफलकवर्तिकासमुद्गका समुद्विग्नेव कदलीगृहं प्रविशन्ती। तद्गच्छ त्वम्। अहमपि देव्याः सकाशं गमिष्यामि।]

(निष्क्रान्ते।)

इति प्रवेशकः

(ततः प्रविशति गृहीतचित्रफलकवर्तिका मदनावस्थां नाटयन्ती सागरिका।)

सागरिका—(निःश्वस्य।) हिअअ पसीद पसीद। किं इमिणा आआ-समेत्तफलेण दुल्लहजणप्पत्थणाणुबन्धेण। अण्णं च। जेण एव्व दिट्ठेण दे

अन्वेष्टुम् = अन्वेषणम् कर्त्तुम्। गृहीतचित्रफलकवर्तिका = गृहीता चित्रफल-कस्य = आलेख्यस्य वर्त्तिका = तूलिका समुद्गका = पेटिका च यया सा। समुद्विग्ना = खिन्ना। इव = यथा। कदलीगृहम् = रम्भाकुञ्जम्। प्रवेशकः = परिचायकः।

निःश्वस्य = उच्चैः श्वासं गृहीत्वा। आयासमात्रफलकेन = आयास एव

सुसंगता—प्रिय सखी सागरिका को ढूँढने।

निपुणिका—सखि! मैंने तुम्हारी प्रिय सखी सागरिका को चित्र बनाने की तूलिका (ब्रुश) और पेटिका लिये हुए परेशान सी कदली गृह में प्रवेश करती हुई देखा है।

(दोनों निकल जाती हैं।)

(इति प्रवेशक)

सागरिका—(निःश्वास लेकर) रे हृदय! प्रसन्न हो जा, प्रसन्न हो जा। इस दुःखदायी परिणाम वाले दुर्लभ जन (महाराज उदयन) को पाने की अभिलाषा का हठ करना व्यर्थ

प्रवेशक—नीच पात्रों द्वारा श्रोताओं अथवा दर्शकों को दो अङ्कों में होने वाली आगामी घटना की जानकारी प्रवेशक में कराई जाती है। तद्यथा—

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥' (साहित्यदर्पण)।

ईदिसो संतावो णं वट्ठदि तं एव्व पुणो वि पेक्खिदुं अहिलससित्ति अहो दे मूढदा। कहं अ अदिविसंस जम्मदो पहुदि सहसंवड्ढिदं इमं जणं परिच्चइअ खणमेत्तदंसणपरिचिदं जणं अणुगच्छन्तो ण लज्जसि। अह वा को तुह दोसो। अणङ्गसरपडणमीदेण तुए एव्वं अज्ज व्ववसिदम्। भोदु। अणङ्ग दाव उवालहिस्सं। भअवं कुसुमाउह णिज्जिअसअल-सुरासुरो भविअ इत्थिआजणं पहरन्तो कध ण लज्जसि। अह वा अणङ्गोसि। सव्वहा मम मन्दभाइणीए मरणं एव्व इमिणा दुण्णिमित्तेण उवत्थिदम्। ता जाव ण को वि इह आअच्छदि ताव आलेक्खसमप्पिदं तं अहिमदं जणं पेक्खिअ जहासमीहिदं करिस्सम्। जइ वि मे अदिसद्धसेण वेवदि अअं अतिमेत्तं अग्गहत्थो तहा वि णत्थि तस्स जणस्स अण्णो दसणावाओ त्ति जहा तहा आलिहिअ णं पेक्खिस्सम्। [हृदय प्रसीद प्रसीद। किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन। अन्यच्च येनैव दृष्टेन त ईदृशः संतापो ननु वर्धते तमेव पुनरपि प्रेक्षितुमभिलषसीत्यहो ते मूढता। कथं चातिनृशंस जन्मतः प्रभृति सह संवर्धितमिमं जनं परित्यज्य क्षणमात्र-दर्शनपरिचितं जनमनुगच्छन्न लज्जसे। अथवा कस्तव दोषः अनङ्गशरपत-नभीतेन त्वयैवमद्य व्यवसितम्। (सास्रम्।) भवतु। अनङ्गं तावदुपालप्स्ये। (अञ्जलिं बद्ध्वा।) भगवन्कुसुमायुध निर्जितसकलसुरासुरो भूत्वा स्त्रीजनं

आयासमात्रम् = खेदमात्रम् फलं = परिणामः यस्य तेन। दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन = दुर्लभश्चासौ जनः दुर्लभजनः = दुष्प्राप्यो वत्सराज उदयनस्तस्य प्रार्थनायाः = प्राप्त्यभिलाषस्य अनुबन्धः = हठस्तेन। मूढता = अविवेकः। अतिनृशंसः = अतिक्रूरः ('नृशंसो घातकः क्रूरः' इत्यमरः) जन्मतः प्रभृति = जन्मकाला-दारम्य सह सम्बर्द्धितम् = सहोषितम्। क्षणमात्रदर्शनपरिचितम्—क्षणमात्रम् = किञ्चित् कालम् यद् दर्शनम् = साक्षात्कारः, तेन परिचितम् = ज्ञातम्। अनुगच्छन् =

है। दूसरे यह कि—जिसको देखने मात्र से ऐसा सन्ताप बढ़ रहा है उसी को पुनः देखने को तू अभिलाषा कर रहा है। यह तेरी मूर्खता विचित्र है। रे अति क्रूर (हृदय), जन्म के आरम्भ से एक साथ बढ़े हुए इस जन (अर्थात् मुझ सागरिका) को छोड़कर क्षण मात्र के दर्शनों से परिचित जन (महाराज उदयन) का पीछा करते तुझे लज्जा नहीं आ रही है। अथवा तेरा क्या दोष है। कामदेव के बाणों की चोट से डरे हुए तू ने आज ऐसा किया है। (आँसू भर कर) अच्छा तो कामदेव को उलाहना दूँगी। (हाथ जोड़कर) भगवन्

आयासमात्रफलक—ऐसा हठ जिसमें परेशानी मात्र ही हाथ लगे, कोई अनुकूल फल प्राप्त न हो सके।

प्रहरन्कथं न लज्जसे। (विचिन्त्य) अथवा अनङ्गोऽसि। (दीर्घं निश्वस्य।) सर्वथा मम मन्दभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम्। (फलकमवलोक्य।) तद्यावन्न कोऽपीहागच्छति तावदालेख्यसमर्पितं तमभिमतं जनं प्रेक्ष्य यथासमीहितं करिष्यामि। (सावष्टम्भमेकमना भूत्वा नाटयेन फलकं गृहीत्वा निःश्वस्य) यद्यपि मेऽतिसाध्वसेन वेपतेऽयमतिमात्रमग्रहस्तस्तथापि नास्ति तस्य जनस्यान्यो दर्शनोपाय इति यथातथालिख्यैनं प्रेक्षिष्ये।] (इति नाटयेन लिखति।)

अनुसरन्। अनङ्गशरपतनभीतेन–अनङ्गस्य = कामदेवस्य शरः = बाणः तस्य पतनम् = प्रहारः, तस्मात् भीतेन = आतङ्केन। व्यवसितम्=आचरितम्। सास्रम्= अश्रुसहितम्। उपालप्स्ये = निन्दिष्यामि। निर्जितसकलसुरासुरः—निर्जिताः = विजिताः सकलाः = अखिलाः सुराः = देवाः, असुराः = राक्षसाश्च येन, सः। स्त्रीजनम् = अबलाजनम्। अनङ्गः = मदनः। मन्दभागिन्याः = हीनभाग्यायाः। मरणम् = मृत्युः। एव। अनेन = एतेन। दुर्निमित्तेन = दुःखयोगेन। आलेख्य-समर्पितम् = चित्राङ्कितम्। अभिमतम् = प्रियम्। जनम् = उदयनम्। यथा–समीहितम्=यथेप्सितम्। सावष्टम्भम्=दुःखितं हृदयं बलान्निगृह्य। अतिसाध्वसेन= अतिभयेन। वेपते = कम्पते। अतिमात्रम् = अत्यन्तम्। अग्रहस्तः = अग्रश्च असौ हस्तः = हस्ताग्रभागः। यथातथा = यथा कथंचित्। आलिख्य = चित्रं विधाय। एनम् = इमम्।

कामदेव! देवताओं और राक्षसों सबको जीत कर अबलाओं पर इस प्रकार प्रहार करते क्या तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है। (सोचकर) अथवा तुम शरीर रहित हो (शरीर हीनता से ही लज्जा नहीं आ रही है।) (लम्बी श्वास लेकर) सभी प्रकार से मुझ मन्दभागिनी की मृत्यु ही उस दुर्निमित्त ने उपस्थित कर दी है। (चित्रफलक को देखकर) अतः जबतक यहाँ कोई अन्य व्यक्ति आ नहीं जाता है तब तक इस चित्र लिखित प्रियजन (उदयन) को देखकर यथा अभिलषित (मन चाहा) कर लूँ। (दुःखी मन को एकाग्र कर चित्रफलक को लेकर निःश्वास लेने का अभिनय करती है।) यद्यपि अत्यन्त घबराहट से मेरा हस्ताग्र भाग (अँगुलियाँ) काँप रहा है तथा उस प्रियतम (उदयन) के दर्शन का कोई अन्य उपाय नहीं है। अतः जैसे-तैसे चित्र आदि उपाय से इनको देखूँगी। (चित्र बनाने का अभिनय करती है।)

दुर्निमित्त—एक दासी का राजा से प्रेम करना तथा उसके वियोग में आत्महत्या तक कर बैठना दुर्निमित्त कहलाता है।

(ततः प्रविशति सुसङ्गता ।)

सुसं०—एदं तं कदलीघरअम् । ता पविसामि । एसा मे पिअसही साअरिआ । किं उण एसा गुरुआणुराओक्खित्तहिअआ विअ किंवि आलिहन्ती ण मं पेक्खदि । भोदु । ता जाव से दिट्ठिपहं परिहरिअ णिरूवइस्सं किं एसा आलिहदित्ति । कहं भट्टा आलिहिदो । साहु साअरिए । अह वा ण कमलाअरं वज्जिअ राअहंसी अण्णहिं अहिरमदि । [एतत्तत्कदलीगृहम् । तत्प्रविशामि (प्रविश्याग्रतो विलोक्य सविस्मयम् ।) एषा मे प्रियसखी सागरिका । किं पुनरेषा गुरुकानुरागोत्क्षिप्तहृदयेव किमप्यालिखन्ती न मां प्रेक्षते । भवतु । तद्यावदस्या दृष्टिपथं परिहृत्य निरूपयिष्यामि किमेषाऽऽलिखतीति । (स्वैरं पृष्ठतोऽस्याः स्थित्वा दृष्ट्वा सहर्षम् ।) कथं भर्ता लिखितः । साधु सागरिके साधु । अथवा न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते ।]

साग०—आलिहिदो खु मए एसो । किं उण अणवरदणिवडन्तबाप्फसलिलेण ण मे दिट्ठी पेक्खिदुं पभवदि । कहं पिअसही सुसंगदा । सहि इदो

कदलीगृहकम्=रम्भानिकुञ्जम् । गुरुकानुरागोत्क्षिप्तहृदया=महान् योऽनुरागः =प्रियामिलाषः, तेनोत्क्षिप्तम् उत्तानम् हृदयम् चेतो यस्याः सा । आलिखन्ती= चित्रयन्ती । दृष्टिपथम् =नयनमार्गम् । परिहृत्य =वञ्चयित्वा । निरूपयिष्यामि= द्रक्ष्यामि । स्वैरम् =स्वतन्त्रम् । भर्त्ता =वत्सराजः । कमलाकरम् =कमलवनम् । वर्जयित्वा =त्यक्त्वा । अभिरमते =अनुरागं करोतीति ।

आलिखितः =चित्रितः । अनवरतनिपतद्बाष्पसलिलेन—अनवरतम् =निरन्तरम्, निपतता =प्रवहता, बाष्पसलिलेन =अश्रुजलेन । प्रेक्षितुम् =अवलोकि-

---

(तब सुसंगता प्रवेश करती है ।)

सुसङ्गता—यही वह कदली कुञ्ज है । अतः प्रवेश करती हूँ । (प्रवेश करके सामने देखकर विस्मय के साथ) यह मेरी प्रिय सखी सागरिका है । क्या यह अत्यधिक अनुराग से व्याकुल हृदय सी कुछ लिखती (चित्र बनाती) हुई मुझे देख भी नहीं रही है । अस्तु, तो जब तक उसकी दृष्टि बचाकर इसे देखती हूँ कि यह क्या चित्र बना रही है । (इसकी पीठ की ओर खड़े होकर देखकर प्रसन्नता से) क्या महाराज (उदयन) को चित्रित किया है । शाबास सागरिके शाबास । अथवा राजहंसी कमल वन को छोड़कर अन्यत्र अनुराग नहीं करती है ।

सागरिका—(आँखों में आँसू भर कर) इन्हें मैंने चित्रित तो कर लिया किन्तु

उववविश । [आलिखितः खलु मयैषः । किं पुनरनवरतनिपतद्बाष्पसलिलेन न मे दृष्टिः प्रेक्षितुं प्रभवति (मुखमुत्तानीकृत्याश्रूणि निवारयन्ती सुसंगतां दृष्ट्वोत्तरीयेण फलकं प्रच्छादयन्ती सविलक्षस्मितम् ।) कथं प्रियसखी सुसंगता । सखि इत उपविश ।]

सुसं०—(उपविश्य बलात्फलकमाकृष्य ।) सहि को एसो तुए एत्थ आलिहिदो । [सखि क एष त्वयाऽत्रालिखितः ।]

साग०—(सलज्जम्). । सहि पउत्तमअणमहूसवे भअवं अणङ्गो । [सखि प्रवृत्तमदनमहोत्सवे भगवाननङ्गः ।]

सुस०—(सस्मितम् ।) अहो दे णिउणत्तणं किं पुण सुण्णं विअ एदं चित्तं पडिभादि । ता अहं पि आलिहिअ रतिसणाहं करिस्सम् । [अहो ते निपुणत्वम् । किं पुनः शून्यमिवैतच्चित्रं प्रतिभाति । तदहमप्यालिख्य रतिसनाथं करिष्यामि ।] (वर्तिकां गृहीत्वा नाटयेन रतिव्यपदेशेन सागरिकां लिखति ।)

तुम् । न प्रभवति = न शक्नोति । उत्तानीकृत्य = उन्नमय्य । निवारयन्ती=विमोचयन्ती । सविलक्षस्मितम् = सलज्जाहासम् ।

प्रवृत्तमदनमहोत्सवे—प्रवृत्तः = प्रचलितः यो मदनमहोत्सवः = कामोत्सवः । तस्मिन् । निपुणत्वम् = चातुर्यम् । शून्यमिव = अपूर्णतया रिक्तमिव । प्रतिभाति = प्रतीयते । आलिख्य=चित्राङ्कितं कृत्वा । रतिसनाथम्=रतियुक्तम् । रतिव्यपदेशेन = रतिव्याजेन ।

निरन्तर आँखों से आँसू बहाने के कारण मेरी दृष्टि (इन्हें) देख नहीं पा रही है । (मुँह ऊपर उठाकर आँसू पोंछती हुई सुसंगता को देखकर ओढ़नी से चित्र को ढँकती हुई लज्जा तथा मुस्कान के साथ) क्या प्रिय सखी सुसंगता है । सखि, इधर बैठो ।

सुसंगता—(बैठ कर हठात् चित्रफलक को खींच कर) सखि तुमने यहाँ यह किसका चित्र बनाया है ?

सागरिका—(लज्जित होकर) सखि, मनाये जाते हुए मदन महोत्सव में भगवान् कामदेव (को चित्रित किया है ।)

सुसंगता—(मुस्कराहट के साथ) धन्य है तुम्हारी निपुणता । फिर भी यह चित्र तो शून्य सा दिखलाई पड़ रहा है । अतः मैं भी चित्र बनाकर इन्हें रति युक्त करती हूँ । (तूलिका लेकर रति के बहाने सागरिका के चित्र को बनाने का अभिनय करती है ।)

सागः—(विलोक्य सासूयम् ।) सुसंगदे कीस तुए अहं एत्थ आलिहिदा । [सुसंगते कस्मात्त्वयाहमत्रालिखिता ।]

सुसं०—(विहस्य ।) सहि किं अआरणं कुप्पसि । जादिसो तुए कामदेवो आलिहिदो तादिसी मए रइ आलिहिदा । ता अण्णधासंभाविणि किं तुह एदिणा आलविदेण । कहेहिं दाव सव्वं वुत्तन्तम् । [सखि, किमकारणं कुप्यसि । यादृशस्त्वया कामदेव आलिखितस्तादृशी मया रतिरालिखिता । तदन्यथासंभाविनि किं तवैतेनालपितेन । कथय तावत्सर्वं वृत्तान्तम् ।]

साग०—(सलज्जा-स्वगतम् ।) णं जाणिदम्हि पिअसहीए । पिअसहि महदी क्खु मे लज्जा । ता तहा करेसु जहा ण को वि अवरो एदं वुत्तन्तं जणेदि । [ननु ज्ञातास्मि प्रियसख्या । (सुसंगतां हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम् ।) प्रियसखि महती खलु मे लज्जा । तत्तया कुरु यथा न कोऽप्यपर एतं वृत्तान्तं जानाति ।]

सुसं०—सहि मा लज्ज । ईदिसस्स कण्णारअणस्स अवस्सं एव्व ईदिसे वरे अहिलासेण होदव्वम् । तहवि जहा ण कोवि अवरो एदं वुत्तन्तं जाणिस्सदि तह करेमि । एदाए उण मेधाविणीए सारिआए एत्थ काअणेण होद-

---

सासूयम् = ईर्ष्यया सहितम् । अहम् = सागरिका । अकारणम् = हेतुं विना । अन्यथासम्भाविनि = अन्यथा = अन्यप्रकारेण सम्भावयति इति = विपरीतबाधिनि । आलपितेन = वचनेन । अपरः = अन्यः ।

कन्यारत्नस्य = उत्तमकन्यायाः । मेधाविन्या = बुद्धिमत्याः । तन्नाम्न्या वा ।

सागरिका—(देखकर ईर्ष्या के सहित) सुसंगते ! तूने मुझे यहाँ क्यों चित्रित किया है ?

सुसंगता—(हँसकर) सखि ! व्यर्थ क्रोध क्यों कर रही हो । जैसे तुमने कामदेव को चित्रित किया, उसी प्रकार मैंने रति को (कामदेव की पत्नी) चित्रित कर दी । अतः और का और समझने वाली, तुम्हारी इस बकवास से क्या लाभ ! तो सब समाचार बतलाओ ।

सागरिका—(लज्जा के साथ मन ही मन) निश्चय ही मेरी सब बात प्रिय सखी जान गई है । (सुसंगता का हाथ पकड़ कर प्रकट रूप में) प्रिय सखि ! मुझे तो बड़ी लज्जा है । तब तो वैसा करो जिससे कोई दूसरा उस वृत्तान्त को न जान पाये ।

सुसङ्गता—सखि ! लज्जा मत करो । ऐसी सुन्दरी कन्या की अवश्य ही ऐसे सुन्दर

असूया—दूसरे के प्रशंसनीय कार्य में भी दोष दिखलाने की भावना ।

व्वम् । कदा वि एसा इमस्स अलावस्स गहिदक्खरा भविअ कस्स वि पुरओ मन्तइस्सदि । [सखि मा लज्जस्व । ईदृशस्य कन्यारत्नस्यावश्यमेवेदृशे वरे अभिलाषेण भवितव्यम् । तथापि यथा न कोऽप्यपर एतं वृत्तान्तं ज्ञास्यति तथा करोमि । एतया पुनर्मेधाविन्या सारिकयात्र कारणेन भवितव्यम् । कदाप्येषास्यालापस्य गृहीताक्षरा भूत्वा कस्यापि पुरतो मन्त्रयिष्यते ।]

साग०—ता किं दाणिं एत्थ करइस्सम् । अदोवि अहिअदरं मे संतावो वड्ढदि । [तत्किमिदानीमत्र करिष्यामि । अतोऽप्यधिकतरं मे संतापो वर्धते ।] (मदनावस्थां नाटयति ।)

सुसं०—(सागरिकाया हृदये हस्तं दत्त्वा ।) सहि समस्सस समस्सस । जाव इमाओ दिग्घिआओ णलिणीवत्ताइं मुणालिआओ अ गिण्हिअ लहुं आअच्छामि [सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि । यावदस्या दीर्घिकाया नलिनीपत्राणि मृणालिकाश्च गृहीत्वा लघ्वागच्छामि ।] (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च नाट्येन नलिनीपत्रैः शयनीयं मृणालैर्वलयानि च रचयित्वा परिशिष्टानि नलिनीपत्राणि सागरिकाया हृदये निक्षिपति ।)

सारिकया='मैना' इति पक्षिविशेषेण । आलापस्य=वार्त्तालापस्य । गृहीताक्षरा—अक्षराणि गृहीतवती या सा=अभ्यासवती । पुरतः=समक्षम् । मन्त्रयिष्यते=कथयिष्यति । अधिकतरम्=बहुतरम् ।

दीर्घिकायाः=वाप्याः ('वापी तु दीर्घिका' इत्यमरः ।) मृणालिका=कमलतन्तुमूलानि । लघु=शीघ्रम् । परिशिष्टानि=अवशिष्टानि । हृदये=

वर में अभिलाषा होनी चाहिए । तथापि जिस प्रकार कोई अन्य व्यक्ति यह वृत्तान्त न जान सके वैसा ही उपाय करती हूँ । फिर यह मेधाविनी (बुद्धिमती) सारिका (मैना) भी इसका कारण बन सकती है कदाचित् यह (मैना) ही अक्षर रट कर इस वार्त्तालाप को दूसरे के सामने कह देगी ।

सागरिका—तो अब क्या करूँगी । इससे तो और भी मेरा सन्ताप बढ़ रहा है ।

(मदनावस्था का अभिनय करती है ।)

सुसङ्गता—(सागरिका के वक्ष पर हाथ रख कर) सखि ! धैर्य रखो, धैर्य रखो । जब तक इस बावली से कमल पत्र और मृणालिका लेकर शीघ्र आ रही हूँ । (निकल कर और पुनः प्रवेश करके नाटकीय ढङ्ग से कमल पत्रों से शय्या (बिछौना) और मृणालिका से वलय बना कर बचे हुए कमल पत्रों को सागरिका के वक्ष पर रखती है ।)

साग०—सहि अवणेहि इमाइं णलिणीवत्ताइं मुणालवलआइं अ। अलं एदेहिं। कीस अआरणे अत्ताणं आआसेसि। णं भणामि। [सखि अपनयेमानि नलिनीपत्राणि मृणालवलयानि च। अलमेतैः। किमित्यकारण आत्मानमायासयसि। ननु भणामि।]

दुल्लहजणाणुराओ लजा गुरुई परव्वसो अप्पा।
पिअसहि विसमं प्पेमं मरणं सरणं णवरमेक्कम्॥
[दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा।
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम्॥ १॥]

(इति मूर्च्छति।)

सुसं०—(सकरुणम्।) सहि साअरिए समस्सस समस्सस। [सखि सागरिके, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये।)

वक्षसि। अपनय=अपसारय। मृणालवलयानि=विसदण्डरचितानि वलयानि। आयासयसि=खेदयसि।

अन्वयः—दुर्लभजनानुरागः, गुर्वी, लज्जा, आत्मा, परवशः (वर्त्तते), प्रियसखि (एवं) प्रेमविषयम् एकम् मरणम् शरणम् न वरम् (वर्त्तते)॥ १॥

दुर्लभेति। दुर्लभजनानुरागः—दुर्लभे=दुष्प्राप्ये जने=नरे अनुरागः=प्रेम। गुर्वी=महती। लज्जा=ह्री। आत्मा=स्वदेहः ('आत्मा कलेवरे यत्ने स्वभावे परमात्मनि' इति धरणिः)। परवशः=पराधीनः। वर्तते इति शेषः। प्रियसखि=हे प्रिय आलि। (एवम्) प्रेम=अनुरागः। विषयम्=विसदृशम्। एकम्=केवलम्। मरणम्=मृत्युः। न वरम्=नास्ति श्रेष्ठम्। शरणम्=उपायः, वर्तते इति। आर्यावृत्तम्॥ १॥

सागरिका—सखि! यह कमल पत्र तथा मृणाल दूर हटाओ। इनसे कोई लाभ नहीं। व्यर्थ तू परेशान क्यों तकलीफ उठा रही है। कहती तो हूँ—

दुल्लहजण अणुराओ लज्जा गुरुई परव्वसो अप्पा।

दुर्लभ व्यक्ति के प्रति अनुराग (है) भारी लज्जा (है) आत्मा पराधीन है। हे प्रिय सखि, इस प्रकार प्रेम विषय (सङ्कटापन्न) है अब मेरे लिए मृत्यु ही केवल सर्वोत्तम सहारा है॥ १॥

(इस प्रकार मूर्च्छित हो जाती है।)

सुसंगता—(करुणा के साथ) सखि सागरिके, धीरज धरो-धीरज धरो।

(नेपथ्य में)

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्षन्
क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किंकिणीचक्रवालः ।
दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः ॥ २ ॥

अपि च—

अन्वयः—कण्ठे, कृत्तावशेषम्, कनकमयं शृंखलादाम, अधः कर्षन्, हेलाचलचरणरणत्किंकिणीचक्रवालः, द्वाराणि क्रान्त्वा, अङ्गनानाम् दत्तातङ्कः, संभ्रमात् अश्वपालैः अनुसृतसरणिः, मन्दुरायाः प्रभ्रष्टः अयम् प्लवङ्गः नृपतेः मन्दिरम् प्रविशति ॥ २ ॥

कण्ठ इति । कण्ठे = ग्रीवायाम् । कृत्तावशेषम्—कृत्तस्य = छिन्नस्य अवशेषम् = अवशिष्टम् । कनकमयम् = स्वर्णिमम् । शृंखलादाम = बन्धनरज्जुम् ('शृंखला पुस्कटी काञ्च्यां लौहरज्जौ च बन्धने' इति हैमः) । अधः = अधोभागे । कर्षन् = आकर्षन् । हेलाचलचरणरणत्किंकिणीचक्रवालः—हेलया = लीलया चलौ = चञ्चलौ यौ चरणौ = पादौ तयोः रणत् = शब्दायमानम् किंकिणीनाम् = क्षुद्रघण्टिकानाम् ('किंकिणी क्षुद्रघण्टिका' इत्यमरः) । चक्रवालः = मण्डलम् यस्य सः । ('चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः) । द्वाराणि = कक्ष्य निर्गमान् । क्रान्त्वा = अतिक्रम्य । अनङ्गानाम् = युवतीनाम् । दत्तातङ्कः = दत्तः = समर्पितः आतङ्कः = भयम् येन सः तथाविधः । सम्भ्रमात् = आतङ्कजन्यवेगात् । अश्वपालैः = तुरगरक्षिभिः । अनुसृतसरणिः = अनुसृता = अनुगता सरणिः = पद्धतिः यस्य सः । मन्दुरायाः = वाजिशालायाः ('वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमरः) । प्रभ्रष्टः = बन्धनात् निर्गतः । अयम् = एषः । प्लवङ्गः = वानरः । नृपतेः = राज्ञः उदयनस्य । मन्दिरम् = भवनम् । प्रविशति = प्रवेशं करोतीति । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ २ ॥

गले में टूटने से बची हुई सुनहली जंजीर को नीचे भूमि पर खींचते हुए, उछल कूद के कारण चंचल चरणों में बजते हुए घुँघरुओं वाला, दरवाजों को लाँघ कर (अन्तःपुर की) स्त्रियों को आतंकित करने वाला, घबराकर अश्व रक्षकों द्वारा पीछा किया जाता घुड़सार से छूटकर भागा हुआ यह वानर राजमहल में प्रवेश कर रहा है ॥ २ ॥

और भी—

प्लवङ्ग—प्लव (उछलना) √गम् (जाना) = उछल-कूद करने वाला, वानर ।

नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादपास्य त्रपा-
मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशङ्किनः ॥ ३ ॥

अन्वयः—मनुष्यगणनाभावात्, त्रपाम् अपास्य, वर्षवरैः नष्टम् अयम् वामनः त्रासात् कञ्चुकिकञ्चुकस्य अन्तः विशति । पर्यन्ताश्रयिभिः किरातैः निजस्य नाम्नः सदृशम् कृतम् आत्मेक्षणाशङ्किनः कुब्जाः शनकैः नीचतया एव यान्ति ॥३॥

नष्टमिति । मनुष्यगणनाभावात्— मनुष्येषु = पुरुषेषु या गणना=संख्या तस्याः अभावात् = विरहात् । त्रपाम् = लज्जाम् । अपास्य = त्यक्त्वा । वर्षवरैः = नपुंसकैः । नष्टम् = पलायितम् । अयम् = एषः । वामनः = खर्वाकृतिः नरः । त्रासात् = भयात् । कञ्चुकिकञ्चुकस्य = कञ्चुकिनः = वृद्धब्राह्मणस्य कञ्चुकस्य = चोलकस्य । अन्तः = अभ्यन्तरम् । विशति = प्रविशति । पर्यन्ताश्रयिभिः = पर्यन्तम् = प्रान्तभूमिम् आश्रयन्ते = समाश्रयन्ति इति तैः । किरातैः = किरम् प्रान्तदेशम्, अतन्ति = गच्छन्तीति तैः अन्तः पुररक्षिभिः म्लेच्छैः । निजस्य = स्वस्य । नाम्नः = अभिधानस्य । सदृशम् = अनुरूपम् । कृतम् = विहितम् । आत्मेक्षणाशंकिनः—आत्मनः = स्वस्य यद् ईक्षणम् = वानरकर्तृकदर्शनम् तद् आशंकिनः = तद् विचाराक्रान्ताः । कुब्जाः=कुब्ज (कुब्बड़) शरीराः । शनकैः= शनैः शनैः । नीचतया = अनुच्चतया एव यान्ति = व्रजन्ति । अत्र स्वभावोक्तिर-लङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

मनुष्य गणना के अभाव से लज्जा को छोड़ कर नपुंसक भाग खड़े हुए हैं, यह वामन (बौना) भय से कञ्चुकि के झंगोले में घुसा जा रहा है । प्रान्त भाग में रहने वाले किरातों ने अपने नाम के अनुकूल ही किया है अर्थात् वे अन्तःपुर से भाग कर बाहर (प्रान्त भाग) में खड़े हो गये हैं तथा अपने को देख लेने की शंका करने वाले कुबड़े चुपके से झुककर जा रहे हैं ॥ ३ ॥

किरात—यह एक कोल भीलों से मिलती-जुलती जंगली मनुष्य जाति होती है परन्तु यहाँ इसकी व्याख्या किर् = प्रान्तभाग + अत = जाने वाले अर्थात् अन्तःपुर के रक्षणार्थ महल के प्रान्त भागों पर रक्षणार्थ घूमने वाले म्लेच्छ विशेष से की गई है । यह किरातादि अन्तःपुर के सहायक होते थे । यथा—अन्तःपुरसहायाः इत्यधिकृत्य तद्दवरोधे वामनषण्ढ-किरातम्लेच्छाभीराः भीराः शकारकुब्जाद्याः । (साहित्यदर्पण)

सुसं०—(आकर्ण्याग्रतोऽवलोक्य ससंभ्रममुत्थाय सागरिकां हस्ते गृहीत्वा ।) सहि उट्ठेहि उट्ठेहि । एसो खु दुट्ठवाणरो इदो ज्जेव आअच्छदि । ता आलक्खिदं तमालविडवान्धआरे पविसिअ इमं आदिवाहेम । [सखि, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । एष खलु दुष्टवानर इत एवागच्छति । तदलक्षितं तमालविटपान्धकारे प्रविश्यैनमतिवाहयावः] । (तथा कृत्वा उभे सभयं पश्यन्त्यौ स्थिते ।)

साग०—सुसंगदे कहं तुए चित्तफलहओ उज्झिदो । कदावि कोपि तं पेक्खदि । [सुसङ्गते कथं त्वया चित्रफलक उज्झितः । कदापि कोऽपि तं प्रेक्षते ।]

सुसं०—अइ सुत्थिदे किं अत्त वि चित्तफलएण करिस्ससि । एसो क्खु दधिभत्तलम्पडो सारिआपञ्जरं उग्घाडिअ अवक्कन्दो दुट्ठवाणरो । मेहाविणी वि उड्डीणा एषा गच्छदि । ता एहि । लहुं अणुसरम्ह । इमस्स आलावस्स गहिदक्खरा कस्स वि पुरदो मन्तइस्सदि । [अयि सुस्थिते, किमद्यापि चित्रफलकेन करिष्यसि । एष खलु दधिभक्तलम्पटो सारिकापञ्जरमुद्घाटयापक्रान्तो दुष्टवानरः । मेधाविन्यप्युड्डीनैषा गच्छति । तदेहि । लघ्वनुसरावः । अस्यालापस्य गृहीताक्षरा कस्यापि पुरतो मन्त्रयिष्यते ।]

ससम्भ्रमम् = सहसा । अलक्षितम् = रहस्यभावेन । तमाल विटपान्धकारेण—तमालविटपानाम् = तापिच्छवृक्षाणाम् ('तमालः स्यात् तापिच्छोऽप्यय सिन्दुके' इत्यमरः) । अन्धकारे=तमसि । अतिवाहयावः = व्यतियापयावः । (यावदयमग्रे याति तावत्प्रतिपालयावः इत्यर्थः ।)

उज्झितः = त्यक्तः । सुस्थिते = सुस्थिरे । दधिभक्तलम्पटः—दध्ना संस्कृतं भक्तं तत्र लम्पटः = दधिभक्तलोलुपः । अपक्रान्तः=पलायितः । उड्डीना=उत्प्लुता ।

सुसङ्गता—(सुनकर सामने देखकर, सहसा उठकर सागरिका को हाथ से पकड़कर) सखि, उठो, उठो । यह दुष्ट वानर तो इधर ही आ रहा है । अतः तमाल वृक्ष के अन्धकार में घुस कर अलक्षित होकर इस वानर को निकल जाने दें । (ऐसा करके दोनों डर कर देखती हुई खड़ी हो जाती हैं ।)

सागरिका—सुसङ्गते ! क्या तुमने चित्र फलक नहीं छोड़ दिया । कदाचित उसे कोई देख ही ले ।

सुसङ्गता—अरी सुस्थिते ! अब भी चित्र फलक से तुम क्या करोगी । दही भात का लालची यह वानर (दुष्ट) तो सारिका के पिंजड़े को खोल कर भाग गया है । मेधाविनी मैना उड़ती हुई अन्यत्र जा रही है । अतः आओ । शीघ्र (इसका) पीछा करें । इस वार्तालाप के अक्षरों को रटने वाली (मैना) किसी के सामने कह देगी ।

उड्डीना—उद्+√डी+क्त = उड़ती हुई ।

साग०—सहि एव्वं करेम्ह । [सखि एवं कुर्वः ।] (इति परिक्रामतः ।)

(नेपथ्ये)

ही ही भो अच्चरिअं अच्चरिअम् । [ही ही भोः आश्चर्यमाश्चर्यम् ।]

साग०—(विलोक्य समयम् ।) सुसङ्गदे जाणिअदि पुणो वि सो दुट्ठ वाणरो आअच्छदित्ति । [सुसङ्गते ज्ञायते पुनरपि स दुष्टवानर आगच्छतीति ।]

सुसं०—(विदूषकं दृष्ट्वा विहस्य) अइ काअरे मा भेहि भत्तुणो पासवत्ती अज्जवसन्तओ क्खु एसो । [अयि कातरे मा विभीहि । भर्तुः पार्श्ववर्ती आर्यवसन्तकः खल्वेषः ।]

साग०—(सस्पृहमवलोक्य ।) सहि सुसंगदे दंसणीओ क्खु अअंजणो । [सखि सुसङ्गते दर्शनीयः खल्वयं जनः ।]

सुसंगता—अइ सुत्थिदे किं इमिणा दिट्ठेण । दूरे भोदि क्खु सारिआ ।

अनुसराव: = धावाव: । गृहीताक्षरा–गृहीतानि=कण्ठीकृतानि अक्षराणि यया सा । पुरत: = अग्रे ।

ही ही भो: इति हर्षसूचको निपात: । कातरे=अधीरे ('अधीरे कातरस्त्रस्ते' इत्यमर:) विभीहि = भयं कुरु । भर्त्तु: = स्वामिन: । पार्श्ववर्त्ती = नित्यसहचर: । आर्यवसन्तक: = पूज्यो वसन्तकनामविदूषक: ।

सागरिका—सखि, हम दोनों ऐसा ही करती हैं ।

(इस प्रकार दोनों घूमने लगती हैं ।)

(नेपथ्य में)

अहा हा ! आश्चर्य है, आश्चर्य है ।

सागरिका—(देखकर भय के साथ) सुसंगते ! ज्ञात होता है कि वह दुष्ट वानर फिर से आ रहा है ।

सुसङ्गता—(विदूषक को देखकर हँसकर) अरी कातरे ! डरो मत । महाराज के निकट रहने वाले यह तो आर्य वसन्तक हैं ।

सागरिका—(अभिलाषा के साथ देखकर) सखि सुसङ्गते ! यह व्यक्ति तो दर्शनीय है ।

सुसङ्गता—अरी सुस्थिर रहने वाली ! इसे देखने से क्या लाभ ! सारिका तो दूर चली गई । अतः आओ । हम दोनों उसका पीछा करती हैं ।

ता एहि । अणुसरम्ह । [अयि सुस्थिते किमनेन वृष्टेन । दूरे भवति खलु सारिका । तदेहि । अनुसरावः ।]

(उभे निष्क्रान्ते ।)

(ततः प्रविशति प्रहृष्टो विदूषकः)

विदूषकः—ही ही भो अच्चरिअं अच्चरिअम् । साहु रे सिरिखण्डदास धम्मिअ साहु । जेण दिण्णमेत्तेण ज्जेव्व तेण दोहएण ईदिसी णोमालिआ संवुत्ता जेण णिरन्तरुब्भिण्णकुसुमगुच्छशोभिअविडवा उवहसन्तीविअ लक्खिअदि देवीपरिगहिदं माधवीलदं । ता जाव गदुअ पिअवअस्सं वद्ढावइस्सम् । एसो क्खु पिअवअस्सो तस्स दोहदस्स लद्धपच्चअदाए परोक्खंवि तं णोमालिअं पच्चक्खं विअ कुसुमिदं पेक्खन्तो हरिसुप्फुल्ललोअणो इदो ज्जेव आअच्छदि । ता जाव णं उवसप्पामि । [ही ही भोः आश्चर्यमाश्चर्यम् । साधु रे श्रीखण्डदास धार्मिक साधु । येन दत्तमात्रेणैव तेन दोहदेनेदृशो नवमालिका संवृत्ता येन निरन्तरोद्भिन्नकुसुमगुच्छशोभितविटपा उपहसन्तीव लक्ष्यते देवीपरिगृहीतां माधवीलताम् । तद्यावद् गत्वा प्रियवयस्यं वर्धयिष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य च ।) एष खलु प्रियवयस्यस्तस्य दोहदस्य लब्धप्रत्ययतया परोक्षामपि तां

दूरे भवति = दूरवर्तिनी जायते । अनुसरावः = अनुगच्छावः ।

दत्तमात्रेण = प्रयुक्तमात्रेण । सम्वृत्ता = जाता । निरन्तरोद्भिन्नकुसुमगुच्छशोभितविटपा—निरन्तरम् = निरवकाशं यथा स्यात् तथा उद्भिन्नाः = उत्पन्नाः कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् गुच्छाः = स्तबकाः ('गुच्छस्तबकहारयोः' इत्यमरः) तैः शोभिताः = शोभासम्पन्नाः विटपाः = शाखाः यस्याः सा ; उपहसन्ती=निन्दन्ती । देवीपरिगृहीताम्—देव्या = वासवदत्तया परिगृहीताम् = स्वीकृताम् । वर्धयिष्यामि =समेधयिष्यामि । लब्धप्रत्ययतया = लब्धः=प्राप्तः प्रत्ययः = विश्वासः यस्य तस्य भावस्तया । परोक्षाम् = नयनगोचराम् । प्रत्यक्षम् = अक्षिविषयम् । कुसुमिताम् =

(इस प्रकार दोनों निकल जाती हैं ।)

(तब प्रसन्न विदूषक प्रवेश करता है ।)

विदूषक—अहा हा ! आश्चर्य है, आश्चर्य है । शाबास श्रीखण्डदास धार्मिक शाबास जिसके उस औषधिमात्र के देने से नवमालिका (नेवारी) ऐसी हो गई है जिससे निरन्तर उत्पन्न फूलों के गुच्छों से शोभित शाखाओं वाली (यह नवमालिका) महारानी के द्वारा पकड़ी गई माधवीलता को लज्जित करती हुई सी दिखाई दे रही है । अतः जब तक आकर

नवमालिकां प्रत्यक्षामिव कुसुमितां प्रेक्षमाणः हर्षोत्फुल्ललोचन इत एवागच्छति। तद्यावदेनमुपसर्पामि।]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा।)

राजा—(सहर्षम्।)

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरतैरातन्वतीमात्मनः।

जातपुष्पोद्गमाम्। प्रेक्षमाणः = अवलोकयन्। हर्षोत्फुल्ललोचनः—हर्षेण = आनन्देन उत्फुल्ले = विकसिते लोचने = नेत्रे यस्य सः। उपसर्पामि = समीपं गच्छामि।

अन्वयः—क्षणात् उद्दामोत्कलिकाम् प्रारब्धजृम्भाम्, विपाण्डुररुचम् अविरतैः श्वसनोद्गमैः आत्मनः आयासम् आतन्वतीम् समदनाम् इमाम् उद्यानलताम् अन्याम् नारीम् इव पश्यन् अहम् अद्य ध्रुवम् देव्याः मुखम् कोपविपाटलद्युतिम् करिष्यामि॥ ४॥

उद्दाम इति। क्षणात् = सद्यः एव। उद्दामोत्कलिकाम्—उद्दाम = बन्धनरहिताम् ('उद्दामो बन्धरहिते' इति मेदिनी) यथा तथा उद्गताः = बहिर्गताः कलिकाः = कोरकाः यस्यास्ताम् (अन्यत्र—उद्दामा = दुर्दमनीया उत्कलिका = उत्कण्ठा यस्यास्ताम्) प्रारब्धजृम्भाम्—प्रारब्धा = प्रक्रान्ता जृम्भा = विकासः ('जृम्भा विकासजृम्भणयोस्त्रिषु' इति मेदिनी) यस्याः सा ताम्। अविरतैः = निरन्तरैः। श्वसनोद्गमैः—श्वसनानाम् = वायूनाम् उद्गमैः = उत्पत्तिभिः ('श्वसनः स्पर्शनो वायुः' इत्यमरः।) आत्मनः = स्वस्य। आयासम् = संचारजन्यखेदम्।

प्रिय मित्र को बधाई दूँगा। (**घूमकर और देखकर**) यह तो प्रिय मित्र हैं जो कि उस दोहद औषधि का विश्वास कर लेने के कारण आँखों से ओझल होती हुई भी उस नवमालिका (नेवारी) को प्रत्यक्ष फूलों से लदी हुई जैसी देखते हुए हर्षोत्फुल्लनेत्र इधर ही आ रहे हैं। तो जब तक इनके पास चलता हूँ।

(तब ऊपर बतलाई गई दशा में राजा प्रवेश करता है।)

राजा—(सहर्ष) क्षणभर में कलियों से लदी (दुर्दमनीय उत्कण्ठा युक्त) विकसित होने वाली (जम्हाई आदि युक्त) पाण्डुर वर्ण वाली निरन्तर बहने वाली वायु के झकोरों (निरन्तर श्वास-प्रश्वास) से अपना संचार जन्य खेद प्रकट करती हुई (बढ़ाती हुई) मदन

यहाँ लता तथा नारी के लिए समान विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं जिससे राजा द्वारा सागरिका के चित्र दर्शन से वासवदत्ता के कुपित होने की सूचना हो जाती है। अतः यहाँ

अद्योद्यानलतामिमां समदनां गौरीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन्कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥ ४ ॥

तद्वृत्तान्तमुपलब्धुं गतो वसन्तकोऽद्यापि नायाति।

विदूषकः—(सहसोपसृत्य।) जअदु जअदु पिअवअस्सो। भो वअस्स दिट्ठिआ वड्ढसि। [जयतु जयतु प्रिय वयस्यः। भो वयस्य दिष्टचा वर्धसे।] (जेण दिण्णमेत्तेण ज्जेव्व तेण दोहएण ईदिसी णोमालिआ संवुत्तेत्यादि पठति।)

राजा—वयस्य कः सन्देहः अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः। पश्य—

आतन्वतीम् = प्रकाशयन्तीम् (अन्यत्र = विस्तारयन्तीं) समदनाम् = सकामाम्। इमाम् = एताम्। उद्यानलताम् = आरामवल्लरीम्। अन्याम्=अपराम्। नारीम्= स्त्रियम्। इव = यथा। पश्यन् = अवलोकयन्। अहम् = वत्सराजः। अद्य = सम्प्रति। ध्रुवम् = नूनम्। देव्याः = वासवदत्तायाः। मुखम् = आननम्। कोप-पाटलद्युतिम्—कोपेन = क्रोधेन विपाटला = ईषद् रक्तवर्णा द्युतिः = कान्तिः यस्य तादृशम्। करिष्यामि = विधास्यामि। अत्र श्लेषालङ्कार उपमा च। शार्दूल-विक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४ ॥

तत् = तस्याः। वृत्तान्तम् = समाचारम्। उपलब्धुम् = प्राप्तुम्। आयाति= आगच्छति।

दिष्टचा = भाग्येन। वर्धसे = वृद्धि गच्छसि। अचिन्त्यः = चिन्तनाशक्यः। मणिमन्त्रौषधीनाम्—मणयः मन्त्राः औषधयश्च तासाम् प्रभावः = सामर्थ्यम्।

नामक वृक्ष से युक्त (कामावेग से युक्त) इस उद्यान लता (सागरिका) को अन्य नारी के समान देखते हुए मैं आज निश्चय ही देवी वसन्तसेना के मुख को क्रोध से कुछ-कुछ लाल वर्ण का कर दूँगा ॥ ४ ॥

इसका समाचार पाने के लिए गया हुआ वसन्तक अभी तक नहीं आया है।

विदूषक—(सहसा आगे बढ़कर) जय हो, जय हो प्रिय मित्र ! हे मित्र, सौभाग्य के लिए तुम्हें बधाई है। (क्योंकि उस दोहद के देने मात्र से नवमालिका ऐसी हो गई इत्यादि पुनः पढ़ता है।)

राजा—मित्र ! इसमें क्या सन्देह है। मणि मन्त्र तथा औषधियों का प्रभाव अचिन्तनीय है। देखो—

पताका स्थानक है, यथा—'यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिंगोऽन्यः प्रयुज्यते। आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ॥'

कण्ठे श्रीपुरुषोत्तमस्य समरे दृष्ट्वा मणिं शत्रुभि–
र्नष्टं मन्त्रबलाद्वसन्ति वसुधामूले भुजङ्गा हताः ।
पूर्वं लक्ष्मणवीरवानरभटा ये मेघनादाहताः
पीत्वा तेऽपि महौषधेर्गुणनिधेर्गन्धं पुनर्जीविताः ॥ ५ ॥

तदादेशय रागं येन वयमपि तदवलोकनेन चक्षुषः फलमनुभवामः ।

विदूषकः—(साटोपम् ।) एदु एदु भवं । [एत्वेतु भवान् ।]

अन्वयः—समरे, श्रीपुरुषोत्तमस्य, कण्ठे, मणिं, दृष्ट्वा, शत्रुभिः, नष्टम्, भुजङ्गाः, मन्त्रबलात्, हताः, वसुधामूले वसन्ति । पूर्वम् ये मेघनादाहताः, लक्ष्मणवीरवानरभटाः, ते अपि, गुणनिधेः महौषधेः गन्धम् पीत्वा पुनः जीविताः ॥ ५ ॥

कण्ठ इति । समरे = युद्धे । श्रीपुरुषोत्तमस्य = भगवतो विष्णोः । कण्ठे = ग्रीवायाम् । मणिम् = कौस्तुममणिम् । दृष्ट्वा = अवलोक्य । शत्रुभिः = अरिभिः । नष्टम् = अदृश्यत्वं गतम् । भुजङ्गाः = सर्पाः । मन्त्रबलात् = मन्त्रप्रभावात् । हताः = ताडिताः । (सन्तः) वसुधामूले = भूगर्भे । वसन्ति = निवसन्ति । पूर्वम् = पुरा । ये मेघनादाहताः = मेघनादनाम्ना रावणपुत्रेण हताः = ताडिताः । लक्ष्मणवीरवानरभटाः = लक्ष्मणश्चासौ वीरः = वीरसौमित्रिः वानरभटाश्च = सुग्रीवादिकपिवीराश्च । ते अपि = एतेऽपि । गुणनिधेः = गुणानाम् = मृतसंजीवनादीनाम् । निधेः = आकरस्य–गुणगणस्य । महौषधेः = सञ्जीवन्याः । गन्धम् = आमोदम् । पीत्वा = आघ्राय । पुनः = भूयः । जीविताः = सम्प्रबुद्धाः । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५ ॥

तदवलोकनेन–तस्याः = नवमालिकायाः अवलोकनेन = दर्शनेन । चक्षुषः = नेत्रस्य । फलम् = साफल्यम् । अनुभवामः = प्राप्नुमः ।

साटोपम् = सगर्वम् ।

संग्राम में भगवान विष्णु के गले पड़ी कौस्तुभ मणि को देखकर शत्रु भागकर गायब हो गये । सर्प गरुड आदि मन्त्र के प्रभाव से आहत होकर पृथ्वी के नीचे रहते हैं तथा प्राचीन काल में जो मेघनाद से वीर लक्ष्मण एवं सुग्रीवादि वानर योद्धा आहत हुए थे वे भी गुणों के कारण महान् औषधि के गन्ध को सूँघकर पुनः जीवित हो गये थे ॥ ५ ॥

अतः मार्ग बतलाओ जिससे हम भी उसे देखकर आँखों को सफल बनायें ।

विदूषक--(गर्व के साथ) चलें, आप चलें ।

विभिन्न उदाहरणों द्वारा मणियों, मन्त्रों तथा औषधियों का अमोघ महत्त्व दिखाया गया है ।

राजा—गच्छाग्रतः।

(उभौ सगर्वं परिक्रमतः)

विदूषकः—(आकर्ण्य सभयं परावृत्य राजानं गृहीत्वा ससंभ्रमम्।) भो वअस्स एहि पलाअम्ह। [भो वयस्य एहि पलायावहे।]

राजा—किमर्थम्।

विदूषकः—एअस्सि वउलपाअवे कोवि भूदो पडिवसदि। [एतस्मिन्वकुलपादपे कोऽपि भूतः प्रतिवसति।]

राजा—धिङ् मूर्ख! विस्रब्धं गम्यताम्। कुत ईदृग्विधानामत्र प्रभावः।

विदूषकः—भो एसो क्खु फुडक्खरं एव्वं मन्तेदि। ता जइ मम बअणं न पत्तिआअसि ता अग्गदो भविअ सअं एव्व दाव आअण्णेहि। [भोः एषः खलु स्फुटाक्षरमेव मन्त्रयते। तद्यदि मम वचनं न प्रत्येषि तदग्रतो भूत्वा स्वयमेव तावदाकर्णय।]

राजा—(तथा कृत्वा श्रुत्वा च।)

वकुलपादपे = केसरवृक्षे। भूतः = पिशाचः ('भूतं क्ष्मादौ पिशाचादौ' इति मेदिनी)। विस्रब्धम् = सविश्वासम्। ईदृग्विधानाम् = भूतपिशाचानाम्। स्फुटाक्षरम् = स्फुटानि = स्पष्टानि अक्षराणि = वर्णानि यस्मिंस्तत्। प्रत्येषि = विश्वसिषि। आकर्णय = शृणु।

राजा—आगे चलो।

(इस प्रकार दोनों गर्व के साथ घूमने लगते हैं।)

विदूषक—(सुनकर भय के साथ लौटकर राजा को पकड़ कर सहसा) हे मित्र! चलो भाग चलें।

राजा—किस लिए?

विदूषक—इस मौलसिरी पेड़ पर कोई भूत रहता है।

राजा—धिङ् मूर्ख। निडर होकर जाओ। भूत-पिशाचादिकों का यहाँ कहाँ से प्रभाव हो सकता है।

विदूषक—अरे यह तो स्पष्ट अक्षरों में बोल रहा है। यदि आप मेरे वचनों पर विश्वास नहीं करते हैं तो आगे बढ़कर स्वयं ही सुन लीजिये।

राजा—(वैसा करके और सुनकर।)

स्पष्टाक्षरमिदं यस्मान्मधुरं स्त्रीस्वभावतः ।
अल्पाङ्गत्वादनिर्ह्लादि मन्ये वदति सारिका ॥ ६ ॥

(ऊर्ध्वं निरूप्य ।) कथं सारिकैवेयम् ।

विदूषकः—(ऊर्ध्वमवलोक्य ।) आः कधं सच्चं एव्व सारिआ । आः दासीएधीए किं तुए जाणिदं सच्चं ज्जेव्व वसन्तओ भाअदित्ति । ता चिट्ठ मुहुत्तअम् । जाव इमिणा पिसुणजणहिअअकुडिलेण दण्डकट्ठेण परिपक्कं विअ कइत्थफलं इमादो वउलपाअवादो आहणिअ भूमीए तुमं पाडइस्सम् । [आः कथं सत्यमेव सारिका । (सरोषं दण्डकाष्ठमुद्यम्य ।) आः दास्याः पुत्रि किं त्वया ज्ञातं सत्यमेव वसन्तको बिभेतीति । तत्तिष्ठ मुहूर्त्तम् । यावदनेन पिशुनजनहृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेन परिपक्वमिव कपित्थफलमस्माद् वकुलपादपादाहत्य भूमौ त्वां पातयिष्यामि ।] (इति हन्तुमुद्यतः ।)

अन्वयः—यस्मात्, इदम्, स्पष्टाक्षरम्, स्त्रीस्वभावतः मधुरम्, अल्पाङ्गत्वात् अनिर्ह्लादि मन्ये सारिका वदति ॥ ६ ॥

स्पष्टेति । यस्मात् = यतः । इदम् = एतत् । स्पष्टाक्षरम् = स्फुटवर्णम् । स्त्रीस्वभावतः = नारीस्वभावात् । मधुरम् = श्रुतिप्रियम् । अल्पाङ्गत्वात्—अल्पम् = लघु, अङ्गम् = शरीरम् यस्याः सा तस्याः भावस्तस्मात् = अल्पशरीरत्वात् । अनिर्ह्लादि = अदूरग्राह्यम् (तस्मात्) मन्ये = अनुमिनोमि । सारिका = 'मैना इति पक्षिविशेषः । वदति = कूजति । अत्रोत्प्रेक्षालंकारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ६ ॥

दास्याः पुत्रि = असत्कुलजे ('हरामजादी' इति गालनं भाषायाम्) बिभेति = भयं करोति । मुहूर्त्तम् = क्षणम् । पिशुनजनहृदयकुटिलेन—

क्योंकि यह स्पष्ट अक्षर व, स्त्री-स्वभाव से मधुर तथा लघुकाय होने के कारण अधिक दूर तक न सुनाई देने वाला है अतः अनुमान है कि मैना बोल रही है ॥ ६ ॥

(ऊपर देखकर) क्या यह सारिका (मैना) ही है ।

विदूषक—(ऊपर देखकर) अरे क्या सचमुच यह सारिका है ? (क्रोध से डण्डा उठाकर) अरी हरामजादी ! क्या तूने जान लिया कि सचमुच वसन्तक डर रहा है तो क्षण भर ठहर । तब तक इस दुष्ट पुरुष के हृदय के समान कुटिल (टेढ़े) डण्डे से पके कैथ के फल के समान मार कर इस मौलसिरी के पेड़ से तुझे पृथ्वी पर गिरा दूँगा ।

(इस प्रकार मारने को तैयार होता है)

दास्याः पुत्रि—गाली देने के अर्थ में समास होने पर भी षष्ठी विभक्ति का लोप नहीं हुआ ।

राजा—(निवारयन् ।) मूर्ख किमप्येषा रमणीयं व्याहरति । तत्किमेनां त्रासयसि । शृणुवस्तावत् ।

(उभावाकर्णयतः ।)

विदूषकः—(आकर्ण्य ।) भो वअस्स सुदं तुए जं एदाए मन्तिदं । एसा भणादि सहि को एसो तुए एत्थ आलिहिदो । सहि पउत्तमअणमहूस्सवे भअवं अणङ्गोत्ति । पुणोवि एसा भणादि सहि कीस तुए अहं एत्थ आलिहिदा । सहि किं अआरण कुप्पसि । जादिसो तुए कामदेओ आलिहिदो तादिसी मए रइ आलिहिदेत्ति । ता अण्णधासम्भाविणि किं तुए एदिणा आलविदेण । कहेहि सव्वं वुत्तन्तम् । भो वअस्स किं ण्णेदम् । [**भो वयस्य श्रुतं त्वया यदेतया मन्त्रितम् । एषा भणति सखि क एष त्वयात्रालिखितः । सखि प्रवृत्तमदनमहोत्सवे भगवाननङ्ग इति । पुनरप्येषा भणिति सखि कस्मात्त्वयाहमत्रालिखिता । सखि किमकारणं कुप्यसि । यादृशस्त्वया कामदेव आलिखितस्तादृशी मया रतिरालिखितेति । तदन्यथासंभाविनि किं तवैतेनालपितेन । कथय सर्वं वृत्तान्तम् । भो वयस्य किं न्विदम् ।**]

पिशुनजनस्य=दुष्टस्य हृदयमिव=चित्तमिव । कुटिलम्=वक्रं यस्य तेन । आहत्य =आघातं कृत्वा । रमणीयम्=सुन्दरम् । व्याहरति=कथयति । ('व्याहार उक्तिर्लपितं भाषणं वचनं वचः' इत्यमरः) । त्रासयसि=भीषयसे ।

एतया=सारिकया । प्रवृत्तमदनमहोत्सवे–प्रवृत्तः=प्रचलितः यो मदन-

---

राजा--(**मना करता हुआ**) मूर्ख, यह कुछ अच्छी बात कह रही है । अतः इसे क्यों डरपा रहे हो । सुनो तो ।

(**दोनों सुनने लगते हैं**)

विदूषक--(**सुनकर**) प्रिय मित्र, क्या तुमने सुना (जो) उसने कहा है । यह कहती है कि सखि, तुमने यहाँ कौन चित्रित किया है ? सखि, मनाये जाते मदनमहोत्सव में भगवान् अनंग (चित्रित किये हैं) । फिर यह कहती है सखि, तुमने मुझे यहाँ क्यों चित्रित किया है ? सखि, अकारण क्रुद्ध क्यों हो रही हो । जैसे तुमने कामदेव को चित्रित किया वैसे ही मैंने रति (कामदेव की पत्नी) को चित्रित किया है । अतः कुछ का कुछ समझने वाली ! तुम्हारी इस बकवास से क्या लाभ ! सब समाचार कहो । अरे मित्र, यह क्या बात है !

राजा—वयस्यैवं तर्कयामि । कयापि हृदयवल्लभोऽनुरागादालिख्यकाम-देवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽपह्नुतः । तत्सख्याऽपि प्रत्यभिज्ञाय वैदग्ध्यादसावपि तत्रैव रतिव्यपदेशेनालिखितेति ।

विदूषकः—(छोटिकां दत्त्वा ।) भो वअस्स जुज्जसि । एवं क्खु एदं । [भो वयस्य युज्यते । एवं खल्वेतत् ।]

राजा—वयस्य तूष्णीं भव । पुनरप्येषा व्याहरति ।

विदूषकः—भो एसा भणादि सहि मा लज्ज । ईदिसस्स कण्णारअणस्स अवस्सं एव्व ईदिसे वरे अहिलासेण होदव्वम् । भो वअस्स जा एसा आलिहिदा सा क्खु कण्णा दंसणीआ । [भो एषा भणति सखि मा लज्जस्व । ईदृशस्य कन्यारत्नस्यावश्यमेवेदृशे वरेऽभिलाषेण भवितव्यम् । भो वयस्य यैषाऽऽलिखिता सा खलु कन्या दर्शनीया ।]

महोत्सवः = वसन्तोत्सवः तस्मिन् । भगवान् अनङ्गः = कामदेवः । अकारणम् = कारणेन विना । कुप्यसि = क्रुध्यसि । रतिः = कामपत्नी । आलिखितः = चित्रितः । अन्यथासम्भाविनि ! = विपरीतामुत्प्रेक्षां कर्त्रि । आलपितेन = कथनेन ।

तर्कयामि = सम्भावयामि । हृदयवल्लभः = प्राणप्रियः । अनुरागात् = प्रेम्णः । व्यपदेशेन = व्याजेन । सखीपुरतः = सखीसमक्षम् । अपह्नुतः = गोपितः । प्रत्यभिज्ञाय = ज्ञात्वा । वैदग्ध्यात् = चातुर्यात् । रतिव्यपदेशेन = रतिच्छलेन ।

मा लज्जस्व = लज्जां मा कुरु । कन्यारत्नस्य = सुन्दर्याः कन्यायाः । वरे = प्रियतमे । अभिलाषेण = आकांक्षया । दर्शनीया = द्रष्टुं योग्या । अतीव सुन्दरीति ।

राजा—मित्र ऐसा समझता हूँ कि किसी (प्रेयसी) ने (अपना) हृदय-वल्लभ अनुराग से कामदेव के बहाने चित्रित किया और सखी के सामने छिपा लिया तो सखी ने भी जानकर चतुरता से रति के बहाने उसे (अपनी सखी को) भी वहीं चित्रित कर दिया ।

विदूषक—(चुटकी बजाकर) मित्र, ठीक है । यह ऐसा ही है ।

राजा—मित्र, चुप रहो । यह फिर से कह रही है ।

विदूषक—अरे ! यह कह रही है—सखि, लज्जा मत करो । इस प्रकार सुन्दर कन्या रत्न को अवश्य ऐसे वर में अभिलाषा होनी चाहिए । मित्र, जो इस प्रकार चित्रित की गई है वह तो निश्चय ही देखने योग्य होगी ।

राजा—यद्येवमवहितौ शृणुवस्तावत् । अस्त्यत्रावकाशो नः कुतूहलस्य ।

(इत्युमावाकर्णयतः ।)

विदूषकः—भो वअस्स सुदं तुए जं एदाए मन्तिदम् । सहि अवणेहि इमाइं णालणीवत्ताइं मुणालवलआइं अ । अलं एदिणा । कीस अआरणे अत्ताणं आआसेसि । [भो वयस्य श्रुतं त्वया यदेतया मन्त्रितम् । सखि अपनयेमानि नलिनीपत्राणि मृणालवलयानि च । अलमेतेन । कथमकारण आत्मानमायासयसि ।]

राजा—वयस्य न केवलं श्रुतमभिप्रायोऽपि लक्षितः ।

विदूषकः—भो मा तुमं पण्डिअव्वगव्वं उव्वह । अहं दे एदाए मुहादो सुणिअ सव्वं वाक्खाणइस्सम् । ता सुणम्ह । अज्ज वि कुरकुराअदि एव्व एसा सारिआ दासीएधीआ । [भो मा त्वं पाण्डित्यगर्वमुद्वह । अहं त एतस्या मुखाच्छ्रुत्वा सर्वं व्याख्यास्यामि । तच्छृणुवः । अद्यापि कुरकुरायत एव एषा सारिका दास्याः पुत्री ।]

राजा—युक्तमभिहितम् । (पुनराकर्णयतः ।)

अवहितौ = दत्तावधानौ । अवकाशः = स्थानम् । नः = अस्माकम् । कुतूहलस्य = कौतुकस्य ।

अपनय = अपसारय । नलिनीपत्राणि=कमलिनीदलानि । मृणालवलयानि = कमलमूलनिर्मितानि कङ्कणानि । आत्मानम्=स्वम् । आयासयसि=खिन्नां करोषि । लक्षितः = अवलोकितः ।

पण्डितगर्वम् = पाण्डित्याभिमानम् । उद्वह = धारय । एतस्याः=सारिकायाः । कुरकुरायते = शब्दायते ।

राजा—यदि ऐसा है तो हम दोनों ध्यान से सुनें । यहाँ हमारे कौतूहल (जिज्ञासा) का अवसर है ।

(दोनों सुनने लगते हैं)

विदूषक—मित्र, सुना तुमने, इसने जो कहा । सखि, यह कमलपत्र और मृणाल से बने कङ्कण दूर हटाओ । इनसे क्या (लाभ) अकारण अपने को क्यों परेशान कर रही हो ।

विदूषक—अरे विद्वत्ता का अभिमान न करो । मैं भी इसके मुख से सुन कर तुम्हें सब कुछ बतला दूँगा । तो सुनो । अभी भी यह दासी पुत्री (सारिका) कुरकुरा ही ही रही है ।

राजा—ठीक कहा । (पुनः दोनों सुनने लगते हैं ।)

विदूषकः—भो वअस्स एसा क्खु सारिका दासीएदुहिदा चतुव्वेदो बम्हणो विअ रिचाइं पढिदुं पवुत्ता। [**भो वयस्य एषा खलु सारिका दास्या दुहिता चतुर्वेदी ब्राह्मण इव ऋचः पठितुं प्रवृत्ता।**]

राजा—वयस्य कथय किमप्यन्यचेतसा मया नावधारितं किमनयोक्तमिति।

विदूषकः—भो एदं एदाए पडिदम्। [**भो एतदेतया पठितम्।**]

दुल्लहजणाणुराओ लज्जा गुरुई परव्वसो अप्पा।
पिअसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवरमेक्कम् ॥ ७ ॥
[**दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा।**
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं न वरमेकम् ॥ ७ ॥]

राजा—(सस्मितम्।) साधु भवन्तं महाब्राह्मणं मुक्त्वा कोऽन्य एवमृचामभिज्ञः।

चतुर्वेदी—चत्वारो वेदाः यस्य सः = चतुर्वेदविद्वान्। ऋचः = मन्त्रान्। **पठितुम्** = उच्चरितुम्। प्रवृत्ता = संलग्ना।

अन्यचेतसा—अन्यस्मिन् चेतः यस्य सः, तेन = अन्यमनसा। अवधारितम् = श्रुतम्। 'दुर्लभजनानुरागः' इत्यस्य व्याख्या तु द्वितीयाङ्कस्य प्रथमश्लोकस्य व्याख्यायां द्रष्टव्या।

ऋचाम् = मन्त्राणाम्। अभिज्ञः = ज्ञाता।

विदूषक—हे मित्र! दासी पुत्री यह (सारिका) तो चतुर्वेदी ब्राह्मण के समान ऋचायें पढ़ने लगी है।

राजा—मित्र! कहो—इसने क्या कहा! अन्यत्र ध्यान होने के कारण मैं नहीं सुन पाया।

विदूषक—अरे, इसने यह पढ़ा है—दुर्लभ जन से स्नेह करती हूँ, लज्जा अधिक है। आत्मा पराधीन है। हे सखि, (ऐसी दशा में) प्रेम करना भयानक है। अब तो मृत्यु ही शरण है ॥ ७ ॥

राजा—(**मुस्कराहट के साथ**) शाबास, आप महाब्राह्मण को छोड़ कर और कौन ऋचाओं का ज्ञाता है।

महाब्राह्मण—वैसे तो शाब्दिक अर्थ श्रेष्ठ ब्राह्मण होता है परन्तु व्यञ्जना शक्ति से यहाँ महा शब्द निन्दा सूचक है जिससे महा ब्राह्मण नीच ब्राह्मण समझा जाता है। यहाँ 'महा' विशेषण विशेषता द्योतक होता हुआ भी निम्न स्थलों पर निन्दा प्रकट करता है :—

विदूषकः—तदो किं णु क्खु एदं । [ततः किं नु खल्विदम् !]

राजा—ननु गाथेयम् ।

विदूषकः—किं गाथा । [किं गाथा ।]

राजा—कयापि श्लाघ्ययौवनया प्रियतममनासादयन्त्या जीवितनिरपेक्षयोक्तम् ।

विदूषकः—(उच्चैर्विहस्य ।) भो किं एदेहिं वक्कभणिदेहिं । उज्ज एव्व किं ण भणासि जहा मं अणासादअन्तीएत्ति । अण्णहा को अण्णो कुसुमचावव्ववदेसेण एवं णिण्हवीअदि । [भोः किमेतैर्वक्रभणितैः । ऋज्व्येव किं न भणसि यथा मामनासादयन्त्येति । अन्यथा कोऽन्यः कुसुमचापव्यपदेशेनैवं निह्नूयते ।] (हस्ततालं दत्त्वोच्चैर्विहसति ।)

गाथा = प्राकृतभाषोपनिबद्धमार्यादिच्छन्दः । 'गाथा श्लोके संस्कृतान्यभाषायां गेयवृत्तयोः' इति मेदिनी ।

श्लाघ्ययौवनया श्लाघ्यम् = प्रशंसनीयम् यौवनम् = तारुण्यम् यस्याः सा, तया । अनासादयन्त्या = अप्राप्तवत्या । जीवितनिरपेक्षया = जीविते = जीवने निरपेक्षा = निराशा, उदासीनता वा तया । उक्तम् = कथितम् । वक्रभणितैः = कटूक्तैः । ऋजु = सरलम् । अनासादयन्ती = अप्राप्तवती । कुसुमचापव्यपदेशेन, कुसुमचापस्य = कामदेवस्य । व्यपदेशेन । व्याजेन = निह्नूयते = आच्छाद्यते ।

विदूषक—तो फिर यह क्या है ?

राजा—यह तो गाथा है ।

विदूषक—गाथा क्या ?

राजा—किसी अनिन्द्य सुन्दरी से अपने प्रियतम को न पाकर जीवन से निराश होकर यह कहा है ।

विदूषक—(जोर से हँसकर) अरे इस कुटिल कहावत से क्या लाभ । सीधे सीधे क्यों नहीं कहते कि मुझे न पाकर""। अन्यथा अन्य दूसरा कौन कामदेव के बहाने इस प्रकार छिपाया जा सकता है । (हाथ से ताली बजाकर जोर से हँसता है ।)

'शंखे तैले च मांसे च वैद्ये ज्योतिषिके द्विजे !
यात्रायां पथि निद्रायां मच्छब्दो न दीयते ।।'

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य ।) धिङ् मूर्ख, किमुच्चैर्हसता त्वयेयमुत्त्रासिता येनोड्डीयान्यत्र क्वापि गता ।

(उभौ निरूपयतः ।)

विदूषकः—(विलोक्य ।) भो एसा क्खु कअलीघरं एव्व गदा । ता एहि । लहुं अणुसरह्म [भो एषा खलु कदलीगृहमेव गता । तदेहि । लघ्वनुसरावः ।]

राजा—दुर्वारां कुसुमशरव्यथां वहन्त्या
कामिन्या यदभिहितं पुरः सखीनाम् ।
तद्भूयः शिशुशुकसारिकाभिरुक्तं
धन्यानां श्रवणपथातिथित्वमेति ॥ ८ ॥

उत्त्रासिता = भयविह्वला । निरूपयतः = विलोकयतः । कदलीगृहम् = रम्भाकुञ्जम् । लघु = शीघ्रम् । अनुसरावः = अनुचलावः ।

अन्वयः—दुर्वाराम्, कुसुमशरव्यथाम्, वहन्त्या कामिन्या सखीनाम् पुरः यद् अभिहितम्, तद् शिशु शुकसारिकाभिः उक्तम्, भूयः धन्यानाम् श्रवणपथातिथित्वम् एति ॥ ८ ॥

दुर्वारामिति । दुर्वाराम्—दुःखेन वार्यते ताम् = दुष्परिहाराणाम् । कुसुमशरव्यथाम्—कुसुमशरस्य = कामदेवस्य व्यथाम् = पीडाम् । वहन्त्या = धारयन्त्या । कामिन्या = तरुण्या । सखीनाम् = वयस्यानाम् । पुरः = समक्षम् । यद् अभिहितम् = यत् कथितम् । तत् शिशुशुकसारिकाभिः—शिशवः = बालाः शुकाः = कीराः सारिकाश्च ताभिः ('कीरशुकौ समौ' इत्यमरः) उक्तम् = कथितम् । भूयः = पुनः । धन्यानाम् = पुण्यवताम् । श्रवणपथातिथित्वम् = श्रवणयोः=श्रोत्रयोः पन्थाः = मार्गः इति श्रवणपथः, तस्यातिथिः = समाश्रयम् तस्य भावः=श्रोत्रविवरविषय-

---

राजा—(ऊपर देखकर) धिक्कार है मूर्ख । जोर से हँसते हुए तुमने इसे डरपा क्यों दिया जिससे उड़ कर कहीं दूसरी जगह चली गई ।

(दोनों देखने लगते हैं)

विदूषक—(देखकर) अरे ! यह तो कदली गृह को ही गई है । अतः आओ। शीघ्र चलते हैं ।

राजा—दुःसह कामदेव की पीड़ा वहन करती हुई, कामिनी से सखियों के समक्ष जो कुछ कहा जाता है वह छोटे-छोटे शुक सारिकाओं द्वारा दोहराया जाता हुआ भाग्यवान् पुरुषों के ही कानों में पड़ता है । (अन्य के नहीं) ॥ ८ ॥

विदूषकः—एदु एदु भवं । [एत्वेतु भवान् ।] (परिक्रान्तः ।)

विदूषकः—भो एदं क्खु कअलीघरम् । जाव पविसम्ह । [भोः एतत्खलु कदलीगृहम् । यावत्प्रविशावः ।]

(उभौ प्रविशतः ।)

विदूषकः—भो गदा दासीएधीआ । एत्थ दाव मन्दमारुदुव्वेल्लन्तबाल-कअलीदलसीदले सिलातले उपविसिअ मुहुत्तअं वीसम्ह । [भोः गता दास्याः पुत्री । अत्र तावन्मन्दमारुतोद्वेल्लद्बालकदलीदलशीतले शिलातले उपविश्य मुहूर्तं विश्राम्यावः ।]

राजा—यदभिरुचितं भवते ।

(इत्युपविशतः ।)

राजा—(निःश्वस्य । दुर्वारामित्यादि पुनः पठति ।)

विदूषकः—(पार्श्वतोऽवलोक्य ।) भो एदेण क्खु उग्घाडिअदुवारेण ताए सारिआए पञ्जरेण होदव्वम् । एसो वि सो चित्तफलओ । जाव णं गेण्हामि ।

भावम् । एति = गच्छति । अत्रार्थान्तरन्यासालंकारः । तद्यथा—'भवेदर्थान्तर-न्यासोऽसक्तार्थान्तराभिधः' इति । प्रहर्षिणीवृत्तम्—तद्यथा—'म्नौ ज्रौ गस्त्रि-दशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति ॥ ८ ॥

मन्दमारुतोद्वेल्लद्बालकदलीदलशीतले—मन्देन = शनैः मारुतेन = पवनेन उद्वेल्लन्ति = कम्पमानानि यानि बालकदलीनां दलानि = पत्राणि तैः शीतले = शिशिरे = मन्दपवनोच्चलितनूतनरम्यादलशिशिरे । शिलातले = प्रस्तरखण्डे, उप विश्य = स्थित्वा । मुहूर्त्तम् = क्षणम् । विश्राम्यावः = विश्रामं कुर्वः ।

विदूषक—आइये आइये (आप) । (दोनों घूमते हैं ।)

विदूषक—अरे, यह तो कदलीकुंज है । तो प्रवेश करें ।

(दोनों प्रवेश करते हैं ।)

विदूषक—अरे, दासी पुत्री चली गई । यहाँ मन्द पवन से हिलते हुए नूतन कदली दलों से शीतल शिला तल पर बैठकर क्षण भर विश्राम कर लें ।

राजा—जैसा आपको अच्छा लगे । (दोनों बैठ जाते हैं ।)

राजा—(निःश्वास लेकर 'दुसह कामपीड़ा' इत्यादि (८ वाँ श्लोक) पुनः दोहराता है ।)

विदूषक—(इधर-उधर देखकर) अरे, यही तो (वह) उस सारिका (मैना)

भो वअस्स दिठ्ठिआ वढ्ढसि। [भो एतेन खलूद्घाटितद्वारेण तस्याः सारिकायाः पञ्जरेण भवितव्यम्। एषोऽपि स चित्रफलकः। यावदेनं गृह्णामि। (फलकं गृहीत्वा निरूप्य च।) भो वयस्य दिष्टचा वर्धसे।]

राजा—(सकौतुकम्।) वयस्य किमेतत्।

विदूषकः—भो एदं क्खु तं जं मए भणिदम्। तुमं ज्जव एत्थ आलिहिदो। को अण्णो कुसुमचावव्ववदेसेण णिण्ह्वीअदित्ति। [भोः एतत्खलु तद्यन्मया भणितम्। त्वमेवात्रालिखिता। कोऽन्यः कुसुमचापव्यपदेशेन निह्नूयत इति।]

राजा—(सहर्षं हस्तौ प्रसार्य।) सखे दर्शय दर्शय।

विदूषकः—ण दे दंसइस्सम्। सा वि कण्णआ एत्थ ज्जेव आलिहिदा चिट्ठदि। ता किं पारितोसिएण विणा ईदिसं कण्णारअणं दंसीअदि। [न ते दर्शयिष्यामि। सापि कन्यकात्रैवालिखिता तिष्ठति। तत्किं पारितोषिकेण विनेदृशं कन्यारत्नं दर्श्यते।]

राजा—(कटकमर्पयन्नेव बलाद् गृहीत्वा विलोक्य सविस्मयम्।)

उद्घाटितद्वारेण—उद्घाटितम् = विवृतम् द्वारम् = निर्गमनमार्गम् यस्य सः तेन = उन्मुक्तकपाटेन। दिष्टचा वर्धसे = महत् ते सौभाग्यम्। कुसुमचापव्यपदेशेन—कुसुमचापस्य = कामदेवस्य व्यपदेशेन=व्याजेन। निह्नूयते=आच्छाद्यते। पारितोषिकेण = पुरस्कारेण।

द्वारा खोले गये दरवाजे वाला पिंजड़ा होगा। और यही वह चित्र फलक है। तबतक इसे ले लेता हूँ। (फलक को लेकर और देखकर सहर्ष) अरे मित्र बधाई है।

राजा—(कौतुक के साथ) मित्र, यह क्या है?

विदूषक—अरे यह तो वही है जो मैंने कहा था। तुम्हीं यहाँ चित्रित किये गये हो। और दूसरा कौन कामदेव के बहाने से छिपाया जा रहा है।

राजा—(सहर्ष दोनों हाथ फैलाकर) मित्र, दिखाओ, दिखाओ।

विदूषक—तुम्हें नहीं दिखलाऊँगा। वह कन्या भी यहीं चित्रित की गई दिखलाई पड़ती है। तो क्या बिना पुरस्कार के ही ऐसी सुन्दर कन्या दिखलाई जाती है।

राजा—(कड़ा देते हुए ही जबर्दस्ती लेकर, देखकर विस्मय सहित)

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः ।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ॥ ९ ॥

अपि च—

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम् ।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ॥ १० ॥

अन्वयः—लीलावधूतपद्मा चित्रगता नः अधिकं पक्षपातम् कथयन्ती राजहंसी इव इयम् का मानसम् उपैति ॥ ९ ॥

लीलावधूतपद्मा । लीलया = विलासेन अवधूता = तिरस्कृता । पद्मा=लक्ष्मीः यया सा । (राजहंसीपक्षे तु—गमनलीलया चलितकमला) चित्रगता = चित्रार्पिता (पक्षे तु— चित्रम् = आश्चर्यकारकम् गतम् = गमनम् यस्याः सा ।) नः = अस्माकं सम्बन्धे । अधिकम् = सविशेषम् । पक्षपातम्–पक्षे पातः, तम् = अनुकूलभावम् (पक्षे तु—पक्षयोः = गरुतोः पातम्=क्षेपम्, तत् ।) कथयन्ती=शंसन्ती । (पक्षे तु—लक्षणया दर्शयन्ती) राजहंसी इव = मरालीव । इयम् = एषा । का = सुन्दरी । मानसम् = मनसि (पक्षे तु–मानसरोवरे) उपैति = गच्छतीति । अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ । आर्याभेदो वृत्तम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—धाता अपूर्वपूर्णेन्दुम् अस्याः मुखम् विधाय ध्रुवम् निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः अभूत् ॥ १० ॥

विधायेति । धाता = ब्रह्मा । अपूर्वपूर्णेन्दुम्—पूर्वं न निर्मित इति अपूर्वः = विलक्षणः तादृश पूर्णः इन्दुः = चन्द्रः यस्तम् = विलक्षणपूर्णचन्द्रम् । अस्याः = एतस्याः । मुखम् = आननम् । विधाय=निर्माय । ध्रुवम्=नूनम् । निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः—निजम् = स्वम् यद् आसनाम्भोजम् = आसनकमलम् तस्य विनिमीलनम् = संङ्कोचः तेन दुःस्थितः=सङ्कटापन्नः । अभूत्=आसीत् । निष्कलङ्कमस्याः आननं विधाय धातुः निजासनस्य कमलस्य संकोचे संकटपूर्णास्थितिः जातेति भावार्थः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ १० ॥

खेल-खेल से कमलों को हिलाने वाली चित्र लिखित (आश्चर्य जनक) वाली हमारी अत्यधिक अनुकूल (पंख फड़फड़ाकर) कहती हुई (लक्षणों) से अपने को दिखलाती हुई यह राजहंसी कौन मन में (मानसरोवर में) जा रही है (समा रही है) ॥ ९ ॥

और भी—

ब्रह्माजी विलक्षण पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर इसका मुख बनाकर अवश्यमेव अपने आसन अर्थात् कमल के संकोच से झंझट में पड़ गये होंगे ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति सागरिका सुसंगता च ।)

सुसंगता—सहि ण समासादिदा अह्मेहिं सारिआ । ता चित्तफलअं पि दाव इमादो कदलीघरादो गेण्हिअ लहुं आगच्छह्म । [सखि न समासादितावाभ्यां सारिका । तच्चित्रफलकमपि तावदस्मात्कदलीगृहाद् गृहीत्वा लघ्वागच्छावः ।]

सागरिका—सहि एवं करेह्म । [सखि एवं कुर्वः ।]

(उभे परिक्रामतः ।)

विदूषकः—भो वअस्स कीस उण एसा अवणदमुही आलिहिदा । [भो वयस्य कस्मात्पुनरेषाऽवनतमुख्यालिखिता ।]

सुसंगता—(आकर्ण्य ।) सहि जहा वसन्तआ मन्तेदि तहा तक्केमि भट्टिणा वि एत्थ ज्जेव्व होदव्वम् । ता कअलीगुम्मन्तरिदाओ भविअ पेक्खह्म दाव । [सखि यथा वसन्तको मन्त्रयते तथा तर्कयामि भर्त्राप्यत्रैव भवितव्यम् । तत्कदलीगुल्मान्तरिते भूत्वा प्रेक्षावहे तावत् ।]

(उभे पश्यतः ।)

राजा—वयस्य पश्य पश्य । ('विधायापूर्वपूर्णेन्दुमि'त्यादि पुनः पठति ।)

समासादिता = प्राप्ता । अवनतमुखी = अवनतं मुखं यस्याः सा = अधोमुखी । मन्त्रयति = कथयति । तर्कयामि = सम्भावयामि । भर्त्रा = स्वामिना उदयनेन । कदलीगुल्मान्तरिते—कदलीनाम्—रम्भाणाम् गुल्मः = स्तम्बः, तेनान्तरिते = प्रच्छन्ने ।

(तब सागरिका और सुसङ्गता प्रवेश करती हैं)

सुसङ्गता—सखि ! हमें सारिका तो नहीं मिल पाई है । तब तक चित्र फलक ही इस कदलीकुंज से ले आयें ।

सागरिका—सखि ! ऐसा ही करती हूं ।

(दोनों घूमती हैं ।)

विदूषक—मित्र ! यह तुमने अधोमुखी चित्रित क्यों की है ?

सुसंगता—(सुनकर) सखि ! जैसे वसन्तक बोल रहे हों ! इससे मैं समझती हूँ कि यहीं कहीं महाराजजी को भी होना चाहिए । अतः कदली कुञ्ज में छिपकर देखें ।

(दोनों देखती हैं ।)

राजा—मित्र ! देखो देखो । ('विधाता ने पूर्ण चन्द्रमा के समान' इत्यादि पुनः पढ़ता है ।)

सुसंगता—सहि दिट्ठिआ वड्ढसि । एसो दे हिअअवल्लहो तुमं ज्जेव्व णिव्वण्णअन्तो चिट्ठदि । [सखि दिष्ट्या वर्धसे । एष ते हृदयवल्लभस्त्वामेव निर्वर्णयंस्तिष्ठति ।]

सागरिका—(सलज्जम् ।) कीस परिहासशीलदाए इमं जणं लहुं करेसि । [कस्मात्परिहासशीलतयेमं जनं लघुं करोषि ।]

विदूषकः—(राजानं चालयित्वा ।) णं भणामि । कीस एसा अवणदमुही आलिहिदेत्ति । [ननु भणामि । कस्मादेषाऽवनतमुख्यालिखितेति ।]

राजा—ननु सारिकयैव सकलमावेदितम् ।

सुसंगता—सहि दंसिदं क्खु मेहाविणीए अत्तणो मेहावित्तणम् । [सखि दर्शितं खलु मेधाविन्याऽऽत्मनो मेधावित्वम् ।]

विदूषकः—भो वअस्स अवि सुहाअदि दे लोअणम् । [भो वयस्य अपि सुखयति ते लोचनम् ।]

सागरिका—(ससाध्वसमात्मगतम् ।) किं एसो भणिस्सदित्ति जं सच्चं जीविदमरणाणं अन्तरे वट्टामि । [किमेष भणिष्यतीति यत्सत्यं जीवितमरणयोरन्तरे वर्ते ।]

हृदयवल्लभः = प्राणप्रियः । निर्वर्णयन् = निपुणतयाऽवलोकयन् । परिहासशीलतया—परिहासः = नर्मभाषणम् शीलम् = स्वभावः यस्याः तस्याः भावस्तया । ('शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः ।) लघुम् = अल्पम् । (संकुचितम्) आवेदितम् = कथितम् । मेधावित्वम् = बुद्धितीक्ष्णताम् । सुखयति = अंकयति । ससाध्वसम् = सभयम् । जीवितमरणयोः—जीवनस्य मरणस्य च । अन्तरे = मध्ये ।

सुसंगता—सखि ! बधाई है । यह तुम्हारे हृदयवल्लभ तुम्हें ही निहार रहे हैं ।

सागरिका—(लज्जित होकर) परिहास शीलता (मजाक) से तुम मुझे क्यों लघु (अपमानित) कर रही हो ।

विदूषक—(राजा को हिलाकर) मैं कहता हूँ कि किसलिए तुमने इसको अवनतमुखी (मुँह लटकाये हुए) चित्रित किया है !

राजा—सारिका ने ही वे सब बातें कह दी हैं ।

सुसंगता—सखि, वास्तव में मेधाविनी (सारिका) ने अपनी बुद्धिमत्ता दिखला दी ।

विदूषक—मित्र ! क्या तुम्हारी आँखों को यह सुख पहुँचा रही है ?

सागरिका—(भयभीत होकर मन ही मन) यह क्या कहेंगे । यह सच है कि मैं इस समय जीवन और मरण के मध्य लटक रही हूँ ।

राजा—सुखयतीति किमुच्यते—

कृच्छ्रादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निस्पन्दतामागता।
मद्दृष्टिस्तृषितेव संप्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने॥ ११॥

सुसंगता—सहि सुदं तुए। [सखि, श्रुतं त्वया।]

अन्वयः—कृच्छ्रात् ऊरुयुगम् व्यतीत्य नितम्बस्थले सुचिरम् भ्रान्त्वा, त्रिवली तरङ्गविषमे मध्ये निष्पन्दताम् आगता मद् दृष्टिः सम्प्रति तृषिता इव तुङ्गौ स्तनौ शनैः आरुह्य, यस्याः जललवप्रस्यन्दिनी लोचने साकांक्षम् मुहुः ईक्षते॥ ११॥

कृच्छ्रादिति। कृच्छ्रात् = कष्टात्। ऊरुयुगम्—ऊर्वोः='सक्थनोः ('सक्थि क्लीबे· पुमानूरुः' इत्यमरः।) युगम् = युगलम्। व्यतीत्य = अतिक्रम्य। नितम्बस्थले= कटिपश्चाद्भागे। ('पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्योः' इत्यमरः) सुचिरम् = बहु· कालम्। भ्रान्त्वा=चङ्क्रमणं कृत्वा। त्रिवलीतरङ्गविषमे = तिस्रः वलयः त्रिवली =उदरवर्त्ति चिह्नितरेखास्थली तस्यास्तरंगैः विषमे = कठिने। संचारमध्ये= मध्यमागे, उदरे। निष्पन्दताम् = मौनत्वम् गतिराहित्यमिति। आगता = प्राप्ता। मद् दृष्टिः = मन्नेत्रम्। सम्प्रति = साम्प्रतम्। तृषिता = तृषार्त्ता इव। तुङ्गौ = उन्नतौ। स्तनौ = पयोधरौ। शनैः = मन्दं-मन्दम्। आरुह्य = आक्रम्य। अस्याः= एतस्याः। जललवप्रस्यन्दिनी—जलस्य = वारिणः लवान् = कणान् प्रस्यन्दतः= स्रावयतः इति ते = अश्रुपयः। कणाविले। लोचने = नयने। साकांक्षम् = आकां· क्षया सहितम्। मुहुः = वारं-वारम्। ईक्षते = अवलोकयति। अत्रोत्प्रेक्षालंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम॥ ११॥

राजा—'नेत्रों को सुख दे रही है' इसमें कहना ही क्या? देखो—अत्यन्त कठिनता से जघन स्थल को लाँघ कर नितंबप्रदेश में पर्याप्त भ्रमण करके त्रिवली की तरंगों के ऊँचे नीचे मध्यभाग में निश्चल होकर मेरी दृष्टि अब प्यासे के समान ऊँचे-ऊँचे स्तनों पर धीरे-धीरे चढ़कर इसके अश्रुबिन्दुओं को टपकाने वाले नेत्रों को चाह से देख रही है॥ ११॥

सुसंगता—सखि, तुमने सुना।

त्रिवली—पेट में नाभि से थोड़ा ऊपर तीन रेखायें स्वाभाविक रूप से बन जाती हैं जिससे सुन्दरता बढ़ जाती है। यह प्रायः पतले शरीर में ही बनती है स्थूल में नहीं।

सागरिका—(विहस्य।) तुमं एव्व सुणु जाए आलेहविण्णाणं एवं वण्णीअदि। [त्वमेव शृणु यस्या आलेख्यविज्ञानमेवं वर्ण्यते।]

विदूषकः—भो वअस्स जस्स उण ईदिसीओ वि एवं समागमं बहु मण्णन्ति तस्स वि अत्तणो उवरि को पराहवो जेण एत्थ एव्व ताए आलिहिदं अत्ताणअं ण पेक्खसि। [भो वयस्य यस्य पुनरीदृश्योऽप्येवं समागमं बहु मन्यन्ते तस्याप्यात्मान उपरि कः परिभवः येनात्रैव तयाऽऽलिखितमात्मानं न प्रेक्षसे।]

राजा—(निर्वर्ण्य।) वयस्य अनयाऽऽलिखितोऽहमिति यत्सत्यं ममात्मन्येव बहुमानस्तत्कथं न पश्यामि। पश्य—

भाति पतितो लिखन्त्यास्तस्या बाष्पाम्बुशीकरकणौघः।
स्वेदोद्गम तव करतलसंस्पर्शादेष मे वपुषि॥ १२॥

आलेख्यविज्ञानम् = चित्रणकौशलम्। ईदृश्यः = अनुपमसुन्दर्यः। समागमम् = मिलनम्। बहुमन्यन्ते = हृदयेन कामयन्ते। परिभवः = अनादरः। अत्रैव = अस्मिन्नेव चित्रफलके।

निर्वर्ण्य = सूक्ष्मं निरीक्ष्य। बहुमानः = अत्यादरः।

अन्वयः—मे वपुषि पतितः एषः बाष्पाम्बुशीकरकणौघः लिखन्त्याः तस्याः करतलसंस्पर्शात् स्वेदोद्गम इव भाति॥ १२॥

भातीति। मे = मम। वपुषि = शरीरे। पतितः = च्युतः। एष = अयम्। बाष्पाम्बुशीकरकणौघः = बाष्पाम्बूनाम् = अश्रुजलानाम् शीकराः = बिन्दवः तेषां कणाः = सूक्ष्मांशाः तेषाम् ओघः = समूहः। लिखन्त्याः = यां चित्रन्त्याः तस्याः = सुन्दर्याः। करतलस्पर्शात्—करतलस्य स्पर्शस्तस्मात् = हस्ततलसम्पर्कात्। स्वेदो-

---

सागरिका—(हँसकर) तुम्हीं सुनो जिसके चित्रण कौशल का इस प्रकार वर्णन किया जा रहा है।

विदूषक—मित्र! जिसका मिलन ऐसी सुन्दरियाँ भी अत्यादररूप में मानती हैं उसका भी अपने ऊपर कैसा उपेक्षाभाव है जो कि उसके द्वारा यहीं चित्रित (अपने को) तुम नहीं देख रहे हो।

राजा—(ध्यान से देखकर) 'इसने मेरा चित्र बनाया है' यदि यह सच है तो अपने प्रति ही इससे मेरा आदर बढ़ गया है। तो फिर मैं क्यों नहीं देखूँगा। देखो—

मेरे शरीर पर पड़ा हुआ यह अश्रुजलकणों का समूह मेरा चित्र बनाती हुई इस सुन्दरी की हथेली का स्पर्श होने से निकले हुए पसीने के समान दिखलाई पड़ रहा है॥ १२॥

सागरिका—(आत्मगतम् ।) हिअअ समस्सस समस्सस । मणोरथो वि दे एत्तिअं भूमिं ण गदो । [हृदय समाश्वसिहि समाश्वसिहि । मनोरथोऽपि त एतावतीं भूमिं न गतः ।]

सुसंगता—सहि तुमं एव्व एका सलाहणीआ जाए भट्टा वि एवं मन्तीअदि । [सखि त्वमेवैका श्लाघनीया यथा भर्ताप्येवं मन्त्र्यते ।]

विदूषकः—(पार्श्वतोऽवलोक्य ।) भो वअस्स एदं सरसकमलिणीदलमुणालविरइदं ताए एव्व मअणावस्थासूअअं सअणीअं लक्खीअदि । [भो वयस्य एतत्सरसकमलिनीदलमृणालविरचितं तस्या एव मदनावस्थासूचकं शयनीयं लक्ष्यते ।]

राजा—वयस्य निपुणमुपलक्षितम् । तथा हि—

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।

दगमः = स्वेदस्य = घर्मस्य = उद्गमः = आविर्भावः । इव = यथा । भाति = शोभते । अत्रोत्प्रेक्षालंकारः । आर्यावृत्तम् ॥ १२ ॥

मनोरथः = अभिलाषः । एतावतीं भूमिं न गतः = एतत्पर्यन्तं न प्राप्तः । एका = द्वितीयरहिता । श्लाघनीया = प्रशंसनीया । मन्त्र्यते = कथ्यते । सरसकमलिनीदलमृणालविरचितम् = सरसानि = सद्रवणानि कमलिनीदलानि = कमलिनी पत्राणि मृणालानि = बिसानि च, तैः विरचितम् = निर्मितम् । मदनावस्थासूचकम्—मदनस्य = कामस्य अवस्थाम् = दशाम् सूचयति इति = कामदशाबोधकम् । शयनीयम् = शय्या । लक्ष्यते = दृश्यते । उपलक्षितम् = अवलोकितम् ।

अन्वयः—पीनस्तनजघनसंघात् उभयतः परिम्लानं तनोः मध्यस्य परिमिलनम्

सागरिका—(मन ही मन) हृदय धैर्य रखो, धैर्य रखो । तुम्हारी तो कामना भी यहाँ तक नहीं पहुँची है ।

सुसंगता—सखि ! तुम्हीं अकेली प्रशंसनीय हो जो स्वामी द्वारा भी इस प्रकार कही जा रही हो ।

विदूषक—(इधर-उधर देखकर) मित्र, यह सरस कमलिनी दल तथा मृणाल से बनाई गई उस (सुन्दरी) की ही कामदशाको सूचित करने वाली शय्या दिखलाई पड़ रही है ।

राजा—मित्र ! तुमने ठीक पहचाना । क्योंकि—

मोटे-मोटे स्तनों और जाँघों के सम्पर्क से दोनों ओर से म्लान (मुरझाई हुई)

परिम्लानम्—परि + √म्लै + क्त ।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः संतापं वदति नलिनीपत्रशयनम् ॥ १३ ॥

अपि च—

स्थितमुरसि विशालं पद्मिनीपत्रमेतत्
कथयति न तथान्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम् ।

अप्राप्य अन्तःहरितम् श्लथभुजलताक्षेपवलनैः व्यस्तन्यासम् इदम् नलिनीपत्रशयनम् कृशांग्याः सन्तापम् ॥ १३ ॥

परिम्लानमिति । पीनस्तनजघनसंघात्—स्तनौ च जघनश्च = स्तनजघनम् ('जघनं स्यात् स्त्रियाः श्रोणिपुरोभागे कटावपि' इति मेदिनी) पीनम् = स्थूलं च तत् स्तनजघनम्, तस्य संगात् = सम्पर्कात् । उभयतः = द्वयोः भागयोः । परिम्लानम् = सर्वतः म्लापितम् । तनोः = कृशस्य शरीरस्य मध्यस्य = मध्यभागस्य परिमिलनम् = संसर्गम् अप्राप्य = अनासाद्य । अन्तः = मध्ये शय्यायाम् । हरितम् = हरितवर्णम् । श्लथभुजलताक्षेपवलनैः—श्लथे = शिथिले ये भुजलते = बाहुवल्लयौ तयोः आक्षेपैः = इतस्ततः प्रक्षेपैः वलनैः = चलनैश्च । व्यस्तन्यासम्—व्यस्तः = विविधतया क्षिप्तः न्यासः = रचना यस्य तत् । इदम् = एतत् । नलिनीपत्रशयनम्—नलिनीपत्रैः = कमलिनीदलैः रचितम् = निर्मितम् यत् शयनम् = शयनीयम् तत् । कृशाङ्ग्याः = तन्वङ्ग्याः । सन्तापम् = खेदम् । वदति = कथयति । शिखरिणीवृत्तम् । तद्यथा—'रसैः रुद्रैः छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी' ॥ १३ ॥

अन्वयः—उरसि स्थितम् एतत् विशालम् पद्मिनीपत्रम् अन्तः मन्मथोत्थाम् अवस्थाम् तथा न कथयति यथा अतिगुरुपरितापम्लापिताभ्याम् मण्डलाभ्याम् अस्याः स्तनयुगपरिणाहम् ब्रवीति ॥ १४ ॥

स्थितमिति । उरसि = वक्षसि । स्थितम् = स्थापितम् । एतत् = इदम् । विशालम् = महत् । पद्मिनीपत्रम् = कमलिनीदलम् । अन्तः = हृदयान्तरे । मन्मथोत्थाम्—मन्मथेन मदनेन उत्थाम् = जनिताम् अवस्थाम् = दशाम् । तथा = तेन प्रकारेण न कथयति =

क्षीण मध्य (कटिभाग) के सम्पर्क को न पाकर बीच में हरी और शिथिल बाहुलताओं के इधर उधर प्रक्षेप की चञ्चलता से अस्तव्यस्त यह कमलिनीदल की शय्या, कृशाङ्गी (दुर्बल शरीर वाली) सुन्दरी के सन्ताप को प्रकट करती है ॥ १३ ॥

और भी—

अतिगुरुपरितापम्लापिताभ्यां यथास्याः
स्तनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति ॥ १४ ॥

विदूषकः—(नाटचेन मृणालिकां गृहीत्वा ।) भो वअस्स अअं अवरो ताए एव्व पीणत्थणुह्माकिलिसन्तकोमलमुणालहारो । ता पेक्खदु भवं ।
[**भो वयस्य अयमपरस्तस्या एव पीनस्तनोष्मक्लिश्यमानकोमलमृणालहारः । तत्प्रेक्षतां भवान् ।**]

राजा—(गृहीत्वोरसि विन्यस्य ।) अयि जडप्रकृते—
परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यात्
किं शोषमायासि मृणालहार ।

न वदति यथा = येन प्रकारेण अतिगुरुपरितापम्लापिताभ्याम्—अतिगुरुः = अतिमहान् यः परितापः=सन्तापस्तेन म्लापिताभ्याम्=ग्लापिताभ्याम् । मण्डलाभ्याम्= स्तनसंयोगकृताभ्यां चक्रबालाभ्याम् ('चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः) अस्याः = चित्रितायाः । स्तनयुगपरिणाहम्—स्तनयोः = कुचयोः युगम् = युगलम् तस्य परिणाहः = विशालता ('परिणाहो विशालताः इत्यमरः) तम् । वदति = प्रकाशयति इत्यर्थः । अत्र मालिनीवृत्तम् । तद् यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ १४ ॥

पीनस्तनोष्मक्लिश्यमानकोमलमृणालहारः = पीनौ यौ स्तनौ=स्थूलकुचौ तयोः या उष्मा = कामजनितदाहः । तेन क्लिश्यमानः = क्लान्तः कोमलः = मृदुः मृणालस्य कमलनालस्य हारः = माला ।

अन्वयः—मृणालहार तत्कुचकुम्भमध्यात् परिच्युतः, किं शोषम् आयासि, तत्र

छाती पर रखा गया यह बड़ा सा कमलिनी दल (पुरइन) इसके अन्दर कामदेव से उत्पन्न हुई दशा (व्याकुलता) को उस प्रकार नहीं बतला रही है जिस प्रकार कि अत्यधिक सन्ताप से मुरझाये हुए मण्डलाकार इसके दोनों स्तनों की विशालता को बतला रहा है ॥ १४ ॥

विदूषक—(नाटकीय ढंग से मृणालिका लेकर) मित्र, यह दूसरा उसी के मोटे स्तनों की काम जनित गर्मी से झुलसा हुआ कोमल मृणालहार है । आप इसे देखें तो ।

राजा—(हार को लेकर छाती से लगाकर) अरे जड़ प्रकृति !
हे मृणालहार ! उस (सुन्दरी) के मोटे स्तनों के बीच से गिर जाने से तुम सूखे क्यों

म्लापितम्—√म्लै + णिच् + क्त ।

न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य
तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ॥ १५ ॥

सुसंगता—(स्वगतम्।) हद्धी हद्धी। गुरुआणुराओखित्तहिअओ भट्टा असंबद्धं पि मन्तेदुं पउत्तो। ता ण जुत्तं अदो वरं उवेक्खिदुम्। भोदु। एव्वं दाव। सहि। जस्स किदे तुमं आगदा सो अअं ते पुरदो चिट्ठदि। [हा धिक् हा धिक्। गुर्वनुरागोत्क्षिप्तहृदयो भर्ताऽसंबद्धमपि मन्त्रयितुं प्रवृत्तः। तन्न युक्तमतः परमुपेक्षितुम्। भवतु। एवं तावत्। (प्रकाशम्।) सखि। यस्य कृते त्वमागता सोऽयं ते पुरतस्तिष्ठति।]

सागरिका—(सासूयम्।) सुसंगदे कस्स किदे अहं एत्थ आगदा। [सुसंगते कस्य कृतेऽहमत्रागता।]

तावकस्य सूक्ष्मतन्तोः अपि अवकाशः न भवतः किमु स्यात् ॥ १५ ॥

परिच्युत इति। मृणालहार—मृणालानाम् हारः = माला तत्सम्बुद्धौ। तत्कुचकुम्भमध्यात्—तस्याः = कामिन्याः कुचकुम्भयोः = स्तनकलशयोः मध्यात् = मध्यभागात्। परिच्युतः—परितः च्युतः = परिस्खलितः। (त्वम्) किम् = किमर्थम् शोषम् = शुष्कताम्। आयासि = प्रपद्यसे। तत्र = कुचकुम्भयोर्मध्ये। तावकस्य = त्वदीयस्य सूक्ष्मतन्तोः = मृणालसूत्रस्य अपि अवकाशः = अन्तरम्। न (स्यात्) भवतः = तव स्थूलशरीरस्य किमु स्यात् = किमवकाशो भवेत्। अत्रोपजातिर्वृत्तम्। तद् यथा—'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति ॥ १५ ॥

गुर्वनुरागोत्क्षिप्तहृदयः—गुरुणा = महता अनुरागेण = प्रेम्णा आक्षिप्तम् = आकृष्टम् हृदयम् = चेतः यस्य सः। भर्त्ता = स्वामी। असम्बद्धम् = अप्रासङ्गिकम्। मन्त्रयितुम् = कथयितुम्। युक्तम् = उचितम्। यस्य कृते = यदर्थम्। पुरतः = समक्षम्।

जा रहे हो। उन कुच कुम्भों में तुम्हारे सूक्ष्म तन्तु के जाने तक का स्थान नहीं है तो फिर तुम्हारे स्थूल के लिए कहाँ से स्थान हो सकता है ॥ १५ ॥

सुसंगता—(मन ही मन) हाय हाय! महान् प्रेम से व्याकुल हृदय महाराज अप्रासंगिक भी कहने लग गये हैं अतः अब और उपेक्षा करना ठीक नहीं है। (प्रकट रूप में) अस्तु, ऐसा ही सही। सखि! जिसके लिए तुम आई हो वह तो यह तुम्हारे सामने ही है।

सागरिका—(ईर्ष्या से) सुसंगते! किसके लिए मैं यहाँ आई हूँ।

सुसंगता—(विहस्य ।) अइ अण्णसङ्किदे णं चित्तफलअस्स । ता गेण्ह एदम् । [अयि अन्यशङ्किते ननु चित्रफलकस्य तद् गृहाणैतम् ।]

सागरिका—(सरोषम् ।) अउसलह्मि तुह ईदिसाणं आलावाणम् । ता अण्णदो गमिस्सम् । [अकुशलास्मि तवेदृशानामालापानाम् । तदन्यतो गमिष्यामि ।] (इति गन्तुमिच्छति ।)

सुसंगता—(सागरिकां हस्ते गृहीत्वा ।) अइ असहणे इह चिट्ठ दाव मुहुत्तअं जाव इमादो कदलीघरादो चित्तफलअं गण्हिअ आअच्छामि । [अयि असहने इह तिष्ठ तावन्मुहूर्तं यावदस्मात्कदलीगृहाच्चित्रफलकं गृहीत्वागच्छामि ।]

सागरिका—सहि एव्वं करेहि । [सखि एवं कुरु ।]

(सुसंगता कदलीगृहाभिमुखं परिक्रामति ।)

विदूषक—(सुसंगता दृष्ट्वा ससंभ्रमम् ।) भो वअस्स पच्छादेहि एदं चित्तफलअं । एसा क्खु देवीए परिचारिआ सुसंगदा आगदा । [भो वयस्य, प्रच्छादयैतं चित्रफलकम् । एषा खलु देव्याः परिचारिका सुसंगतागता]

(राजा पटान्तेन फलकं प्रच्छादयति ।)

अन्यशङ्किते = अन्यत्वेन शङ्कयमाने । अकुशला = अनभिज्ञा ।
असहने = कोपने । मुहूर्त्तम् = क्षणम् । ससम्भ्रमम् = सभयम् । प्रच्छादय = आच्छादितं कुरु । परिचारिका = सेविका । पटान्तेन = वस्त्रप्रान्तेन ।

सुसंगता—(हँसकर) अरी व्यर्थ शंका करने वाली ! चित्रफलक के लिए । अतः यह ले लो ।

सागरिका—(क्रोध से) मैं अनभिज्ञ हूँ तुम्हारे इस वार्तालाप से । अतः दूसरी जगह चली जाऊँगी । (जाना चाहती है)

सुसंगता—(सागरिका को हाथ से पकड़कर) अयि क्रोधिनि ! तब तक यहाँ क्षण भर ठहरो जब तक इस कदली गृह से चित्रफलक लेकर आती हूँ ।

सागरिका—सखि ! ऐसा ही करो ।

(सुसंगता कदली गृह की ओर चलने लगती है ।)

विदूषक—(सुसंगता को देखकर भय से) अरे ! मित्र इस चित्रफलक को ढक लो । यह तो देवी जी की सेविका सुसङ्गता आ रही है ।

(राजा कपड़े के छोर से चित्रफलक को ढँक लेता है ।)

सुसंगता—(उपसृत्य ।) जअदु जअदु भट्टा । [जयतु जयतु भर्ता ।]

राजा—सुसंगते, स्वागतम् । इहोपविश्यताम् ।

(सुसंगतोपविशति ।)

राजा—सुसंगते कथमहमिहस्थो भवत्या ज्ञातः ।

सुसंगता—(विहस्य ।) भट्टा ण केवलं तुमं अअं पि चित्तफलएण सह सव्वो वुत्तन्तो मए विण्णादो । ता गदुअ देवीए णिवेदइस्सम् । [भर्तः, न केवलं त्वमयमपि चित्रफलकेन सह सर्वो वृत्तान्तो मया विज्ञातः । तद्गत्वा देव्यै निवेदयिष्यामि ।]

विदूषकः—(अपवार्य समयम् ।) भो वअस्स सव्वं संभावीअदि । मुहरा क्खु एसा गब्भदासी । ता पारितोसिएण संपीणेहि णम् । [भो वयस्य सर्वं संभाव्यते । मुखरा खल्वेषा गर्भदासी । तत्पारितोषिकेण संप्रीणयैनाम् ।]

राजा—युक्तमुक्तं भवता (सुसङ्गतां हस्ते गृहीत्वा ।) सुसङ्गते क्रीडा-मात्रमेवैतत् । अकारणे त्वया देवी न खेदयितव्या । इदं ते पारितोषिकम् । (कर्णाभरणं प्रयच्छति ।)

इहस्थः = अत्र स्थितः । निवेदयिष्यामि = कथयिष्यामि ।

अपवार्य = हस्तेन मुखमाच्छाद्य । मुखरा = बहुभाषिणी । पारितोषिके = पुरस्कारेण । सम्प्रीणय = प्रसीदय ।

क्रीडामात्रम् = नैव वस्तुतः । अकारणे = व्यर्थम् । कर्णाभरणम् = कर्णस्य = श्रोत्रस्य आभरणम् = आभूषणम् तत् । प्रयच्छति = ददाति ।

सुसंगता—(निकट जाकर) महाराज की जय हो ।

राजा—सुसङ्गते ! स्वागत है ! यहाँ बैठ जाओ (सुसंगता बैठ जाती है ।)

राजा—सुसङ्गते ! कहो यहाँ बैठे हुए मुझे तुमने कैसे समझ लिया ?

सुसंगता—(हँसकर) महाराज ! तुम्हीं केवल नहीं इस चित्र फलक से यह सम्पूर्ण वृत्तान्त भी जान लिया है । अतः जाकर महारानी जी के लिए बतलाऊँगी ।

विदूषक—(हाथ से मुख ढककर डर से) मित्र ! सब कुछ सम्भव है । यह गर्भ-दासी (हरामजादी) तो बड़ी बतलाने वाली है । अतः इसे इनाम देकर प्रसन्न कीजिये ।

राजा—आपने ठीक कहा । (सुसंगता को हाथ में पकड़कर) सुसङ्गते ! यह तो खेल मात्र है । व्यर्थ तुम्हें देवी को खिन्न नहीं करना चाहिए । यह तुम्हारा पुरस्कार है ।

(कान का आभूषण देने लगते हैं)

सुसंगता—(प्रणम्य सस्मितम्) भट्टा अलं सङ्काए। मए वि भट्टिणो पसाएण कीलिदं एव्व। ता किं कण्णाभरणेण। एसो ज्जेव मे गुरुओ जं कीस तुए अहं एत्थ चित्तफलए आलिहिदत्ति कुविदा मे पिअसही साआरआ। ता गदुअ पसादेदु णं भट्टा। [भर्तः अलं शङ्कया। मयापि भर्त्तुः प्रसादेन क्रीडितमेव। तत्किं कर्णाभरणेन। एष एव मे गुरुः प्रसादो यत्कस्मात्त्वयाहमत्र चित्रफलक आलिखितेति कुपिता मे प्रियसखी सागरिका। तद्गत्वा प्रसादयत्वेनां भर्ता।]

राजा—(ससंभ्रममुत्थाय।) क्वासौ क्वासौ।

सुसंगता—इदो इदो भट्टा। [इत इतो भर्ता।]

विदूषकः—भो गण्हामि एदं चित्तफलअम्। कदा वि पुणो वि एदिणा कज्जं भविस्सदि। [भो गृह्णाम्येतं चित्रफलकम्। कदाऽपि पुनरप्येतेन कार्यं भविष्यति।]

सुसंगता—भट्टा इयं सा। [भर्तः इयं सा।]

(सर्वे कदलीगृहान्निष्क्रामन्ति।)

सागरिका—(राजानं दृष्ट्वा सहर्षं ससाध्वसं सकम्पं च स्वागतम्।) हद्धी

प्रसादेन = प्रसन्नतया। क्रीडितम् = खेलितम्। तव सर्वं वृत्तान्तं मया ज्ञातमिति। गुरुकः = महान्। ससम्भ्रमम् = सहसा, वेगेन वा।

सहर्षम् = प्रसन्नतया सहितम्। ससाध्वसम्=सभयम्। सकम्पम् = गात्रकम्पन-

---

सुसंगता—(प्रणाम कर मुस्कराती हुई) महाराज शङ्का मत करो मैं भी आपकी कृपा से यह सब खेल ही कर रही थी। तो फिर कर्णाभूषण से क्या मतलब। मेरा तो यही बहुत बड़ा पुरस्कार है—"तूने किसलिए मेरा इस चित्रफलक पर चित्र बनाया है" यह कह कर मेरी प्रिय सखी क्रुद्ध है। अतः जाकर आप उन्हें प्रसन्न कर लें।

राजा—(शीघ्रता से उठकर) वह कहाँ है, कहाँ है ?

सुसंगता—महाराज ! इधर, इधर।

विदूषक—अरे यह चित्रफलक ले रहा हूँ। कदाचित फिर से इसकी कुछ आवश्यकता पड़ जाये।

सुसंगता—महाराज ! वह यह है।

(सभी कदली गृह से निकल जाते हैं।)

सागरिका—(**राजा को देखकर प्रसन्नता, भय एवं कम्पन के साथ मन ही**

'राजानं दृष्ट्वा सहर्षं ससाध्वसमि'त्यादि पद में प्रियतम के दर्शन से हर्ष नवीन पुरुष होने के कारण भी सुलभ भय एवं उससे प्रभावित कम्पन एक साथ तीन-तीन क्रियाएँ प्रदर्शित की गई हैं।

हद्धी । एदं पेक्खिअ अतिसद्धसेण न सक्कणोमि पदादो पदं वि गन्तुम् । ता किं दाणिं एत्थ करिस्सम् । [हा धिक् हा धिक् । एतं प्रेक्ष्यातिसाध्वसेन न शक्नोमि पदात्पदमपि गन्तुम् । तत्किमिदानीमत्र करिष्यामि ।]

विदूषकः—(सागरिकां दृष्ट्वा ।) ही ही भोः अच्चरिअं अच्चरिअम् । ईदिसं रूवं माणुसलोए ण पुणो दीसदि । ता तक्केमि पआवइणो वि एदं णिम्मविअ विम्हओ समुप्पण्णोत्ति । [ही ही भोः आश्चर्यमाश्चर्यम् । ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते । तत्तर्कयामि प्रजापतेरप्येतन्निर्माय विस्मयः समुत्पन्न इति ।]

राजा—वयस्य ममाप्येवं मनसि वर्तते ।

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष-
श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम् ।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा
विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ॥ १६ ॥

सहितम् । प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा । अतिसाध्वसेन = महद्भयेन । पदात्पदमपि = पदमात्रमपि (एकडग भी) । गन्तुम् = चलितुम् ।

ईदृशं रूपम् = इदृक् सौन्दर्यम् । मनुष्यलोके = संसारे । प्रजापतेः = ब्रह्मणः । निर्माय = विधाय । विस्मयः = आश्चर्यम् । समुत्पन्नः = संजातः ।

अन्वयः—जगत्त्रयललामभूताम् इमाम् ललनाम् विधाय वेधसा विस्मयवशात् ध्रुवम् जितनिजाब्जपत्रत्विषः दृशः पृथुतरीकृताः चतुर्भिः मुखैः समम् साधु-साधु इति व्याहृतम् शिरांसि अपि च चलितानि ॥ १६ ॥

दृश इति । जगत्त्रयललामभूताम् = जगताम् = भुवनानाम् त्रयम् इति जगत्

मन) हाय हाय ! इन्हें देखकर अत्यन्त भय से मुझसे तो एक कदम भी नहीं चला जाता है । तो अब मैं क्या करूँ ।

विदूषक—(सागरिका को देखकर) अहा अहा आश्चर्य है आश्चर्य है । ऐसा रूप सौन्दर्य मनुष्य लोक में दिखाई नहीं पड़ता है । मैं समझता हूँ विधाता को भी इन्हें बनाकर विस्मय हुआ होगा ।

राजा— मित्र ! यही बात मेरे मन में भी आ रही है ।

त्रिभुवन की इस अद्वितीय सुन्दरी का निर्माण कर ब्रह्मा जी ने आश्चर्य चकित होकर अवश्य ही अपने अधिष्ठान कमल दल की कान्ति को जीतनेवाली अपनी आँखों को विस्फारित किया होगा । अपने चारों मुखों से एक साथ साधुवाद किया होगा तथा प्रशंसा में अपनी शिर हिलाये होंगे ॥ १६ ॥

सागरिका—(सासूयं सुसङ्गतामालोक्य) सहि ईदसो चित्तफलओ तुए आणीदो। [सखि ईदृशः चित्रफलकस्त्वयाऽऽनीतः।] (इति गच्छति।)

राजा—

दृष्टिं रुषा क्षिपसि भामिनि यद्यपीमां
स्निग्धेयमेष्यति तथापि न रूक्षभावम्।
त्यक्त्वा त्वरां व्रज पदस्खलितैरयं ते
खेदं करिष्यति गुरुर्नितरां नितम्बः॥ १७॥

अयम् तस्य ललामभूताम् = त्रिभुवनालङ्कारभूताम्। इमाम् = एताम्। ललनाम् = सुन्दरीम्। विधाय = निर्माय। वेधसा = ब्रह्मणा। विस्मयवशात् = आश्चर्य-वशात्। ध्रुवम् = नूनम्। जितनिजाब्जपत्रत्विषः—जिताः = पराजिताः निजस्य = स्वस्य (वासभूतस्य) अब्जस्य = पद्मस्य पत्राणाम् = दलानाम् त्विट् = कान्तिः याभिस्ताः। दृशः = दृश्यः। पृथुतरीकृताः—विस्तारिताः। चतुर्भिः—चतुः-संख्यकैः। मुखैः—आननैः। समम् = युगपद्। 'साधु-साधु' इति = शोभनं शोभन-मिति। व्याहृतम् = उच्चारितम्, शिरांसि = मस्तकानि अपि च चलितानि = कम्पितानि इति। अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः। पृथ्वीवृत्तम्। तद्यथा—'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः इति॥ १६॥

सासूयम् = ईर्ष्यया सहितम्। त्वया = सुसंगतया।

अन्वयः—भामिनि यद्यपि रुषा इमाम् दृष्टिम् क्षिपसि तथापि स्निग्धा इयम् रूक्षभावम् न एष्यति। त्वराम् त्यक्त्वा व्रज, पदस्खलितैः अयम् ते गुरुः नितम्बः नितराम् खेदम् करिष्यति॥ १७॥

दृष्टिमिति। भामिनि—कोपने ('कोपिनी सैव भामिनी' इत्यमरः।) यद्यपि। रुषा—क्रोधेन। इमाम्—एताम्। दृष्टिम्—नेत्रम्। क्षिपसि—प्रेरयसि। तथापि स्निग्धा—स्नेहवर्षिणी। इयम् = एषा (दृष्टिः) रूक्षभावम् = अस्निग्धत्वम् च एष्यति = न गमिष्यति। त्वदीया दृष्टिः सर्वथा मधुरा इति भावार्थः। त्वराम् = शीघ्रताम्।

सागरिका—(ईर्ष्या सहित सुसङ्गता को देखकर) हे सखि! ऐसा चित्रफलक तुम ले आई हो (चल देती है।)

राजा—हे भामिनि! यद्यपि तुम रोष से मेरी ओर दृष्टिपात नहीं कर रही हो तथापि तुम्हारी यह स्निग्ध दृष्टि रूखी नहीं बन सकेगी। (अतः) शीघ्रता छोड़कर (शनैः शनैः) चलो नहीं तो तुम्हारे भारी नितम्ब को निरन्तर कष्ट होगा॥ १७॥

सुसंगता—भट्टा अदिकोवणा क्खु एसा । ता हत्थे गेण्हिअ पसादेहि णम् । [भर्तः अतिकोपना खल्वेषा । तद्धस्ते गृहीत्वा प्रसादयैनाम् ।]

राजा—(सानन्दम् ।) यथाह भवती । (सागरिकां हस्ते गृहीत्वा स्पर्शसुखं नाटयति ।)

विदूषकः—भो एसा क्खु तुए अपुव्वा सिरी समासादिदा । [भोः एषा खलु त्वयाऽपूर्वा श्रीः समासादिता ।]

राजा—वयस्य सत्यम् ।

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ॥ १८ ॥

त्यक्त्वा = परित्यज्य । व्रज = गच्छ (अन्यथा) पदस्खलितैः पदानाम् = चरणानाम् = स्खलितैः = अव्यवस्थितैः पातैः । अयम् = एषः । ते = तव नितम्बः = पश्चाद्भागः । नितराम् = निरन्तरम् । खेदम् = क्लेशम् । करिष्यति = विधास्यति । अतः त्वया गमने न त्वरणीयम् इति । अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ १७ ॥

अतिकोपना = अतीव रुष्टा । प्रसादय = प्रीणीहि । अपूर्वा श्रीः = अलौकिका शोभा (लक्ष्मीः) । समासादिता = प्राप्ता ।

अन्वयः—एषा, श्रीः, अस्याः, पाणिः, अपि, पारिजातस्य पल्लवः । अन्यथा एष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः कुतः स्रवति ॥ १८ ॥

श्रीरिति । एषा = इयम् सुन्दरी । श्रीः = लक्ष्मीः (इति सत्यम्) अस्याः = एतस्याः । पाणिः = करः । पारिजातस्य = कल्पद्रुमस्य । पल्लवः = किसलयम् । (वर्त्तते) अन्यथा = यद्येतन्न स्यात् तदा । एषः = अयम् । स्वेदच्छद्मामृतद्रवः = स्वेदस्य = घर्मस्य छद्मम् = व्याजः यस्य सः चासौ अमृतद्रवः = पीयूषस्यन्दः । कुतः = कस्मात् । स्रवति = क्षरति । अत्र रूपकालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

सुसङ्गता—महाराज ! यह बड़ी क्रोध करनेवाली है । अतः हाथ पकड़कर इसे मना लें ।

राजा—(सानन्द)—आप जैसा कहें । (सागरिका को हाथ से पकड़कर आनन्दानुभव करता है ।)

विदूषक—अरे यह तो तुमने अपूर्व श्री (लक्ष्मी) पा ली है ।

राजा—मित्र ! सच है ।

यह सुन्दरी लक्ष्मी है । इसका हाथ भी पारिजात का किसलय है । यदि ऐसा नहीं है तो यह पसीने के बहाने अमृत द्रव कहाँ से टपक रहा है ॥ १८ ॥

सुसं०--सहि अदिणिठ्ठुरा दाणिं सि तुमं जा एवं भट्टिणा हत्थे गिहीदा वि कोवं ण मुञ्चसि। [सखि अतिनिष्ठुरेदानीमसि त्वं यैवं भर्त्रा हस्ते गृहीतापि कोपं न मुञ्चसि।]

साग०--(सभ्रूभङ्गम्।) अइ सुसङ्गदे अज्ज वि ण विरमेसि। [अयि सुसंगते अद्यापि न विरमसि।]

राजा—अयि प्रसीद। न खलु युक्तः सखीजन एवंविधः कोपानुबन्धः।

विदू०--एसा क्खु अवरा देवी वासवदत्ता। [एषा खल्वपरा देवी वासवदत्ता।]

(राजा सचकितं सागरिकाया हस्तं मुञ्चति।)

साग०—(ससंभ्रमम्।) सुसंगदे किं दाणिं एत्थ करिस्सम्। [सुसंगते किमिदानीमत्र करिष्ये।]

सुसं०—सहि एदं तमालवीथिअं अन्तरिअ णिक्कमह्म। [सखि एतां तमालवीथिकामन्तरयित्वा निष्क्रमावः।]

(निष्क्रान्ते।)

अतिनिष्ठुरा = अतिकठोरहृदया। इदानीम् = सम्प्रति। भर्त्रा = स्वामिना। मुञ्चसि = त्यजसि।

सभ्रूभङ्गम् = भ्रुवोः भङ्गः = उन्नयनम् तेन सह = सकोपम्। विरमसि = निवर्त्तसे। कोपानुबन्धः = क्रोधक्लमः। अपरा = अन्या। तमालवीथिकाम् = तमाललताकुञ्जम्। अन्तरयित्वा = व्यवधानं कृत्वा। निष्क्रमावः = बहिर्गमनं कुर्वः।

सुसङ्गता—सखि! तुम तो अब बड़ी निष्ठुर बन रही हो जो इस प्रकार स्वामी द्वारा हाथ से पकड़ी गई हो फिर भी क्रोध नहीं छोड़ती।

सागरिका—(भौंहें टेढ़ी करके) अरी सुसङ्गते! तू अब भी चुप नहीं हो रही है।

राजा—अरी प्रसन्न हो जाओ। सखियों पर तो ऐसा क्रोध नहीं करना चाहिये।

विदूषक—यह तो दूसरी महारानी वासवदत्ता हैं।

(राजा चकित होकर महारानी का हाथ छोड़ देते हैं।)

सागरिका—(घबड़ा कर) सुसङ्गते! अब मैं यहाँ क्या करूँ?

सुसङ्गता—सखि, इस तमाल वीथिका की ओट करके निकल चलें।

(दोनों निकल जाती हैं।)

राजा—(पार्श्वतोऽवलोक्य ।) वयस्य क्व सा देवी वासवदत्ता ।

विदू०—भो ण जाणामि क्व सा । मए एसा क्खु अवरा देवी वासवदत्ता अदिदीहरोसदाएत्ति भणिदं । [**भो न जानामि क्व सा। मया एषा खल्वपरा देवी वासवदत्ताऽतिदीर्घरोषतयेति** भणितम् ।]

राजा—धिङ् मूर्खं ।

प्राप्ता कथमपि दैवात्कण्ठमनीतैव सा प्रकटरागा ।
रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताद् भ्रंशिता भवता ॥ १९ ॥

(ततः प्रविशति वासवदत्ता काञ्चनमाला च ।)

वासवदत्ता—हञ्जे कञ्चणमाले अध केत्तिअ दूरे दाणिं सा अज्जउत्तेण परिगिहीदा णोमालिआ । [**हञ्जे काञ्चनमाले अथ कियद्दूर इदानीं साऽऽर्यपुत्रेण परिगृहीता नवमालिका** ।]

क्व = कुत्र । दीर्घरोषतया = अत्यधिकक्रोधतया ।

अन्वयः—कथम् अपि दैवात् प्राप्ता प्रकटरागा कान्ता सा रत्नावली इव कण्ठम् आनीता एव भवता मम हस्तात् भ्रंशिता ॥ १९ ॥

प्राप्तेति । कथमपि = यथाकथञ्चित् । दैवात् = भाग्यवशात् । प्राप्ता:=लब्धा (सागरिका रत्नावली च) प्रकटरागा—प्रकट: = स्पष्ट: राग: = प्रेम (रक्तिमा) यस्या: सा । कान्ता = प्रिया (पक्षे—कान्तिमती) सा रत्नावली = माला इव **कण्ठम्** = गलम् । आनीता = प्रापिता । एव भवता = त्वया । मम हस्तात् = मम **करात्** । भ्रंशिता = दूरीकृता, पातिता वा । अत्र श्लेषोपमयो: सङ्कर: । आर्यावृत्तम् ॥ १९ ॥

राजा—(दोनों ओर देखकर) मित्र, देवी वासवदत्ता कहाँ है ?

विदूषक—अरे नहीं मालूम वह कहाँ है ? मैंने तो 'यह दूसरी वासवदत्ता' अत्यधिक क्रोध के कारण कह दिया था ।

राजा—अरे मूर्ख ! धिक्कार है । जैसे-तैसे दैवयोग से प्राप्त अनुराग को प्रकट करनेवाली (पक्ष में=रङ्ग फैलाने वाली) प्रिया (कान्तिमती) वह (सागरिका) रत्नावली सी गले में पड़ने से पूर्व ही (गले लगने से पूर्व) आपने मेरे हाथ से दूर कर दी (गिरा दी) ॥१९॥

(तब वासवदत्ता और काञ्चनमाला प्रवेश करती हैं ।)

वासवत्ता—अरी काञ्चनमाले ! आर्यपुत्र द्वारा अपनाई गई वह नवमालिका (निवारी) अभी कितनी दूर है ?

काञ्चनमाला—भट्टिणि एदं कदलीघरअं अदिक्कमिअ दीसदि एव्व। [भर्त्रि एतत्कदलीगृहमतिक्रम्य दृश्यत एव ।]

वासव०—ता आदेसेहि मग्गम् । [तदादेशय मार्गम् ।]

काञ्चन०—एदु एदु भट्टिणी । [एत्वेतु भर्त्री ।]

राजा—वयस्य क्वेदानीं प्रिया द्रष्टव्या ।

काञ्चन०—भट्टिणि जहा समीवे भट्टा मन्तेहि तह तक्कमि भट्टिणी एव्व पडिवालअन्तो चिट्ठदिति । ता उवसप्पदु भट्टिणी । [भर्त्रि यथा समीपे भर्ता मन्त्रयते तथा तर्कयामि भर्त्रीमेव प्रतिपालयंस्तिष्ठतीति । तदुपसर्पतु भर्त्री ।]

वासव०—(उपसृत्य ।) जअदु जअदु अज्जउत्तो । [जयतु जयत्वार्य-पुत्रः ।]

राजा—(अपवार्य ।) वयस्य प्रच्छादय चित्रफलकम् ।

विदूषकः—(कक्षायां फलकं प्रक्षिप्योत्तरीयेण प्रच्छादयति ।)

वासव०—अज्जउत्त अह कुसुमिदा णोमालिआ । [आर्यपुत्र अथ कुसुमिता नवमालिका ।]

अतिक्रम्य = अतिक्रमणं कृत्वा । दृश्यते = अवलोक्यते । प्रतिपालयन् = प्रतीक्षां कुर्वन् ।

प्रच्छादय = अच्छादितं कुरु । कक्षायाम् = बाहुमूले । उत्तरीयेण = ऊर्ध्व-वस्त्रेण ।

काञ्चनमाला—स्वामिनि, यह कदली गृह पार कर के दिखलाई ही दे रही है।

वासवदत्ता—तो मार्ग बतलाओ ।

काञ्चनमाला—महारानी जी, आइये आइये ?

राजा—मित्र, अब प्रिया कहाँ दिखाई देगी ।

काञ्चनमाला—स्वामिनि, जैसे कि महाराज बोल रहे हैं उससे समझती हूँ कि स्वामिनी (आप) की ही प्रतीक्षा कर रहे होंगे । अतः स्वामिनी उनके पास चलें ।

वासवदत्ता—(निकट जाकर) आर्यपुत्र की जय हो, जय हो ।

राजा—(एक ओर मुँह करके) मित्र ! चित्रफलक को ढँक लो ।

विदूषक—(बगल में फलक को रख कर उत्तरीय से ढँक लेता है)

वासवदत्ता—आर्यपुत्र ! क्या नवमालिका खिल गई ।

राजा—देवि प्रथममिहागतैरप्यस्माभिस्त्वं चिरयसीति नैव दृष्टा । तदेहि । सहितावेव तां पश्यावः ।

वासव०—(निर्वर्ण्य ।) अज्जउत्त मुहरागादो एव्व मए जाणिदं जहा कुसुमिदा णोमालिआत्ति । ता ण गमिस्सम् । [आर्यपुत्र मुखरागादेव मया ज्ञातं यथा कुसुमिता नवमालिकेति । तन्न गमिष्यामि ।]

विदू०—ही ही भो जिदं जिदं अह्मेहिं । [ही ही भोः जितं जितमस्माभिः ।] (इति बाहू प्रसार्य नृत्यति । नृत्यतः कक्षान्तरात्फलकः पतति ।)

(राजा अपवार्य विदूषकमङ्गुल्या तर्जयति ।)

विदू०—(अपवार्य ।) भो मा कुप्प । तूण्हीओ चिट्ठ । अहं एव्व एत्थ जाणिस्सम् । [भो मा कुप्य । तूष्णीकस्तिष्ठ । अहमेवात्र ज्ञास्यामि ।]

काञ्चन०—(फलकं गृहीत्वा निरूप्यापवार्य ।) भट्टिणि पेक्ख दाव किमेत्थ चित्तफलए आलिहिदं । [भर्त्रि प्रेक्षस्व तावत्किमत्र चित्रफलक आलिखितम ।]

वासव०—(निरूप्यापवार्य ।) कञ्चणमाले अअं अज्जउत्तो । इअं उण साअरिआ । किं ण्णेदम् । [काञ्चनमाले अयमार्यपुत्रः । इयं पुनः सागरिका । किं न्वेतत् ।]

चिरयसि=विलम्बसे । मुखरागात्—मुखस्य=आननस्य रागात्=लौहित्यात् । कुसुमिता = पुष्पिता ।

तूष्णीकः = मौनीभूय । अत्र चित्रफलके=अस्मिन् आलेख्यपटले । किं न्वेतत्=

राजा—देवि ! पहले यहाँ हमलोगों के द्वारा आ जाने पर भी 'आप देर कर रही हो' इस लिए नहीं देखी । अतः आइये । हम दोनों एक साथ ही देखें ।

वासवदत्ता—(देखकर) आर्यपुत्र ! मुख की लालिमा से ही मैंने जान लिया कि नवमालिका खिल गई है । अतः अब नहीं जा सकूँगी ।

विदूषक—अहा अहा ! अरे हम जीत गये, जीत गये । (इस प्रकार बाहें फैलाकर नाचने लगता है । नाचते हुए उसकी बगल से चित्रफलक गिर जाता है ।)

(राजा आड़ करके विदूषक को अंगुली के संकेत से मना करता है ।)

विदूषक—(एक ओर मुँह करके) अरे ! क्रोध मत करो । चुप रहो । मैं ही यहाँ समझ लूँगा ।

काञ्चनमाला—(चित्र फलक लेकर देख कर और मुख घुमा कर) स्वामिनि ! देखिये तो यहाँ चित्र फलक पर क्या बनाया गया है ?

वासवदत्ता—(देख कर मुँह फेर कर) काञ्चनमाले ! यह आर्यपुत्र हैं । फिर यह

काञ्चन०—भट्टिणि अहं पि एदं एव्व चिन्तेमि। [भर्त्रि अहमप्येतदेव चिन्तयामि।]

वासव०—(सकोपहासम्।) अज्जउत्त केण एदं आलिहिदम्। [आर्यपुत्र, केनेदमालिखितम्।]

राजा—(सवैलक्ष्यस्मितम्। अपवार्य।) वयस्य किं ब्रवीमि।

विदू०—(अपवार्य।) भो मा चिन्तेहि। अहं उत्तरं दाइस्सम्। भोदि मा अण्णथा संभावेहि। अप्पा किल दुक्खेण आलिहीअदित्ति मम वअणं सुणिअ पिअवअस्सेण आलेक्खविण्णाणं दसिदम्। [भो मा चिन्तय। अहमुत्तरं दास्यामि। (प्रकाशं वासवदत्तां प्रति।) भवति मान्यथा संभावय। आत्मा किल दुःखेनालिख्यत इति मम वचनं श्रुत्वा प्रियवयस्येनैतदालेख्यविज्ञानं दर्शितम्।]

राजा—यथाह वसन्तकस्तथैवैतत्।

वासव०—(फलकं निर्दिश्य।) अज्जउत्त एसावि जा अवरा तुह समीवे आलिहिदा ता किं अज्जवसन्तअस्स विण्णाणम्। [आर्यपुत्र एषापि यापरा तव समीप आलिखिता तत्किमार्यवसन्तकस्य विज्ञानम्।]

कथमिदम् समुपस्थितम्। सवैलक्ष्यम्–विलक्ष्यस्य भावो वैलक्ष्यम्=वैलक्ष्यद्योतकम्, तेन सहितम्। अन्यथा सम्भावय=अन्यथासम्भावनं कुरु। आलेख्यविज्ञानम्= चित्रणकौशलम्।

सागरिका है। यह सब क्या है?

काञ्चनमाला—महारानी ! मैं भी यही सब सोच रही हूँ।

वासवदत्ता—(क्रोध एवं हँसी के साथ) आर्यपुत्र ! यह किसने चित्र बनाया है?

राजा—(विलक्षण ढङ्ग से मुस्कराते हुए मुँह घुमा कर) मित्र ! क्या करूँ?

विदूषक—(मुँह घुमा कर) अरे चिन्ता मत करो। मैं उत्तर दे दूँगा। (प्रकट रूप में वासवदत्ता से) महारानी जी और कुछ मत समझिये। अपना चित्र बड़ी कठिनता से बनाया जा सकता है' मेरे यह कहने से मित्र ने (चित्रित कर) अपना चित्र कौशल दिखलाया है।

राजा—जैसा वसन्तक ने कहा वैसा ही है।

वासवदत्ता—(चित्रफलक की ओर सङ्केत करके) आर्यपुत्र ! यह दूसरी भी जो कि आपके पास चित्रित की गई है यह क्या श्रीमान् वसन्तक की कारीगरी है?

राजा–(सविस्मयम्) देवि अलमन्यथा शङ्कया । इयं हि कापि कन्यका स्वचेतसैव परिकल्प्यालिखिता । न तु दृष्टपूर्वा ।

विदूषकः–भोदि सच्चं सच्चम् । सबामि बह्मसुत्तेण जइ ईदिशी कदावि अह्मेहिं दिट्ठपुव्वा । [भवति सत्यं सत्यम् । शपे ब्रह्मसूत्रेण यदीदृशी कदाप्यस्माभिर्दृष्टपूर्वा] ।

काञ्च०--(अपवार्य ।) भट्टिणि घुणक्खरं वि कदावि संभवदि जेव्व । [भर्त्रि घुणाक्षरमपि कदापि संभवत्येव ।]

वास०--(अपवार्य ।) अइ उजुए वसन्तओ क्खु । ण जाणासि तुमं एदस्स वक्कभणिदाइं । अज्जउत्त मम उण एदं चित्तफलअं पेक्खन्तीए सीसवेअणा समुप्पण्णा । ता गमिस्सं अहम् । [अयि ऋजुके वसन्तकः खल्वेषः । न जानासि त्वमेतस्य वक्रभणितानि (प्रकाशम् ।) आर्यपुत्र मम पुनरेतच्चित्रफलकं प्रेक्षमाणायाः शीर्षवेदना समुत्पन्ना । तद्गमिष्याम्यहम् ।] (प्रस्थिता ।)

स्वचेतसैव = स्वमनसा एव । परिकल्प्य = कल्पनां कृत्वा । दृष्टपूर्वा = दृष्टा पूर्वं, या सा = प्रागवलोकिता । ब्रह्मसूत्रेण = यज्ञोपवीतेन । शपे = शपथं करोमि । घुणाक्षरम् = घुण नाम कीटविशेषः, तेन कृतमक्षरम् । ऋजुके = सरले । वक्रभणितानि = कुटिलं कथितानि । प्रेक्ष्यमाणायाः = अवलोकयन्त्याः । शीर्षवेदना = शिरःपीडा । समुत्पन्ना = सञ्जाता ।

राजा—(लज्जापूर्वक मुस्कराते हुए) देवि ! अन्यथा शङ्का मत करो । यह कोई कन्या अपने मन से कल्पना करके ही चित्रित की गई है । इसे इससे पूर्व कभी नहीं देखा है ।

विदूषक—श्रीमती जी सच है, सच है । मैं अपने यज्ञोपवीत की शपथ खाता हूँ कि हमने ऐसा इससे पूर्व कभी नहीं देखा है ।

काञ्चनमाला—(मुँह घुमा कर) महारानी जी ! कभी-कभी घुणाक्षर न्याय भी हो ही जाता है ।

वासवदत्ता—(मुँह फेर कर) अरी भोली ! यह तो वसन्तक है । तुम इनकी टेढ़ी-मेढ़ी बातों को नहीं जानती हो । (प्रकट रूप में) आर्यपुत्र ! इस चित्रफलक को देखते-देखते मेरे शिर में पीड़ा होने लगी है । अतः मैं जाऊँगी । (जाती है)

घुणाक्षरन्याय—यथा छोटा सा घुन अपनी निरन्तर लगने से काठ को काट कर स्वेच्छा से विशेष प्रकार की रेखायें बना देता है और उन रेखाओं को अक्षरों के रूप में मानकर अपना मन चाहा कुछ भी समझ लिया जाता है । संस्कृत साहित्य में यह घुणाक्षर न्याय अत्यन्त प्रसिद्ध है ।

राजा—(पटान्ते गृहीत्वा ।) देवि !—

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते
करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः ।
न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि च ज्ञास्यसि मृषा
किमेतस्मिन् वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ॥ २० ॥

वासवदत्ता—(सविनयं पटान्तमाकर्षन्ती ।) अज्जउत्त मा अण्णधा संभावेहि । सच्च एव्व मं सीसवेअणा बाधेदि । ता गमिस्सम् । [आर्यपुत्र, मान्यथा संभावय । सत्यमेव मां शीर्षवेदना बाधते । तद्गमिष्यामि ।]

अन्वयः—प्रसीद इति ब्रूयाम् इदम् कोपे असति न घटते । पुनः एवम् नो करिष्यामि इति अभ्युपगमः भवेत् । मे दोषः न अस्ति इति (ब्रूयाम्) इदम् अपि मृषा त्वम् ज्ञास्यसि । प्रियतमे एतस्मिन् किम् वक्तुम् क्षमम् इति न वेद्मि ॥ २० ॥

प्रसीदेति । (यदि) प्रसीद = प्रसन्ना भव । इति ब्रूयाम् = इति कथयाम (तर्हि) इदम् = एतत् कोपे = क्रोधे असति = अविद्यमाने । न घटते = न युज्यते । पुनः = भूयः । एवम् = इत्थम् । नो करिष्यामि = नहि विधास्यामि । इति = एतत्कथनम् । अभ्युपगमः = अपराधस्वीकृतिः । भवेत् = स्यात् । मे = मम । दोषः = अपराधः । नास्ति = नैव वर्त्तते इति ब्रूयाम् = इत्थं वेदम् । इदम् अपि = एतदपि । त्वम् मृषा = मिथ्या । ज्ञास्यसि = अवगमिष्यसि । प्रियतमे ! = प्रिये ! एतस्मिन् = अस्मिन् विषये । किं वक्तुम् = कथयितुम् । क्षमम् = योग्यम् इति न वेद्मि = नैव जानामि । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ २० ॥

पटान्तम् = वस्त्राञ्चलम् । बाधते = पीडयति ।

राजा—(साड़ी का छोर पकड़कर) देवि !—

यदि मैं कहूँ कि 'आप प्रसन्न हो जायें' यह कहना क्रोध न होने पर ठीक नहीं लगता है । फिर यदि मैं कहूँ कि पुनः मैं ऐसा नहीं करूँगा यह कह देना अपराध को स्वीकार कर लेना होगा । यदि मैं कहूँ कि मेरा अपराध नहीं यह बात भी तुम झूठ मानोगी । हे प्रियतमे ! इस विषय में क्या कहा जाय, क्या न कहा जाय, यह सब कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥ २० ॥

वासवदत्ता—(नम्रता से साड़ी का छोर खींचती हुई) आर्यपुत्र ! और कुछ न समझिये, सत्य है कि मुझे शिरोवेदना पीडित कर रही है अतः मैं जाऊँगी ।

(उभे निष्क्रान्ते ।)

विदूषकः—(पार्श्वाण्यवलोक्य ।) भो दिट्ठिआ वड्ढसि । क्खेमेण अह्माणं अदिक्कन्ता अआलवादावली । [भो दिष्ट्या वर्धसे । क्षेमेणास्माकमतिक्रान्ता-ऽकालवातावली ।]

राजा—धिङ् मूर्ख कृतं परितोषेण । यान्त्याऽभिजात्यान्निगूढो न लक्षितस्त्वया देव्याः कोपानुबन्धः ।

भ्रूभङ्गे सहसोद्गतेऽपि वदनं नीतं परां नम्रता-
मीषन्मां प्रति भेदकारि हसितं नोक्तं वचो निष्ठुरम् ।
अन्तर्बाष्पजडीकृतं प्रभुतया चक्षुर्न विस्फारितं
कोपश्च प्रकटीकृतो दयितया मुक्तश्च न प्रश्रयः ॥ २१ ॥

क्षेमेण = कल्याणेन । अतिक्रान्ता = व्यतीता । अकालवातावली = असमय-वात्या । कृतं परितोषेण = सन्तोषेणालम् । यान्त्या = व्रजन्त्या । आभिजात्यात् = भद्रभावात् । निगूढः = निलीनः । कोपानुबन्धः = कोपस्य = क्रोधस्य अनुबन्धः = संसर्गः ।

अन्वयः—सहसा भ्रूभङ्गे उद्गते अपि वदनम् पराम् नम्रताम् नीतम् मां प्रति भेदकारि ईषत् हसितम् निष्ठुरम्, वचः न उक्तम्, अन्तर्बाष्पजडीकृतम् चक्षुः प्रभुतया न विस्फारितम् दयितया कोपः च प्रकटीकृतः प्रश्रयः च न मुक्तः ॥२१॥

भ्रूभङ्ग इति । सहसा=हठात् । भ्रूभङ्गे—भ्रुवोः भङ्गे=भ्रुकुटिबन्धे । उद्गते = जाते अपि वदनम् = मुखम् । पराम् = अत्यन्तम् । नम्रताम् = नतिम् । नीतम् =

(दोनों निकल जाती हैं)

विदूषक—(दोनों ओर देख कर) अरे बधाई है । कुशल है कि यह असमय की आँधी टल गई अर्थात् महारानी वासवदत्ता चली गई ।

राजा—मूर्ख ! धिक्कार है । सन्तोष करना व्यर्थ है । उस (महारानी) के जाते हुए शालीनता से क्रोध छिपा हुआ था जिसे तुम नहीं देख पाया ।

महारानी ने सागरिका के चित्र को समीप ही बना हुआ देख और पहिचान कर सहसा भृकुटि तिरछी करते हुए भी मुख अत्यन्त नम्र बना लिया (नीचे को झुका लिया ।) तथा मुझ (उदयन) पर सन्देह होने पर भी केवल थोड़ा सा हँस दिया, कोई कठोर वचन नहीं कहे । अन्दर से अश्रुधार बहने के कारण जड़वत् निश्चल नेत्र होने पर भी समर्थ होने के कारण उन्हें फैलाया नहीं । (इस प्रकार) प्रियतमा ने अपना क्रोध मुझ पर प्रकट तो किया परन्तु अपनी नम्रता का परित्याग नहीं किया ॥ २१ ॥

तदेहि । देवीमेव प्रसादयितुं गच्छावः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति कदलीगृहो नाम द्वितीयोऽङ्कः ।
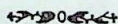
प्रापितम् । मां प्रति = भर्त्तारं वत्सराजम् प्रति । भेदकारि = भेदपूर्णम् । ईषत् = अल्पम् । हसितम् = हास्यकृतम् । निष्ठुरम् = कठोरम् । वचः = वाक्यम् । न उक्तम् = न कथितम् । अन्तर्बाष्पजडीकृतम्—अन्तः = मध्ये यद् बाष्पम् = अश्रुजलम् तेन जडीकृतम् = निश्चलम् । चक्षुः = नेत्रम् । प्रभुतया = समर्थतया । न विस्फारितम् = न विस्तारितम् । दयितया = प्रियया । कोपं = रोषम् च प्रकटीकृतः = स्पष्टीकृतम् । प्रश्रयः = विनयः च न मुक्तः = न त्यक्तः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥२१॥

देवीम् = वासवदत्ताम् । प्रसादयितुम् = प्रसन्नां कर्त्तुम् ।

इति परमेश्वरदीनपाण्डेयप्रणीतायां सुधाटीकायां रत्नावली-
नाटिकायाः कदलीगृहो नाम द्वितीयोऽङ्कः ।

अतः आओ । महारानी को ही प्रसन्न करने के लिये हम दोनों चलते हैं ।

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार कदलीगृह नामक द्वितीय अङ्क की हिन्दी टीका समाप्त ।
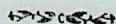
तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति मदनिका ।)

मदनिका—(आकाशे ।) कोसम्बिए कोसम्बिए अवि दिट्ठा तुए भट्टिणो सआसे कञ्चणमाला ण वा । किं भणासि । कोवि कालो ताए आअच्छिअ गदाए त्ति । ता कहिं दाणिं पेक्खिस्सम् । कहं एसा क्खु कञ्चणमाला इदो एव्व आअच्छदि । ता जाव णं उवसप्पामि । [**कौशाम्बिके कौशाम्बिके अपि दृष्टा त्वया भर्तुः सकाशे काञ्चनमाला न वा । (कर्णं दत्त्वा ।) किं भणसि । कोऽपि कालस्तस्या आगत्य गताया इति । तत्कुत्रेदानीं पेक्षिष्ये । (अग्रतोऽवलोक्य ।) कथमेषा खलु काञ्चनमालेत एवागच्छति । तद्यावदेनामुपसर्पामि ।**]

(ततः प्रविशति काञ्चनमाला ।)

काञ्चनमाला—(सोत्प्रासम् ।) साहु रे अमच्चवसन्तअ साहु । अदिसइदो तुए अमच्चजोगन्धराअणो इमाए संधिविग्गहचिन्ताए । [**साधु रे अमात्यवसन्तक साधु । अतिशयितस्त्वयाऽमात्ययौगन्धरायणोऽनया सन्धिविग्रहचिन्तया ।**]

कोऽपि = कियान् अपि । तस्याः = काञ्चनमालायाः । गतायाः=प्रस्थितायाः । प्रेक्षिष्ये = अवलोकयिष्यामि ।

सोत्प्रासम्—उत्प्रासेन = उल्लुण्ठनेन सहितम् तेन ('सोल्लुण्ठनं तु सोत्प्रासम्' इत्यमरः) । अतिशयितः = अतिक्रान्तः । अमात्यः=मन्त्री । सन्धिविग्रहचिन्तया—

(तब मदनिका प्रवेश करती है)

मदनिका—(आकाश की ओर देखती हुई) कौशाम्बिके, कौशाम्बिके ! क्या तूने महाराज के पास काञ्चनमाला को देखा है या नहीं **(कान लगा कर)** क्या कहती है—उसको आकर गये हुए कुछ समय बीत गया है ! तो अब कहाँ देखूँ । **(सामने देखकर)** क्या यह काञ्चनमाला इधर ही आ रही है । तब तो इसी के पास चलूँ ।

(तब काञ्चनमाला प्रवेश करती है ।)

काञ्चनमाला—(उत्साह सहित) शाबास मन्त्री वसन्तक शाबास । इस मेल और कलह की चिन्ता से तुमने मन्त्री यौगन्धरायण को भी जीत लिया ।

आकाशे—मञ्च पर जब किसी पात्र के आये बिना ही किसी घटना की सूचना दी जाती है, तो वह 'आकाश भाषित' कहलाता है । यथा—'किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते । श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम् ॥' (साहित्यदर्पण) ।

सन्धिविग्रह—राजनीतिशास्त्र में वर्णित शत्रु को वश में करने के छः उपायों में से दो

मद०—(उपसृत्य सस्मितम् ।) हला कञ्चणमाले किं अज्जवसन्तएण किदं जेण सो एव्वं सलाहिज्जदि । [हला काञ्चनमाले किमार्यवसन्तकेन कृतं येन स एवं श्लाघ्यते ।]

काञ्चन०—हला मअणिए किं तव एदिणा जाणिदेण । तुमं इमं रहस्सं रक्खिदुं ण पारेसि । [हला मदनिके कि तवैतेन ज्ञातेन । त्वमिदं रहस्यं रक्षितुं न पारयसि ।]

मद०—सवामि देवीए चलणेहिं जदि कस्स वि पुरदो पआसेमि । [शपे देव्याश्चरणाभ्यां यदि कस्यापि पुरतः प्रकाशयामि ।]

काञ्चन०—जइ एवं ता सुणु अज्ज क्खु मए राअउलाओ पडिणिउत्तमानाए चित्तसालिआदुआरे वसन्तअस्स सुसंगदाए समं आलावो सुदो। [यद्येवं तच्छृणु । अद्य खलु मया राजकुलात्प्रतिनिवर्तमानया चित्रशालिकाद्वारे वसन्तकस्य सुसंगतया सममालापः श्रुतः ।]

सन्धिश्च विग्रहश्च सन्धिविग्रहौ तयोश्चिन्तया = मेलकलहविचारेण । सस्मितम् = सहासम् । श्लाघ्यते = प्रशस्यते ।

ज्ञातेन = अभिज्ञानेन । रक्षितुम् = गोपायितुम् । न पारयसि = न शक्नोसि । शपे = शपथं करोमि । पुरतः-समक्षम् । प्रकाशयामि=प्रकटयामि । राजकुलात्=राजभवनात् । प्रतिनिवृत्तमानया = परावर्त्तमानया । चित्रशालिकाद्वारे = चित्रशालायाः द्वारदेशे । समम् = साकम् । आलापः=वार्त्तालापः । श्रुतः=आकर्णितः ।

मदनिका—(आगे बढ़कर मुस्करा कर) सखि, कांचनमाले ! वसन्तक ने आज क्या किया है जो उसकी सराहना इस प्रकार की जा रही है ?

काञ्चनमाला—सखि मदनिके ! तुझे इसको जानने से क्या लाभ ! तू इस रहस्य को छिपा नहीं सकती है ।

मदनिका—मैं महारानी के चरणों की सौगन्ध खाती हूँ किसी के सामने प्रकट नहीं करूँगी।

काञ्चनमाला—यदि ऐसा है तो सुन । आज तो मैंने राजमहल से वापस आती हुई चित्रशाला के द्वार पर वसन्तक को सुसंगता के साथ वार्त्तालाप करते सुना है ।

प्रमुख उपाय सन्धि (प्रबल शत्रु से मेल करना), विग्रह (दुर्बलशत्रु से युद्ध ठानना) ।

मद०—(सकौतुकम् ।) सहि कीदिसो । [सखि कीदृशः ।]

काञ्चन०—जह सुसंगदे ण क्खु साअरिअं वज्जिअ अण्णं किं पिअव-अस्सस्स असच्छदाए कारणं । ता चिन्तेहि एत्थ पडिआरत्ति । [यथा सुसंगते न खलु सागरिकां वर्जयित्वा अन्यत्किमपि प्रियवयस्यस्यास्वस्थतायाः कारणम् । तच्चिन्तयात्र प्रतीकारमिति ।]

मद०—तदो सुसंगदाए किं भणिदम् । [ततः सुसंगतया किं भणितम् ।]

काञ्चन०—एव्वं ताए भणिदम् । अज्ज क्खु देवीए चित्तफलअवुत्तन्त-सङ्किदाए साअरिअं रक्खिदुं मम हत्थे समप्पअन्तीए जं णेवत्थं मे पसादी-किदं तेण ज्जेव विरचिदभट्टिणीवेसं साअरिअ गेण्हिअ अहं पि कञ्चणमाला-वेसधारिणी भविअ पओसे इह आगमिस्सम् । तुमं पि इह एव्व चित्तसालि-आदुआरे मं पडिवालइस्ससि । तदो माहवीलदामण्डवे ताए सह भट्टिणो समागमो भविस्सदित्ति । [एवं तया भणितम् । अद्य खलु देव्या चित्रफलक-वृत्तान्तशङ्कितया सागरिकां रक्षितुं मम हस्ते समर्पयन्त्या यन्नेपथ्यं मे प्रसादीकृतं तेनैव विरचितभट्टिनीवेषां सागरिकां गृहीत्वाऽहमपि काञ्चनमालावेषधारिणी भूत्वा प्रदोष इहागमिष्यामि । त्वमपीहैव चित्रशालिकाद्वारे मां प्रतिपालयिष्यसि । ततो माधवीलतामण्डपे तया सह भर्तुः समागमो भविष्यतीति ।]

सागरिकां वर्जयित्वा = सागरिकातिरिक्तम् । अस्वस्थतायाः = रुग्णतायाः ।

चित्रफलकवृत्तान्तशंकितया–चित्रफलकस्य वृत्तान्तः = घटना तेन शंकिता तया । नेपथ्यम् = वस्त्राभूषणादिकम् । ये प्रसादीकृतम् = मह्यं दत्तम् । विरचित-महिषीवेषाम् = कृतराज्ञीवेषाम् । प्रदोषे = सान्ध्यसमये । प्रतिपालयिष्यसि=प्रतीक्षां करिष्यसि । समागमः = साक्षात्कारः ।

मदनिका—(आश्चर्य से) सखि, कैसा वार्त्तालाप ।

काञ्चनमाला—यही कि सुसङ्गते ! सागरिका को छोड़ कर अन्य कोई भी प्रिय मित्र (महाराज) की अस्वस्थता का कारण नहीं है । अतः उसका प्रतीकार सोचो ।

मदनिका—तब सुसंगता ने क्या कहा ?

काञ्चनमाला—उसने यह कहा—आज महारानी ने चित्रफलक के समाचार से शंकित होकर सागरिका की रक्षा के लिए मेरे हाथ में सौंपते हुए यह वस्त्र, आभूषणादि मुझे दे दिये हैं । उन्हीं से महारानी का वेष बनाये हुए सागरिका को लेकर मैं भी काञ्चनमाला का वेष धारण किये हुए सायंकाल को यहाँ आऊँगी, तुम भी यहीं चित्रशालिका द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करना । तब माधवीलता भवन में उसके साथ महाराज का समागम (मिलन) होगा ।

मद०—(सरोषम् ।) सुसंगदे हदासि क्खु तुमं जा एव्वं परिउणवच्छलं देविं वञ्चेसि । [सुसंगते हतासि खलु त्वं यैवं परिजनवत्सलां देवीं वञ्चयसे ।]

काञ्चन०—हला तुमं दाणिं कहिं पत्थिदा । [हला त्वमिदानीं कुत्र प्रस्थिता ।]

मद०—अहं क्खु अस्सत्थसरीरस्स भट्टिणो कुसलवुत्तन्तं जाणिदु गदा तुमं चिरअसीत्ति उत्तमन्तीए देवीए तुह सआसं पेसिदम्हि । [अहं खल्वस्वस्थशरीरस्य भर्तुः कुशलवृत्तान्तं ज्ञातुं गता त्वं चिरयसीत्युत्ताम्यन्त्या देव्या तव सकाशं प्रेषितास्मि ।]

काञ्चन०—अदिउजुआ दाणिं सा देवी जा एव्वं पत्तीअदि । एसो क्खु भट्टा अस्सत्थदामिसेण अत्तणो मअणावत्थं पच्छादअन्तो दन्ततोरणवलभीए चिट्ठदि । ता एहि । एदं वुत्तन्तं भट्टिणीए णिवेदम्ह । [अतिऋजुकेदानीं सा देवी यैवं प्रत्येति । एष खलु भर्ताऽस्वस्थतामिषेणात्मनो मदनावस्थां प्रच्छादयन् दन्ततोरणवलभ्यां तिष्ठति । तदेहि । एतं वृत्तान्तं भर्त्र्यै निवेदयावः ।]

(इति निष्क्रान्ते ।)

(इति प्रवेशकः ।)

सरोषम् = सकोपम् । हता = मन्दभागिनी । परिजनवत्सलाम्—परिजनेषु = सेवकजनेषु वत्सलाम् = स्निग्धाम् । वञ्चयसे = प्रतारयसि ।

प्रस्थिता = प्रचलिता । अस्वस्थशरीरा = अस्वस्थम् = रुग्णम् शरीरम्=काया यस्य तस्य । कुशलवृत्तान्तम् = क्षेमसमाचारम् । चिरयसि=विलम्बयसि । उत्ताम्यन्त्या = ग्लायन्त्या । तव = काञ्चनलतायाः । सकाशम् = पार्श्वम् ।

अतिऋजुका = अतीवसरला । प्रत्येति = विश्वसिति । अस्वस्थतामिषेण =

मदनिका—(क्रोध के साथ) सुसंगते ! तुम मन्दभागिनी हो, यदि तुम ऐसी परिजन वत्सला महारानी को ठग रही हो ।

काञ्चनमाला—तुम इस समय कहाँ जा रही हो ?

मदनिका—मुझे भी अस्वस्थ शरीर महाराज का वृत्तान्त जानने के लिए गई हुई विलम्ब कर रही हो । यह कह कर चिन्ता से खिन्नमन महारानी ने तुम्हारे पास भेजा है ।

काञ्चनमाला—देवी जी बड़ी भोली भाली हैं जो कि इस प्रकार विश्वास करती हैं । यह महाराज तो अस्वस्थता के बहाने अपनी काम दशा को छिपाते हुए हाथी दाँत से बने बाहरी द्वार की अटारी पर विराजमान हैं । अतः आओ । यह समाचार महारानी को निवेदन करें ।

(इस प्रकार दोनों निकल जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त ।

(ततः प्रविशति मदनावस्थां नाटयन्नुपविष्टो राजा ।)

राजा—(निःश्वस्य ।)

संतापो हृदय स्मरानलकृतः संप्रत्ययं सह्यतां
नास्त्येवोपशमोऽस्य तां प्रति पुनः किं त्वं मुधा ताम्यसि ।
यन्मूढेन मया तदा कथमपि प्राप्तो गृहीत्वा चिरं
विन्यस्तस्त्वयि सान्द्रचन्दनरसस्पर्शो न तस्याः करः ॥ १ ॥

अस्वस्थतायाः = रुग्णतायाः मिषेण = व्याजेन । मदनावस्थाम् = कामदशाम् । दन्ततोरणवलभ्याम्—दन्ततोरणस्य हस्तिदन्तनिर्मितबहिर्द्वारस्य ('तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः) वलभ्याम् = सौधोर्ध्ववेश्मनि । भर्त्र्यै = स्वामिन्यै ।

अन्वयः—हृदय ! यत् मूढेन मया तदा कथम् अपि प्राप्तः सान्द्रचन्दन-रसस्पर्शः तस्याः करः गृहीत्वा त्वयि चिरम् न विन्यस्तः, सम्प्रति स्मरानल-कृतः अयम् सन्तापः सह्यताम् । अस्य उपशमः नास्ति एवम् ताम् प्रति त्वम् मुधा किं ताम्यसि ॥ १ ॥

सन्ताप इति । हृदय=रे चेतः । यत्=यतः । मूढेन=मूर्खेण । मया=उदयनेन । तदा = तदानीम् । कथम् अपि=कथञ्चित् । प्राप्तः=लब्धः । सान्द्रचन्दनरसस्पर्शः= सान्द्रस्य = घनस्य चन्दनरसस्य = मलयजद्रवस्य स्पर्शः = सम्पर्कः इव स्पर्शो यस्य सः । तस्याः = सागरिकायाः । करः = बाहुः । गृहीत्वा = आदाय । त्वयि = कामसन्तप्तहृदये । चिरम् = बहुकालम् । न विन्यस्तः = न स्थापितः (सन्) सम्प्रति = साम्प्रतम् । स्मरानलकृतः = कामाग्निकृतः । अयम् = एषः । सन्तापः= दाहः । सह्यताम् = अनुभूयताम् । अस्य=कामसन्तापस्यैतस्य । उपशमः=शमनम् ।

(कामावस्था में राजा का प्रवेश)

राजा—(निःश्वास लेकर) रे हृदय ! चूँकि मुझ मूर्ख (उदयन) से उस समय (कदली गृह में उस सागरिका के मिलन काल में) किसी प्रकार प्राप्त घने चन्दन रस के समान सुखकर शीतल कर का स्पर्श उस सागरिका का हाथ पकड़ कर तुझ काम सन्ताप से व्याकुल (हृदय) में बहुत समय तक न रह सका अब कामानल से उत्पन्न यह सन्ताप सहन कर । उस (काम सन्ताप) का उपशमन तो नहीं ही है । अतः उस (सागरिका) के प्रति तू व्यर्थ बेचैन क्यों हो रहा है ॥ १ ॥

प्रवेशक—नीच पात्रों द्वारा अभिनीत दो अंकों के मध्य की घटना को पूर्व सूचित करना प्रवेशक कहलाता है । तथथा—'तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः । प्रवेशोऽङ्क-द्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ॥' इति ॥

अहो महदाश्चर्यम् ।

मनश्चलं प्रकृत्यैव दुलक्ष्यं च तथापि मे।
कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ॥ २ ॥

(ऊर्ध्वमवलोक्य ।) भोः कुसुमधन्वन् !

बाणाः पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्यो जनः
प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्य इति यल्लोके प्रसिद्धि गतम् ।
दृष्टं तत्त्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं
विद्धः कामिजनः शरैरशरणो नीतस्त्वया पञ्चताम् ॥ ३ ॥

नास्ति = न विद्यते । एवम् ताम् प्रति = सागरिकां प्रति । त्वम् = मम हृदयम् । मुधा=वृथा । किम्=कस्मात् । ताम्यसि = ग्लायसि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१॥

अन्वयः— मनः प्रकृत्या एव चलम् दुर्लभम् तथापि मे एतत् कामेन च सर्वैः शिलीमुखैः समम् कथम् विद्धम् ॥ २ ॥

मन इति । मनः = चित्तम् । प्रकृत्या = स्वभावेन एव चलम् = चपलम् । दुर्लक्ष्यम् = दुर्भेद्यम् च । (अस्ति) तथापि = मनसः चलत्वे सूक्ष्मत्वे सत्यपि मे= मम । एतत् = मनः । कामेन = मदनेन । सर्वैः=निखिलैः । शिलीमुखैः = बाणैः । समम् = युगपद् । कथम्=केन प्रकारेण । विद्धम्=प्रततम् । अत्र विभावनालंकारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २ ॥

अन्वयः—मनोभवस्य पञ्च बाणाः नियताः तेषाम् प्रायः अस्मद्विधः असंख्यजनः, विद्धः लक्ष्यते इति यत् लोके प्रसिद्धिम् गतम् तत् त्वयि अधुना विप्रतीपम् दृष्टम् यस्मात् असंख्यैः शरैः विद्धः अयम् अशरणः कामिजनः त्वया पञ्चताम् नीतः ॥३॥

बाणा इति । मनोभवस्य—मनसा=चित्तेन भवः = जातस्तस्य = कामदेवस्य ।

अरे महान् आश्चर्य है । मन प्रकृति से ही चञ्चल और दुर्भेद्य है फिर भी मेरा यह मन कामदेव ने अपने सभी बाणों से एक साथ वेध दिया है ॥ २ ॥

राजा—(ऊपर देखकर) अरे कुसुमधन्वन् !

कामदेव के पाँच बाण ही निश्चित किये गये हैं । उन बाणों के हमारे जैसे प्रायः असंख्य लोग लक्ष्य बनाये जाते हैं ऐसा संसार में प्रसिद्ध हो गया है । यह बात मैंने तुझमें विपरीत देखी, जो कि अब असंख्य बाणों से बिंधा हुआ शरणहीन यह कामातुर मैं (उदयन) मृत्यु को पहुँचाया जा रहा हूँ ॥ ३ ॥

पंचशर=कामदेव । 'उन्मादनस्तापनश्च स्तम्भनः शोषणस्तथा । सम्मोहनश्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥' इति ।

(विचिन्त्य ।) न तथाऽहमेवंविधावस्थमात्मानमनुचिन्तयामि यथाऽन्त· र्निगूढकोपसंरम्भाया देव्या लोचनगोचरगतां तपस्विनीं सागरिकाम् । तथा हि—

ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं
द्वयोर्दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ॥ ४ ॥

पञ्चबाणाः = उन्मादादयः पञ्चशराः । नियताः = निश्चिताः सन्ति । तेषाम् पञ्चबाणानाम् । प्रायः अस्मद्विधः = मादृशः एव असंख्यजनः = अगणितलोकः । विद्धः = लक्ष्यभूतः । लक्ष्यते = दृश्यते । इति=इत्यम् । यत् लोके=संसारे । प्रसिद्धि गतः = ख्यातिं यातः । तत् त्वयि = कामदेवे । अधुना = साम्प्रतम् । विप्रतीपम्= विपरीतम् । दृष्टम् = अवलोकितम् । यस्मात् = यतः । असंख्यैः शरैः = अगणितबाणैः (विद्धः) अयम् = अहम् । अशरणः—नास्ति शरणं यस्य सः = रक्षकरहितः । कामिजनः = कामातुरः । पञ्चतां नीतः = मृत्युं प्रापित, मरणासन्न इव जात इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

अनुचिन्तयामि=शोचामि । अन्तर्गूढकोपसंरम्भायाः–अन्तः=हृदये गूढः=संवृत्तः कोपसंरम्भः=क्रोधावेशः यस्याः सा तस्याः । देव्याः=वसन्तसेनायाः । लोचनगोचरगताम् = लोचनयोः=नयनयोः गोचरगताम्=विषयभूताम् । तपस्विनीम्=वराकीम् ।

अन्वयः—विदिता अस्मि इति ह्रिया असौ सर्वस्य वदनं हरति, द्वयोः आलापम् दृष्ट्वा आत्मविषयाम् कथाम् आकलयति । सखीषु स्मेरासु अधिकम् वैलक्ष्यम् प्रकटयति । प्रिया प्रायेण हृदयनिहितातङ्कविधुरा आस्ते ॥ ४ ॥

ह्रियेति । विदिता=ज्ञाता (प्रणयविषये) अस्मि=वर्त्ते इति ह्रिया=लज्जया । असौ = सा (सागरिका) । सर्वस्य = निखिलस्य । वदनम् = मुखम् । हरति = अन्यतः परावर्त्तयति । द्वयोः = उभयोः । आलापम् = वार्त्ताम् । दृष्ट्वा = अव-

---

(सोचकर) मैं केवल इस दशा में पहुँचे हुए अपने ही उतना नहीं सोच रहा हूँ जितना कि क्रोध के आवेश को अन्दर ही छिपा रखने वाली महारानी के दृष्टिगोचर हुई उस बेचारी सागरिका को । जैसा कि—

'मेरी प्रीति दूसरों ने जान ली है, यह समझ कर वह सबसे अपना मुँह छिपाये रहती है । (किन्हीं) दो व्यक्तियों को बातचीत करते देखकर वह अपने विषय की बात ही मान बैठती है । सखियों में हँसी-मजाक में वह लज्जा प्रकट करती है प्रिया प्रायः हृदय में आतङ्क से व्याकुल रहती है ॥ ४ ॥

तद्वार्तान्वेषणाय गतः कथं चिरयति वसन्तकः ।

(ततः प्रविशति हृष्टो वसन्तकः ।)

विदूषकः—(सपरितोषम् ।) ही ही भोः । कोसम्वीरज्जलाहेणावि ण तादिसो पिअवअस्सस्स परितोसो आसि जादिसो अज्ज मम सआसादो पिअवअणं सुणिअ अणं सुणिअ भविस्सदित्ति तक्केमि। ता जाव गदुअ पिअवअस्सस्स णिवेदइस्सम् । कधं एसो पिअवअस्सो इमं ज्जेव दिसं अवलोअन्तो चिट्ठदि । तह तक्केमि मं एव्व पडिवालेदित्ति । ता उवसप्पामि णम् । जअदु जअदु पिअवअस्सो । भो वअस्स दिट्ठिआ अड्ढसि समोहिदव्भधिकाए कज्जसिद्धीए । [ही ही भोः । कौशाम्बीराज्यलाभेनापि न तादृशः प्रियवयस्यस्य परितोष आसीद्यादृशोऽद्य मम सकाशात्प्रियवचनं श्रुत्वा भविष्यतीति तर्कयामि । तद्यावद् गत्वा प्रियवयस्यस्य निवेदयिष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य च ।) कथमेष प्रियवयस्य इमामेव दिशमवलोकयंस्तिष्ठति । तथा तर्कयामि मामेव प्रतिपालयतीति । तदुपसर्पाम्येनम् । (उपसृत्य ।) जयतु जयतु प्रियवयस्यः । भो वयस्य दिष्ट्या वर्धसे समोहिताभ्यधिकया कार्यसिद्ध्या ।]

लोक्य । आत्मविषयाम् = स्वसंबन्धिनीम् कथाम् = वार्त्ताम् । कलयति = मन्यते । सखीषु = वयस्यासु । स्मेरासु = हासवतीषु । (सतीषु) अधिकम् = अत्यन्तम् । वैलक्ष्यम् = लज्जाम् । प्रकटयति = प्रकाशयति । प्रिया=प्रेयसी । प्रायेण=प्रायः । हृदयनिहिताङ्कविधुरा—हृदये=चेतसि निहितः = स्थितः यः आतङ्कः=भीतिः=तेन विधुरा = विकला ('विधुरं तु प्रविश्लेषे विकले विधुरः पुनः' इति हेमचन्द्रः ।) आस्ते = वर्त्तते । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ ४ ॥

वार्त्तान्वेषणाय = वार्त्तायाः = समाचारस्य अन्वेषणाय = अन्वेषणं कर्त्तुम् । गतः = यातः । चिरयति = विलम्बयति ।

सपरितोषम् = सन्तोषेण सह । कौशाम्बीराज्यलाभेन—कौशाम्ब्यः=तन्नाम्नः

तो फिर समाचार लाने के लिए गया वसन्तक देर क्यों कर रहा है ।

(वसन्तक का प्रवेश)

विदूषक—(सन्तोष के साथ) अहा अहा, अरे ! कौशाम्बी का राज्य पाने पर भी प्रिय मित्र को जैसा सन्तोष नहीं था वैसा आज मेरे द्वारा प्रिय वचन सुनकर होगा ऐसा मैं समझता हूँ । तो जब तक जाकर प्रिय मित्र को बतलाऊँगा । (घूमकर देखते हुए) क्या यह प्रिय मित्र इसी ओर को देखते हुए बैठे हैं । तो मैं समझता हूँ कि मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं । तब तो इनके पास चलें (आगे जाकर) प्रिय मित्र, जय हो जय हो । हे मित्र ! चाहने से भी अधिक सफलता के लिए आपको बधाई है ।

राजा—(सहर्षम्) वयस्य अपि कुशलं प्रियायाः ।

विदूषकः—(सगर्वम् ।) भो अचिरेण सअंज्जेव पेक्खिअ जाणिस्ससि । [भो अचिरेण स्वयमेव प्रेक्ष्य ज्ञास्यसि ।]

राजा—(सपरितोषम् ।) वयस्य दर्शनमपि भविष्यति प्रियायाः ।

विदूषकः—(साहंकारम् ।) भो कीस णभविस्सदि जस्स दे उवहसिदविहप्पइबुद्धिविहवो अहं अमच्चो । [भोः कस्मान्न भविष्यति यस्य ते उपहसितबृहस्पतिबुद्धिविभवोऽहममात्यः ।]

राजा—(विहस्य ।) न खलु चित्रम् । किं न संभाव्यते त्वयि । तत्कथय । विस्तरतः श्रोतुमिच्छामि ।

विदूषकः—(कर्णे) एव्वमेवम् । [एवमेवम्]

राजा—(सपरितोषम्) साधु वयस्य साधु । इदं ते पारितोषिकम् । [इति हस्तादवतार्य कटकं ददाति ।]

राज्यस्य = प्रभुत्वस्य लाभेन = प्राप्त्या । परितोषः = सन्तोषः । तर्कयामि = अनुमिनोमि । प्रतिपालयति = प्रतीक्षां करोति । समीहिताभ्यधिकया—समीहितम् = चिन्तितम् (सागरिकाकुशलवृत्तम् इति) तस्माद् अधिकया = ततोऽपि वृद्धया । सिद्धया = सफलतया । अचिरेण = शीघ्रतया । प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा । ज्ञास्यसि = अवगमिष्यसि । दर्शनम् = साक्षात्कारः ।

उपहसितबृहस्पतिबुद्धिविभवः—उपहसितः = तुच्छीकृतः बृहस्पतेः = सुरगुरोः बुद्धेः = प्रज्ञायाः विभवः = समृद्धिः येन सः । अमात्यः = मन्त्री । सपरितोषम् = ससन्तोषम् । अवतार्य = निष्कास्य । कटकम् = वलयम् ।

राजा—(प्रसन्नता से) मित्र ! प्रिया की कुशल तो है ?

विदूषक—(अभिमान के साथ) हे मित्र, शीघ्र ही देखकर स्वयं तुम भी जान लोगे ।

राजा—(सन्तोष के साथ) मित्र ! क्या प्रिया का दर्शन भी हो सकेगा ?

विदूषक—(अहंकार के सहित) अरे—क्यों नहीं होगा जिसका देवगुरु बृहस्पति सा बुद्धिवैभव वाला मैं (विदूषक) मन्त्री हूँ ।

राजा—(हँस कर) यह तो विचित्र नहीं है । तुम्हें क्या सम्भव नहीं है । तो कहो विस्तार से सुनने की इच्छा है ।

विदूषक—(कान में) ऐसा ही है ।

राजा—(सन्तोष की साँस लेकर) शाबास मित्र शाबास ! यह तुम्हारा पुरस्कार है । (हाथ से खड़आ उतार कर देता है ।)

विदूषकः—(कटकं परिधाय आत्मानं निर्वर्ण्य ।) भो इमं ताव सुद्धसुवण्णकडअमण्डिअहत्थं अत्तणो बम्मणीए गदुअ दंसइस्सम् । [भो इमं तावच्छुद्धसुवर्णकटकमण्डितहस्तमात्मनो ब्राह्मण्यै गत्वा दर्शयिष्यामि ।]

राजा—(हस्ते गृहीत्वा निवारयन् ।) सखे पश्चाद् दर्शयिष्यसि । ज्ञायतां तावत्किमवशिष्टमह्न इति ।

विदूषकः—(विलोक्य ।) भो पेक्ख पेक्ख । एसो क्खु गुरुआणुराओक्खित्तहिअओ सञ्झावहूदिण्णसंकेदो विअ अत्थगिरिसिहरकाणणं अणुसरदि भअवं सहस्सरस्सी । [भो प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व । एष खलु गुर्वनुरागोत्क्षिप्तहृदयः संध्यावधू दत्तसंकेत इवास्तगिरिशिखरकाननमनुसरति भगवान्सहस्ररश्मिः ।]

राजा—(विलोक्य सहर्षम् ।) सखे सम्यगुपलक्षितम् । पर्यवसितमहः । तथा हि—

शुद्धसुवर्णकटकमण्डितहस्तम्—शुद्धम् = मिश्रणरहितम् यत् सुवर्णम् = स्वर्णं तेन रचितः कटकः = वलयः तेन मण्डितम् = विभूषितः यो हस्तः = करः, तम् । आत्मनः = स्वस्य । ब्राह्मण्यै = पत्न्यै । अवशिष्टम् = शेषम् । अह्नः = दिवसः ।

गुर्वनुरागोत्क्षिप्तहृदयः—गुरुः = महान् अनुरागः = स्नेहः, तेन उत्क्षिप्तम् = विह्वलीकृतम् हृदयम् = मनः यस्य सः । संध्यावधूदत्तसंकेतः—संध्यैव वधूः = सान्ध्यवेला नायिका, तया दत्तः = कृतः सङ्केतः = मिलनसंकेतः यस्य सः । अस्तगिरिशिखरकाननम्—अस्तगिरेः = अस्ताचलस्य शिखरे = शृङ्गे यत् काननम् = वनम् तद् । अनुसरति = उद्दिश्य गच्छति । सहस्ररश्मिः = सूर्यः । पर्यवसितम् = समाप्तम् ।

विदूषक—(खड़ुआ पहन कर अपने को देख कर) अरे ! यह शुद्ध सुवर्ण वलय से शोभित हाथ अपनी ब्राह्मणी को जाकर दिखलाऊँगा ।

राजा—(हाथ में लेकर मना करता हुआ) सखे ! बाद में दिखलाना । तब तक यह ज्ञात करो कि कितना दिन शेष रहा है ?

विदूषक—(देखकर) अरे देखो देखो । यह महान् अनुराग पूर्ण विक्षिप्त हृदय वाले भगवान् सहस्ररश्मि (सूर्य) मानों सन्ध्यारूपी वधू के आगमन का सन्देश देते हुए अस्ताचल शिखर के वन में विहार करने जा रहे हैं ।

राजा—(देखकर सहर्ष) मित्र ! ठीक कहा है । दिन समाप्त हो गया है । क्योंकि—

अध्वानं नैकचक्रः प्रभवति भुवनभ्रान्तिदीर्घं विलङ्घ्य
प्रातः प्राप्तुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्तातिभारः ।
संध्यामृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पष्टहेमारपङ्क्तिः
व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतीवैष दिक्चक्रमर्कः ॥ ५ ॥

अन्वयः—एकचक्रः मे रथः भुवनभ्रान्तिदीर्घम् अध्वानम् विलंघ्य पुनः प्रातः प्राप्तुम् न प्रभवति, इति मनसि न्यस्तचिन्तातिभारः एषः अर्कः अस्तक्षितिभृति अवस्थितः (सन्) सन्ध्यामृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पष्टहेमारपंक्तिः दिक्चक्रम् व्याकृष्य नयति इव ॥ ५ ॥

अध्वानमिति । एकचक्रः—एकं चक्रं यस्य सः = द्वितीयचक्ररहितः । मे = मम । रथः = स्यन्दनम् । भुवनभ्रान्तिदीर्घम्–भुवनस्य = लोकस्य भ्रान्तिः = परिक्रमणम् तथा दीर्घम् = विशालम् तत् । अध्वानम् = मार्गम् । विलंघ्य = अतिक्रम्य । पुनः = भूयः । प्रातः = प्रभाते । प्राप्तुम् = उदयाचलमासादितुम् । न प्रभवति = न शक्नोति । इति = इत्थम् । मनसि = चेतसि । न्यस्तचिन्तातिभारः– न्यस्तः = स्थापितः चिन्तायाः = व्यग्रतायाः अतिभारः येन तादृशः । एषः = अयम् । अर्कः = सूर्यः । अस्तक्षितिभृति = अस्ताचले अवस्थितः = विद्यमानः (सन्) सन्ध्यामृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पष्टहेमारपंक्तिः = सन्ध्यया = सायंकालेन आमृष्टाः विलुप्ताः तेभ्यः अवशिष्टा = उर्वरिताः ये स्वस्य कराः–किरणाः ('बलि-हस्तांशवः कराः' इत्यमरः) तेषां परिकरः = समूहः स एव स्पष्टा = स्फुटं भासमाना हेम्नः = सुवर्णस्य अराणाम् = चक्रनाभिशलाकानाम् पंक्तिः = श्रेणी यस्य तत् तादृशम् । दिक्चक्रम् = दिङ्मण्डलम् । व्याकृष्य—विशेषेण आकृष्य नयति इव = योजयति इव । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ ५ ॥

एक पहिए वाला मेरा रथ त्रिभुवन भ्रमण के विशाल मार्ग को लाँघकर पुनः प्रातःकाल (उदयाचल प्राप्त करने में) समर्थ न हो सकेगा यह मनमें चिन्ता का बोझ रखे हुये यह सूर्य भगवान् अस्ताचल पर स्थित होते हुए सन्ध्या के द्वारा नष्ट किये जाने से बची हुई किरणों के समूह से चमकती सूर्य किरणों के कारण सुनहली अरा पंक्ति वाले दिङ्मण्डल (चक्र) को मानो लिये जा रहे हैं ॥ ५ ॥

एकचक्रः—भुवनभास्कर भगवान् सूर्य का एकचक्रत्व सर्वविदित है । वाचस्पत्य ऋचा भी यही प्रतिपादित करती है, यथा—'सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम् ।'

अरपंक्तिः—पहिये में तिरछी लगी हुई पतली लकड़ियाँ ।

अपि च—

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥ ६ ॥

तदुत्तिष्ठ। माधवीलतामण्डपं गत्वा प्रियतमासंकेतावसरं प्रतिपालयावः।

अन्वयः—पद्मनयने ! यातः अस्मि एष मम समयः सुप्ता भवती मया एव प्रतिबोधनीया अस्तमस्तकनिविष्टकरः अयम् सूर्यः सरोरुहिण्याः इति प्रत्यायनाम् इव करोति ॥ ६ ॥

यातोऽस्मि इति । पद्मनयने–पद्म इव नयने यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ=कमलनेत्रे ! यातः = प्रस्थितः । अस्मि = भवामि । एषः = अयम् । मम = मे । समयः=कालः गमनस्येति । सुप्ता = निद्रिता । इव प्रतीयमाना भवती = कमलिनी । मया=सूर्येण एव प्रबोधनीया = विकासं प्रापणीया इति । अस्तमस्तकनिविष्टकरः–अस्तमस्तके = अस्ताचलशिखरे । निविष्टाः = स्थिताः कराः = किरणाः यस्य तादृशः । अयम् = एषः । सूर्यः = रविः । सरोरुहिण्याः = कमलिन्याः, इति = इत्थम् । प्रत्यायनाम्= सान्त्वनाम् इव करोति=विदधाति । समासोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥६॥

तत् = तस्मात् । माधवीलतामण्डपम् = माधवीलतायाः = वासन्त्याः मण्डपम् = लतावितानम् तत् । प्रियतमासंकेतावसरम् = प्रियतमायाः = प्रियायाः (साग-

---

और भी—

हे कमलनयनी ! मैं तो चल दिया । मेरे जाने (अस्त होने) का यही समय है। (क्योंकि) सोती हुई (मुकुलित) तुम्हें भी मुझे ही जगाना (खिलाना) है । इस प्रकार अस्ताचल पर समेटी हुई किरणों वाला यह सूर्य कमलिनी (अथवा—गमनोन्मुख नायिका शोकावनत) को सान्त्वना सी दे रहा है ॥ ६ ॥

अतः उठो वासन्ती लतामण्डप को जाकर प्रियतमा के आने के समय की प्रतीक्षा करें।

यहाँ अस्त होते हुए सूर्य के द्वारा कमलिनी (प्रिया) को सान्त्वना देने का वर्णन किया गया है । इससे नायक द्वारा नायिका को भी सान्त्वना देने का संकेत मिलता है अतः यहाँ पताकास्थानक है । यथाहि—'यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिन् तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते । आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ॥'

विदूषकः—भो सोहणं भणिदं । [भोः शोभनं भणितम्] (इत्युत्तिष्ठति ।)

विदूषकः—(विलोक्य ।) भो वअस्स पेक्ख पेक्ख । एसो क्खु बहलीकिदविरलवणराइसंनिवेसो गहीदघणपङ्कपीवरवणवराहमहिसकिसिणच्छवी पसरदि पुव्वदिसं पच्छादअन्तो तिमिरसंघाओ । [भो वयस्य प्रेक्षस्व । एष खलु बहलीकृतविरलवनराजिसंनिवेशो गृहीतघनपंकपीवरवनवराहमहिषकृष्णच्छविः प्रसरति पूर्वदिशं प्रच्छादयंस्तिमिरसंघातः ।]

राजा—(समन्ताद्विलोक्य) सखे साधु दृष्टम् । तथा हि—

पुरः पूर्वामेव स्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं
क्रमात्क्रामन्नद्रिद्रुमपुरविभागांस्तिरयति ।

रिकायाः) संकेतस्य = समागमकालनिर्देशस्य अवसरम् = आगमनम् । प्रतिपालयावः = प्रतीक्षावहे । बहलीकृतविरलवनराजिसन्निवेषः = बहलीकृतः = निविडीकृतः विरलः = अनिविडः वनराजीनाम् = वनवृक्षपंक्तीनाम् सन्निवेषः = संस्थानम् येन तादृशः । गृहीतघनपङ्कपीवरवनवराहमहिषकृष्णच्छविः—गृहीतः = वपुषि लिप्तः घनः = गाढः पङ्कः = कर्दमः यैस्ते गृहीतघनपङ्काः पीवराः = स्थूलाः वनस्य = काननस्य वराहा = सूकराः महिषाः = लुलायाश्च तेषां कृष्णा छविः = कान्तिः इव कृष्णा = श्यामा छविर्यस्य सः । तिमिरसंघातः = तिमिराणाम् = अन्धकाराणाम् संघातः = समवायः ।

अन्वयः—हरकण्ठद्युतिहरः अयम् तमः संघातः पुरः पूर्वाम् एव दिशम् स्थगयति ततः अन्याम् अपि क्रमात् क्रामन् अद्रिद्रुमपुरविभागान् तिरयति तदनुपीनत्वम् उपेतः भुवनस्य ईक्षणफलम् हरति ॥ ७ ॥

पुरः पूर्वामिति । हरकण्ठद्युतिहरः—हरस्य = शिवस्य यः कण्ठः = गलदेशः तस्य या द्युतिः = कान्तिः (नीलिमा) ताम् हरतीति । अयम् = एषः । तमः

विदूषक—अरे आपने अच्छा कहा । (दोनों उठते हैं)

विदूषक—(देखकर) हे मित्र, देखो देखो । विरलवनपंक्ति समूह को घना बनाता हुआ गहरी कीचड़ से युक्त मोटे जंगली शूकर तथा भैंसों के समान काली छवि वाला तमस्तोम (घना अन्धकार) पूर्व दिशा को ढँकता हुआ आ रहा है ।

राजा—(चारों ओर देखकर) मित्र तुमने ठीक देखा ।

क्योंकि—शिवजी के कण्ठ की कान्ति (नीलिमा) को तिरस्कृत करने वाला यह घना अन्धकार सर्वप्रथम पूर्वदिशा को ही व्याप्त करता है । तदनन्तर अन्य (पश्चिमादि)

उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणफलं
　　तमःसंघातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः ॥ ७ ॥

तदादेशय मार्गम् ।

विदूषकः—एदु एदु पिअवअस्सो । [एत्वेतु प्रियवयस्यः ।]

(परिक्रामतः ।)

विदूषकः—(निरूप्य ।) भो वअस्स एदं क्खु समासण्णं संसत्तवहलपत्तपादवलदाहि पिण्डोकिदान्धआरं विअ मअरन्दुज्जाणम् । ता कहं एत्थ मग्गो लक्खीअदि । [भो वयस्य एतत्खलु समासन्नं संसक्तवहलपत्रपादपलताभिः पिण्डीकृतान्धकारमिव मकरन्दोद्यानम् । तत्कथमत्र मार्गो लक्ष्यते ।]

संघातः = तमस्तोमः पुरः = पूर्वम् । पूर्वाम् = प्राचीम् एव दिशम् = ककुमम् । स्थगयति = व्याप्नोति । ततः = तदनन्तरम् । अन्याम् अपि = इतराम् अपि दिशमिति । क्रमात्=क्रमशः । क्रामन्=प्रसरन् । अद्रिद्रुमपुरविभागान् । अद्रीणाम्=पर्वतानाम् द्रुमाणाम् = वृक्षाणाम् पुराणाम् = ग्रामाणाञ्च विभागान् = पृथक्त्वेनावभासमानाम् । तिरयति = आच्छादयति । तदनु=तदनन्तरम् । पीनत्वम्=घनत्वम् । उपेतः = प्राप्तः सन् भुवनस्य = संसारस्य । ईक्षणफलम् = नेत्रसाफल्यम् । हरति=नाशयति । अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ ७ ॥

आदेशय = बोधय । समासन्नम् = समीपमागतम् । संसक्तवहलपत्रपादपलताभिः–संसक्ताः = अविरलाः वहलपत्राः=निविडपत्राः ये पादपाः = वृक्षाः लताः = वल्लयः च ताभिः । पिण्डीकृतान्धकारम्–पिण्डीकृतः = सञ्चितः अन्धकारः = तमः यस्मिन्, तत् । लक्ष्यते = अवलोक्यते ।

दिशाओं को क्रमशः लाँघता (फैलाता) हुआ पहाड़ों-वृक्षों तथा नगरों का पृथक्-पृथक् विभाजन आच्छादित कर लेता है । तत्पश्चात् सघन होता हुआ भुवन को देखने का फल नष्ट कर देता है (अर्थात् कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता है ।) ॥ ७ ॥

अतः मार्ग बतलाओ ।

विदूषक—प्रियमित्र आइये, आइये । (दोनों चलने लगते हैं ।)

विदूषक—(देखकर) हे मित्र ! यह परस्पर सटे हुए घने पत्तों वाले वृक्ष तथा लताओं से अन्धकार को एकत्र सा करता हुआ मकरन्दोद्यान तो निकट ही है । तो इसमें मार्ग कैसे दिखलाई पड़ेगा ।

राजा—(गन्धमाघ्राय।) वयस्य गच्छाग्रतः। ननु सुपरिज्ञात एवात्र मार्गः तथा हि—

पालीयं चम्पकानां नियतमयमसौ सुन्दरः सिन्दुवारः
सान्द्रा वीथी तथेयं बकुलविटपिनां पाटलापङ्क्तिरेषा।
आघ्रायाघ्राय गन्धं विविधमधिगतैः पादपैरेवमस्मिन्
व्यक्तिं पन्थाः प्रयाति द्विगुणतरतमोनिह्नुतोऽप्येष चिह्नैः ॥ ८ ॥

(इति परिक्रामतः।)

सुपरिज्ञातः = सुपरिचितः।

अन्वयः—नियतम् इयम् चम्पकानाम् पाली, असौ सुन्दरः सिन्दुवारः तथा इयम् बकुलविटपिनाम् सान्द्रा वीथी एषा पाटला पंक्तिः। एवम् अस्मिन् द्विगुणतरतमोनिह्नुतः अपि एषः पन्थाः विविधम् गन्धम् आघ्राय आघ्राय अधिगतैः पादपैः चिह्नैः व्यक्तिं प्रयाति ॥ ८ ॥

पालीति। नियतम् = अवश्यम्। इयम् = निकटवर्त्तिनी। चम्पकानाम् = हेमवृक्षाणाम् ('चाम्पेयश्चम्पको हेमपुष्पकः' इत्यमरः) पाली=पंक्तिः ('पाली पंक्त्यावङ्कप्रभेदयोः' इति मेदिनी) अयम् = एषः असौ सः = सुन्दरः = शोभनः। सिन्दुवारः= निर्गुण्डीवृक्षः। तथा च इयम् = एषा। वकुलविटपिनाम् = केसरवृक्षाणाम् ('अथ केशो वकुलः' इत्यमरः) सान्द्रा = घनीभूता। वीथी = श्रेणी ('वीथ्यालिरावलिः पंक्तिः' इत्यमरः) एषा = इयम्। पाटलापंक्तिः = पाटलिश्रेणी। एवम् = इत्थम्। अस्मिन्=एतस्मिन्। द्विगुणतरतमोनिह्नुतः—द्विगुणतरैः = बहुलीभूतैः। तमोभिः = अन्धकारैः। निह्नुतः = प्रच्छन्नः अपि एषः = अयम्। पन्थाः = मार्गः। विविधम् = नानाप्रकारम्। गन्धम् = आमोदम्। आघ्राय = घ्राणविषयं कृत्वा। अधिगतैः = उपलब्धैः पादपैः = वृक्षैः। चिह्नैः = लक्ष्मभिः ('चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः) व्यक्तिम् = स्पष्टताम्। प्रयाति = गच्छति। अत्रानुमानालङ्कारः। स्रग्धरावृत्तम् ॥ ८ ॥

राजा—(गन्ध महक कर) मित्र, आगे चलो। यहाँ का मार्ग तो सुपरिचित ही है। क्योंकि—यह चम्पा की क्यारी है, यह वही सुन्दर सिन्दुवार का पेड़ है तथा यह मौलिसिरी वृक्षों की घनी झाड़ियाँ हैं, यह पाटलों की पंक्ति है। इस प्रकार इसमें अतीव अन्धकार से छिपा हुआ यह मार्ग अनेक प्रकार की सुगन्ध सूँघ-सूँघकर प्राप्तवृक्षरूपी चिह्नों से स्पष्ट हो रहा है ॥ ८ ॥

(इस प्रकार दोनों घूमने लगते हैं)

विदूषकः—भो एदं क्खु णिवडन्तमत्तमहुअरं कुसुमामोदवासिददसदिसं मसिणमरअदमणिसिलाकुट्टिमसुहाअन्तचलणसंचारसूचिदं तं एव्व माह॰ वीलदामण्डपं संपत्तम्ह। ता इह ज्जेव्व चिट्ठदु भवं जाव अहं देवीवेस-धारिणं साअरिअं गेण्हिअ लहुं आअच्छामि। [भो एतं खलु निपतन्मत्तमधुकरं कुसुमामोदवासितदशदिशं मसृणमरकतमणिशिलाकुट्टिमसुखायमानचरणसंचार-सूचितं तमेव माधवीलतामण्डपं संप्राप्तौ स्वः। तदिहैव तिष्ठतु भवान् यावदहं देवीवेषधारिणीं सागरिकां गृहीत्वा लघ्वागच्छामि।]

राजा—वयस्य तेन हि त्वर्यताम्।

विदूषकः—भो मा उत्तम्म। एस आगदोम्हि। [भोः मोत्ताम्य। एष आगतोऽस्मि।] (इति निष्क्रान्तः।)

राजा—यावदहमप्यस्यां मरकतशिलावेदिकायामुपविश्य प्रियायाः

निपतन्मत्तमधुकरम्—निपतन्तः = पुष्परसलोभादागत्य मिलन्तः। मत्ताः = उन्मत्ताः मधुकराः = भ्रमराः यत्र तम्। कुसुमामोदवासितदशदिशम्–कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् आमोदेन=सौरभेण वासिताः=सुरभीकृताः दशदिशः = दशसंख्याकाः काष्ठः येन तादृशम्। मसृणमरकतमणिशिलाकुट्टिमसुखायमानचरणसंचारसूचितम्–मसृणाः = चिक्कणाः याः मरकतमणीनाम् = गरुत्मतरत्नानाम् शिलाः = पाषाणाः तासाम् कुट्टिमः = निबद्धाभूमिस्तत्र सुखायमानौ सुखमनुभवन्तौ यौ चरणौ = पादौ तयोः सञ्चारेण = चलनेन सूचितम् = परिज्ञातम्। माधवीलतामण्डपम् = माधवीलतानिकुञ्जम्। इह = अत्र। देवीवेषधारिणीम्–देव्याः = वासवदत्तायाः वेषम् = नेपथ्यम् धरतीति = स्वीकरोतीति ताम्।

उत्तम्य = खिद्यस्व। वेदिका = बद्धाभूमिः।

विदूषक—अरे इस पुष्परस के लोभ से गिरते हुए मतवाले भौरोंवाले, फूलों की सुगन्ध से दशों दिशाओं को सुगन्धित करनेवाले, चिकनी मरकत मणिकी शिलाओं से बनी वेदिकाओं वाले, सुख से चरणों को सञ्चालन करने की सूचना देने वाले उसी माधवी लता मण्डप में हम दोनों आ गये हैं। अतः आप यहीं रहें जबतक मैं महारानी का वेष बनाये सागरिका को लेकर शीघ्र आ रहा हूँ।

राजा—मित्र, तो फिर शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये।

विदूषक—अरे खेद मत करो। मैं यह आ गया। (इस प्रकार निकल जाता है।)

राजा—तब तक मैं भी इस मरकत मणि के पत्थर से बनी वेदिका पर बैठकर प्रिया

संकेतसमयं प्रतिपालयामि । (उपविश्य सचिन्तम् ।) अहो कोऽपि कामिजनस्य स्वगृहिणीसमागमपरिभाविनी जनमभिनवं प्रति पक्षपातः । तथा हि–

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताऽप्यहो
रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥ ९ ॥

कामिजनस्य=कामुकवर्गस्य । स्वगृहिणीसमागमपरिभाविनः–स्वस्याः गृहिण्याः =आत्मपत्न्याः, समागमः=सम्भोगः, तं परिभावयति=तिरस्करोति इति तस्य । अभिनवजनम्=अभिनवः=नूतनः यः जनः=लोकः=नूतना सुन्दरीत्यर्थः, तम् । पक्षपातः=आदरः ।

अन्वयः—संकेतस्था कामिनी शङ्किता प्रणयविशदाम् दृष्टिम् वक्त्रे न ददाति कण्ठाश्लेषे रसात् पयोधरौ घनम् न घटयति, प्रयत्नधृता अपि गच्छामि इति बहुशः वदति तथापि अहो रमयतितराम् हि ॥ ९ ॥

प्रणयेति । संकेतस्था–संकेते=संकेतस्थाने तिष्ठतीति । कामिनी=नायिका । शङ्किता=समुत्पन्नातङ्का । प्रणयविशदाम्–प्रणयेन=अनुरागेन विशदाम्=प्रसन्नाम् दृष्टिम्=लोचनम् । वक्त्रे–मुखे । न ददाति=न अर्पयति । कण्ठाश्लेषे–कण्ठस्य=गलप्रदेशस्य आश्लेषे=आलिङ्गने । रसात्=अनुरागप्रकर्षणात् । पयोधरौ=कुचौ । घनम्=निविडम् । न घटयति=न योजयति । प्रयत्नधृतापि–प्रयत्नेन धृता=गृहीता अपि, गच्छामि=प्रयामि, इति=इत्थम् । बहुशः=भूयोभूयः । वदति=भणति । तथापि अहो=आश्चर्यम् रमयतितराम्=अतिशयेन आनन्दयतीति । हि इति निश्चये । अत्र विभावनालङ्कारः । हरिणीवृत्तम् । तद्यथा–'नसमरसलागा षड्वेदैर्हयैर्हरिणी स्मृते'ति ॥ ९ ॥

द्वारा संकेत किये गये समय की प्रतीक्षा करता हूँ । (बैठकर चिन्ता सहित) कामुक व्यक्ति का अपनी पत्नी को छोड़कर (दूसरी) नवीन स्त्री के प्रति समागम का पक्षपात करना विचित्र होता है । क्योंकि—

संकेतस्थल पर स्थित कामिनी (जान लिये जाने के भय से) शंकित अनुरागभरी दृष्टि को सामने नहीं करती है । कण्ठालिङ्गन करने पर विशेष अनुराग से वक्षःस्थल को सटने नहीं देती, प्रयत्न करके रोकने पर भी 'मैं जा रही हूँ' इस प्रकार बार-बार कहती है फिर भी वास्तव में कामिनी अत्यन्त आनन्द देती है ।। ९ ॥

अये कथं चिरयति वसन्तकः। तत् किं नु खलु विदितः स्यादयं वृत्तान्तो देव्या।

(ततः प्रविशति वासवदत्ता काञ्चनमाला च।)

वासवदत्ता—हञ्जे काञ्चणमाले सच्चं ज्जेव्व मम वेसं कदुअ साअरिआ अज्जउत्तं अहिसरिस्सदि। [हञ्जे काञ्चनमाले सत्यमेव मम वेषं कृत्वा सागरिकाऽऽर्यपुत्रमभिसरिष्यति।]

काञ्चन०—कधं अण्णधा भट्टिणीए णिवेदीअदि। अध वा चित्तसालिआदुआरेट्ठिदो वसन्तओ ज्जेव्व दे पच्चअं उप्पादइस्सदि। [कथमन्यथा भट्टिन्यै निवेद्यते। अथ वा चित्रशालिकाद्वारे स्थितो वसन्तक एव ते प्रत्ययमुत्पादयिष्यति।]

वासवदत्ता—तेण हि तहि ज्जेव्व गच्छम्ह। [तेन हि तत्रैव गच्छावः।]

काञ्चनमाला—एदु एदे भट्टिणी। [एत्वेतु भट्टिनी।]

(उभे परिक्रामतः।)

(ततः प्रविशति कृतावगुण्ठनो वसन्तकः)

वसन्तकः—(कर्णं दत्त्वा।) जधा चित्तसालिआदुआरे पदसद्दो सुणीअदि तधा तक्केमि आगदा साअरिअत्ति। [यथा चित्रशालिकाद्वारे पदशब्दः श्रूयते तथा तर्कयाम्यागता सागरिकेति।]

चिरयति = विलम्बयते। विदितः=ज्ञातः। कृत्वा=विधाय। अभिसरिष्यति=अभिसारिकाभावेनोपैष्यति। अन्यथा=अस्य अर्थस्यालीकत्वे। प्रत्ययम्=विश्वासम्। उत्पादयिष्यति = जनयिष्यति। पदशब्दः—पदयोः=चरणयोः शब्दः=ध्वनिः। कृतावगुण्ठनः=कृतम्=विहितम् अवगुण्ठनम्=मुखप्रच्छादनम् येन सः। तर्कयामि=मन्ये।

अरे वसन्तक! देर क्यों कर रहे हैं? तो क्या महारानी ने यह सब वृत्तान्त जान तो नहीं लिया।

(तब वासवदत्ता और काञ्चनमाला का प्रवेश)

वासवदत्ता—सखि काञ्चनमाले! क्या सचमुच मेरा वेष बनाकर सागरिका आर्यपुत्र का अभिसार करेगी (महाराज के पास जायेगी।)

काञ्चनमाला—आपसे असत्य कैसे कहूँगी। अथवा चित्रशालिका द्वार पर स्थित वसन्तक ही तुम्हें विश्वास दिलायेंगे।

वासवदत्ता—तो फिर (हम दोनों) वहीं चलें।

काञ्चनमाला—चलो महारानीजी चलें। (दोनों जाने लगती हैं।)

(तब घूँघट काढ़े हुए वसन्तक प्रवेश करता है।)

वसन्तक—(कान लगाकर) चित्रशालिका द्वार पर पदध्वनि हो रही है। मैं समझता हूँ कि सागरिका आ गई है।

काञ्चनमाला—भट्टिणि इणं सा चित्तसालिआ। ता जाव वसन्तअस्स सण्णं करेमि। [भट्टिनि इयं सा चित्रशालिका। तद्यावद्वसन्तकस्य संज्ञां करोमि।] (इति छोटिकां ददाति।)

विदूषकः—(सहर्षमुपसृत्य सस्मितम्) सुसंगदे सुठ्ठु क्खु किदो तुए एसो कञ्चणमालाए वेसो। अध साअरिआ दाणिं कहिं। [सुसंगते सुष्ठु खलु कृतस्त्वयैष काञ्चनमालाया वेषः। अथ सागरिकेदानीं कुत्र।]

काञ्चनमाला—(अङ्गुल्या दर्शयन्ती।) णं एसा ! [नन्वेषा।]

विदूषकः—(दृष्ट्वा सविस्मयम्।). एसा फुडं एव्व देवी वासवदत्ता। [एषा स्फुटमेव देवी वासवदत्ता।]

वासवदत्ता—(साशङ्कमात्मगतम्।) कधं जाणिदम्हि। [कथं ज्ञातास्मि।]

विदूषकः—(छोटिकां ददाति।) भोदि साअरिए इदो आअच्छ। [भवति सागरिके इत आगच्छ।] (वासवदत्ता विहस्य काञ्चनमालामवलोकयति।)

काञ्चनमाला—(अपवार्य अङ्गुल्या तर्जयन्ती।) हदास सुमरिस्ससि एदं अत्तणो वअणम्। [हताश स्मरिष्यस्येतदात्मनो वचनम्।]

संज्ञाम् = मूर्च्छनाराहित्यम्। सुष्ठु = शोभनम्। स्फुटमेव = स्पष्टमेव। हताश = हताः आशा यस्य तत्सम्बुद्धौ = भग्नाश। स्मरिष्यसि = मा विस्मार्षीः।

काञ्चनमाला—महारानी जी ! यहाँ तो चित्रशालिका है। तबतक मैं वसन्तक को सचेत करती हूँ।

(इस प्रकार चुटकी बजाती है।)

विदूषक—(प्रसन्नता से आगे बढ़कर मुस्कराते हुए।) सुसंगते ! तुमने ठीक ही काञ्चनमाला का वेष बना लिया। इस समय सागरिका कहाँ है ?

काञ्चनमाला—(अँगुली से दिखलाती हुई) यही तो है।

विदूषक—(देखकर सविस्मय) यह स्पष्ट ही देवी वासवदत्ता हैं।

वासवदत्ता—(शङ्का सहित मन ही मन) क्या मुझे जान लिया है ?

विदूषक—(चुटकी बजाता है) श्रीमती सागरिके ! इधर आइये।

(वासवदत्ता हँसकर काञ्चनमाला को देखती है।)

काञ्चनमाला—(मुख एक ओर करके अँगुलि से डाँटती हुई) अरी अभागिन, अपने इस वचन को याद करना।

विदू०—तुअरदु तुअरदु साअरिआ। एसो क्खु पूव्वदिसासो उग्गच्छदि भअवं मिअलञ्छणो। [त्वरतां त्वरतां सागरिका। एष खलु पूर्वदिश उद्गच्छति भगवान्मृगलाञ्छनः।] (परिक्रामति।)

राजा—अये उपस्थितप्रियासमागमस्यापि किमिदमत्यर्थमुत्ताम्यति मे चेतः। अथ वा।

तीव्रः स्मरसंतापो न तथादौ बाधते यथासन्ने।
तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवसः॥ १०॥

विदूषकः—(कर्णं दत्त्वा।) भोदि साअरिए एसो क्खु पिअवअस्सो तुमज्जेव्व उद्दिसिअ उक्कण्ठाणिब्भरं मन्तेदि। ता णिवेदेमि से तुहागमणम् [भवति सागरिके एष खलु प्रियवस्यस्त्वामेवोद्दिश्योत्कण्ठानिर्भरं मन्त्रयते। तन्निवेदयाम्यस्मै तवागमनम्।]

मृगलाञ्छनः—मृगः लाञ्छनम् = चिह्नम् यस्य सः = चन्द्रः। उद्गच्छति = उदेति। अत्यर्थम् = भृशम्। उत्ताम्यति = खिद्यते।

अन्वयः—तीव्रः, स्मरसन्तापः, आदौ, तथा न बाधते यथा आसन्ने प्रावृषि अभ्यर्णजलागमः दिवसः नितराम् तपति॥ १०॥

तीव्र इति। तीव्रः = उग्रः। स्मरसन्तापः—स्मरस्य = कामस्य सन्तापः = दाहः। आदौ = प्रारम्भे। तथा = तेन प्रकारेण न बाधते = न पीडयति। यथा = येन प्रकारेण। आसन्ने = निकटे प्रियासमागमे सति। प्रावृषि = वर्षाकाले। अभ्यर्णजलागमः—अभ्यर्णः = समीपवर्त्ती जलागमः = जलवर्षणम् यस्मिन् स तादृशः। दिवसः = दिनम्। नितराम् = निरन्तरम्। तपति = सन्तापयति। अत्र दृष्टान्तालङ्कारः आर्यावृत्तम्॥ १०॥

उत्कण्ठानिर्भरम्— उत्कण्ठा = अभिलाषा, निर्भरा = व्याप्ता यस्मिन् कर्मणि तत्।

विदूषक—सागरिके! शीघ्रता करो, शीघ्रता करो। यह मृगलाञ्छन भगवान् चन्द्रदेव तो पूर्वदिशा में उदित हो रहे हैं। (चलने लगता है।)

राजा—अरे उपस्थित प्रिया के समागम वाला मेरा मन अत्यधिक विकल हो रहा है।

उग्र काम सन्ताप प्रारम्भ में उतना पी ड़त नहीं करता है जितना कि प्रिया के समागम के निकट होने पर (पीड़ित करता है।) वर्षाकाल में (बादल से) जल बरसने के निकट का दिन निरन्तर तपता रहता है॥ १०॥

विदूषक—(कान लगाकर) श्रीमती सागरिके! यह मित्र (महाराज) तो तुम्हें ही लक्षित करके उत्कण्ठा से व्याकुल हो कुछ कह रहे हैं। तो इन्हें तुम्हारे आने की सूचना देता हूँ।

वासव०—(शिरःसंज्ञां ददाति ।)

विदूषकः—(राजानमुपसृत्य ।) भो वअस्स दिट्ठिआ वड्ढसि । एसा क्खु मए आणीदा साअरिआ । [भो वयस्य दिष्ट्या वर्धसे । एषा खलु मयाऽऽनीता सागरिका ।]

राजा—(सहर्षं सहसोत्थाय) वयस्य क्वासौ क्वासौ ।

विदूषकः—णं एसा । [नन्वेषा ।]

राजा—(उपसृत्य ।) प्रिये सागरिके !

शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ
रम्भागर्भनिभं तथोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

क्व = कुत्र । असौ = सागारका ।

अन्वयः—तव मुखम् शीतांशुः, दृशौ उत्पले, करौ पद्मानुकारौ, तथा उरुयुगलम् रम्भागर्भनिभंरम्, बाहू मृणालोपमौ, इति आह्लादकराखिलाङ्गि एहि एहि रमसात् निःशङ्कम् याम् आलिङ्गय त्वम् अनङ्गतापविधुराणि अङ्गानि निर्वापय ॥ ११ ॥

शीतांशुरिति । (प्रिये सागरिके) । तव=ते । मुखम् = आननम् । शीतांशुः—शीताः अंशवः = किरणाः यस्य सः = चन्द्रः (इव तापहरः) दृशौ = नयने । उत्पले = कुवलये (इव शीतलस्वभावे) करौ = हस्तौ । पद्मानुकारो—पद्मे=कमले अनुकुर्वन्ति = अनुसरति इति पद्मानुकारौ = रक्तकमलतुल्यौ । तथा उरुयुगलम्—उर्वोः = सक्थ्नोः युगलम्=युग्मम् ('सक्थि क्लीबे पुमानूरुः' इत्यमरः) रम्भागर्भनिभम् = रम्भायाः = कदल्याः यो गर्भः = मध्यभागः तेन निभम् = तुल्यम् = कदलीस्तम्भवत् मृदु इति । बाहू = भुजे । मृणालोपमौ = विससदृशौ । इति=इत्थम् । आह्लादकराखिलाङ्गि = आह्लादकराणि = तापहराणि अखिलानि = निखिलानि

वासवदत्ता—(सिर हिलाकर संकेत करती है ।)

विदूषक—(राजा के निकट जाकर) अरे मित्र ! बधाई है । इन सागरिका को मैं ले आया हूँ ।

राजा—(प्रसन्नता के सहित सहसा उठकर) मित्र ! वह कहाँ है, कहाँ ?

विदूषक—(आँख के इशारे से) यह है ।

राजा—(आगे बढ़कर) प्रिये सागरिके !

तुम्हारा मुख चन्द्रमा है, नेत्र नील कमल है, दोनों हाथ लाल कमल हैं तथा दोनों जाँघें कदली कुन्द एवं दोनों बाहें मृणाल जैसी हैं । हे आनन्ददायक सम्पूर्ण अङ्गों वाली (प्रिये !)

इत्याह्लादकराखिलाङ्गि रभसान्निःशङ्कमालिङ्ग्य मा-
मङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येह्येहि निर्वापय ॥ ११ ॥

वासव०—(सबाष्पमपवार्य ।) कञ्चणमाले एव्वं पि मन्तिअ अज्जउत्तो पुण्णो वि मं आलविस्सदित्ति अहो अच्चरिअं । [काञ्चनमाले एवमपि मन्त्रयित्वार्यपुत्रः पुनरपि मामालपिष्यतीत्यहो आश्चर्यम् ।]

काञ्च०—(अपवार्य ।) भट्टिणी एव्वं ण्णेदम् । किं उण साहसिआणं पुरुषाणं ण संभावीअदि [भर्त्रि एवं न्विदम् । किं पुनः साहसिकानां पुरुषाणां न संभाव्यते ।]

विदूषकः—भोदि साअरिए वीसद्धा भविअ पिअवअस्सं आलवेहि । अज्जवि दाव से णिच्चरुट्ठाए देवीए वासवदत्ताए दुट्ठवअणेहिं कदुइदाइं सोत्ताइं संपदं सुहावेदु तुह महुरवअणोवण्णासो । [भवति सागरिके विश्रब्धा भूत्वा प्रियवयस्यमालप । अद्यापि तावदस्या नित्यरुष्टाया देव्या वासवदत्ताया दुष्टवचनैः कटुकिते श्रोत्रे सांप्रतं सुखयतु तव मधुरवचनोपन्यासः ।]

अङ्गानि=सुखकराद्यवयवानि यस्याः सा तत् सम्बुद्धौ । एहि एहि=आगच्छ,आगच्छ । रभसात् = वेगात् । निःशङ्कम्=निर्भयम् । माम्=प्रियतमम् । आलिङ्ग्य=आश्लिष्य । त्वम्, अनङ्गतापविधुराणि—अनङ्गस्य=कामस्य तापेन=सन्तापेन=विधुराणि=पीडि=तानि '(विधुरं तु प्रविश्लेषे विकले' इति च) । अङ्गानि = अवयवान् । निर्वापय = आह्लादय । अत्र रूपकोपमालंकारौ । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

आलपिष्यति = वार्त्तालापं करिष्यति । साहसिकानाम् = साहसवताम् । सम्भाव्यते = कल्प्यते । विश्रब्धा = वीतशङ्का । आलप = आलापं कुरु । नित्यरुष्टायाः—नित्यम् = सततम् रुष्टायाः = कुपितायाः । दुष्टवचनैः = कटुशब्दैः । कटुकिते = क्लेशमापादिते । श्रोत्रे = कर्णौ । मधुरवचनोपन्यासः = मधुराणाम्—श्रुति-

---

आओ, आओ । प्रसन्नता से निडर होकर मेरा आलिङ्गन करके तुम मेरे कामाग्नि से व्याकुल अङ्गों को शीतल बनाओ ॥ ११ ॥

वासवदत्ता—(आँखों में आँसू भरकर मुँह घुमाकर) काञ्चनमाले ! इस प्रकार बात-चीत करके भी आर्यपुत्र फिर मुझसे वार्त्तालाप करेंगे यह मुझे आश्चर्य है ।

काञ्चनमाला—(मुँह फेरकर) महारानी ! जी ऐसा ही है । फिर साहसी पुरुषों को क्या सम्भव नहीं है ?

विदूषक—देवि सागरिके ! निःशङ्क होकर प्रिय मित्र से प्रेमालाप करो । आज भी इन

निर्वापय—निर् + √वप् + णिच् (लोट् मध्यम०, ए० व०)

वासवदत्ता—(अपवार्य सरोषस्मितम् ।) कञ्चणमाले अहं ईदिसी कडुअभासिणी । अज्जवसन्तओ उण पिअंवदो । [**काञ्चनमाले अहमीदृशी कटुभाषिणी । आर्यवसन्तकः पुनः प्रियंवदः ।**]

काञ्चनमाला—(अपवार्य ।) हदास सुमरिस्ससि एदं वअणम् । [**हताश स्मरयिष्यस्येतद्वचनम् ।**]

विदूषकः—(विलोक्य) भो वअस्स पेक्ख पेक्ख । एसो क्खु कुविदकामिणीकपोलसण्णिहो पुव्वदिसं पआसअन्तो उदिदो भअवं मिअलञ्छणो । [**भो वयस्य प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व । एष खलु कुपितकामिनीकपोलसंनिभः पूर्वदिशं प्रकाशयन्नुदितो भगवान्मृगलाञ्छनः ।**]

राजा – प्रिये सागरिके पश्य ।

आरुह्य शैलशिखरं त्वद्वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः ।
प्रतिकर्तुमिवोर्ध्वकरः स्थितः पुरस्तान्निशानाथः ॥ १२ ॥

प्रियाणाम् वचनानाम् = वचसाम्, उपन्यासः = प्रस्तावः । सुखयतु = प्रसादयतु ।

कुपितकामिनीकपोलसन्निभः–कुपिता चासौ कामिनी तस्याः कपोलः=गण्डदेशः, तत्सन्निभः = क्रुद्धसुन्दरीगण्डदेशतुल्यः । भगवान् = त्रिलोकीजेता । मृगलाञ्छनः = मृगः = हरिणः लाञ्छनम् = चिह्नम् यस्य सः = मृगाङ्कः ।

अन्वयः—त्वद् वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः निशानाथः शैलशिखरम् आरुह्य ऊर्ध्वकरः (सन्) प्रतिकर्त्तुम् इव पुरस्तात् स्थितः ॥ १२ ॥

आरुह्येति । त्वद् वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः—तव = भवत्याः वदनेन = मुखेन, अपहृतम् = बलाद् गृहीतम् कान्तिः = प्रभा एव सर्वस्वम् = निखिलद्रविणम् यस्य तादृशः । निशानाथः = निशायाः=रात्र्याः नाथः=स्वामी=चन्द्रः । शैलशिखरम्=

नित्य रुष्ट रहनेवाली देवी वासवदत्ता के दुष्ट वचनों से कटु बनाये गये कानों को अब तुम्हारा मधुर वार्त्तालाप सुखी बनाये ।

वासवदत्ता—(मुँह फेरकर क्रोध से मुस्कराते हुए) काञ्चनमाले ! मैं ऐसी कटु भाषण करने वाली हूँ और आर्य बसन्तक प्रिय बोलने वाले हैं ।

काञ्चनमाला—(मुँह घुमाकर) अभागिनी ! इन वचनों को याद करोगी ।

विदूषक—(देखकर) हे मित्र, देखो देखो । यह कुपित कामिनी के गालों के समान रक्ताभ पूर्वदिशा को प्रकाशित करते हुए भगवान् मृगलाञ्छन (चन्द्रदेव) उदय हो रहे हैं ।

राजा—प्रिये सागरिके ! देखो ।

तुम्हारे मुख के द्वारा छीनी गई सम्पूर्ण कान्ति रूपी सम्पत्ति बदला लेने के लिये पूर्व की दिशा में स्थित है ॥ १२ ॥

वासवदत्ता—अज्ज वसन्तअणं वढमसंगमे विग्घं करन्तीए मए एव्व एदस्य अपरद्धम्। [आर्य वसन्तक, ननु प्रथमसंगमे विघ्नं कुर्वंत्या मयैवैतस्याऽपराद्धम्।]

राजा—देवि एवं प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकः किं ब्रवीमि। तथापि विज्ञापयामि। (पादयोः पतति।)

आताम्रतामपनयामि विलक्ष एष
लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना।
कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे
हर्तुं क्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात् ॥ १४ ॥

प्रथमसंगमे = प्रथमसमागमे। अपराद्धम् = अपराधः कृतः।

प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकः = साक्षात्कृताप्रियाचरणः।

अन्वयः—देवि विलक्षः एषः (अहम्) मूर्ध्ना तव चरणयोः लाक्षाकृताम् आताम्रताम् अपनयामि, मुखेन्दुबिम्बे, कोपोपरागजनिताम् (आताम्रताम्) तु हर्तुम् क्षमः यदि मयि परम् करुणा स्यात् ॥ १४ ॥

आताम्रेति। देवि = हे प्रिये वासवदत्ते। विलक्षः = स्वापराधस्य कृते दुःखितः ('दुःखे विलक्षे व्यलीकमाप्रियाकार्ययोस्तु ना इति यादवः) एषः = अयम् अहम् उदयनः) मूर्ध्ना = शिरसा। तव = ते, वासवदत्तायाः। चरणयोः = पादयोः। लाक्षाकृताम्—लाक्षाया = जातुरागेण कृताम् = जनिताम्। आताम्रताम् = ईषद् रक्तताम्। अपनयामि = दूरी करोमि। मुखेन्दुबिम्बे—मुखम् = आननम् इव इन्दुबिम्बम् = चन्द्रमण्डलम् तस्मिन्। कोपोपरागजनिताम्—कोपः = क्रोधः एव उपरागः = राहुणा ग्रसनम् तेन जनिताम् = उत्पन्नाम् (आताम्रताम्) तु हर्तुम् = दूरीकर्तुम्। क्षमः = समर्थः। यदि = चेत्। मयि = कृतापराधे मयि। परम् = केवलम्। करुणा = दया। स्यात् = भवेत्। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥१४॥

वासवदत्ता—आर्य वसन्तक ! प्रथम समागम में विघ्न डालते हुए वास्तव में तो मैंने ही इनका अपराध किया है।

राजा—देवि ! इस प्रकार प्रत्यक्ष देखा गया अपराध वाला (मैं) क्या कहूँ। फिर भी निवेदन कर रहा हूँ। (**पैरों पर गिरता है**)

हे देवि ! अपने किये हुए अपराध से दुःखी मैं (उदयन) तुम्हारे चरणों पर गिरता हुआ शिर से तुम्हारे चरणों की महावर की हल्की लालिमा को पोंछ रहा हूँ। तुम्हारे मुख रूपी चन्द्रमण्डल पर क्रोध रूपी राहु से उत्पन्न की गई लालिमा को तो तभी पोंछने (दूर करने) में समर्थ हो सकता हूँ। यदि मुझ अपराध किये हुए पर केवल दया हो जाये ॥१४॥

वासवदत्ता—(हस्तेन वारयन्ती ।) अज्जउत्त उट्ठेहि उट्ठेहि । णिल्लज्जो क्खु सो जणो जो अज्जउत्तस्स ईदिसं हिअअं जाणिअ पुणो वि कुप्पदि ता सुहं चिट्ठदु अज्जउत्तो । गमिस्स अहम् । [आर्यपुत्र उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । निर्लज्जः खलु स जनो य आर्यपुत्रस्येदृशं हृदयं ज्ञात्वा पुनरपि कुप्यति । तत्सुखं तिष्ठत्वार्यपुत्रः । गमिष्याम्यहम् ।] (इति गन्तुमिच्छति ।)

काञ्चनमाला—भट्टिणि करेहि पसादम् । एव्वं चरणपडिदं महाराअं उज्झिअ गदाए देवीए अवस्सं पच्छादावेण होदव्वम् । [भर्त्रि कुरु प्रसादम् । एवं चरणपतितं महाराजमुज्झित्वा गताया देव्या अवश्यं पश्चात्तापेन भवितव्यम् ।]

वासवदत्ता—अवेहि अपण्डिदे कुदो एत्थ पसादस्स पच्चादावस्स वा कारणम् । ता एहि । गच्छम्ह । [अपेहि अपण्डिते कुतोऽत्र प्रसादस्य पश्चात्तापस्य वा कारणम् । तदेहि । गच्छावः ।]

राजा—देवी प्रसीद प्रसीद । ('आताम्रतामपनयामि' इत्यादि पुनः पठति ।)

विदूषकः—भो उट्ठेहि । गदा देवी । ता कीस एत्थ अरण्णरुदिदं करेसि । [भो उत्तिष्ठ गता देवि । तत्कस्मादत्रारण्यरुदितं करोषि । [

निर्लज्जः—निर्गता लज्जा यस्मात्सः=लज्जाहीनः । ईदृशम्=प्रकृत्या सरलम् । उज्झित्वा=त्यक्त्वा । पश्चात्तापेन=खेदेन । अपण्डिते=मूर्खे । प्रसादस्य= प्रसन्नतायाः । अरण्यरुदितम्=व्यर्थालापः ।

वासवदत्ता—(हाथ से मना करती हुई) आर्यपुत्र ! उठो, उठो । वास्तव में वह व्यक्ति निर्लज्ज है जो इस प्रकार आर्यपुत्र को सरल हृदय (वाला) जानकर भी क्रोध करता है । अतः आर्यपुत्र सुख से रहें, मैं चली जाऊँगी । (इस प्रकार जाना चाहती है)

काञ्चनमाला—देवि ! प्रसन्न हो जाओ । इस प्रकार पैरों पर पड़े हुए महाराज को छोड़कर चले जाने से आपको अवश्य ही पश्चात्ताप होगा ।

वासवदत्ता—हट मूर्खे । यहाँ प्रसन्नता अथवा पश्चात्ताप करने का क्या कारण ? अतः आओ चलें । (इस प्रकार दोनों निकल जाती हैं ।)

राजा—देवि ! प्रसन्न हो जाओ । ('अपने किये हुए अपराध से दुःखी मैं' इत्यादि पुनः पढ़ता है ।)

विदूषक—अरे उठो । देवी जी चली गईं । अतः (अब) किस लिए यहाँ व्यर्थ प्रलाप कर रहे हो ।

राजा—(मुखमुन्नमय्य दृष्ट्वा ।) कथमकृत्वैव प्रसादं गता देवी ।

विदूषकः—कह ण किदो पसादो जं अज्ज वि अक्खदसरीरा चिट्ठम्ह । [कथं न कृतः प्रसादो यदद्याप्यक्षतशरीरौ तिष्ठावः ।]

राजा—धिङ्मूर्ख किमेवं मामुपहससि । ननु त्वत्कृत एवायमापतितोऽस्माकं महाननर्थस्य क्रमः ।

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।
प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसह्यं हि भवति ॥ १५ ॥

अक्षतशरीरौ—अक्षते = सकुशले शरीरे ययोस्तौ = सकुशलौ । एवम् = इत्थम् । उपहससि = निन्दसि । अयम् = देवीकोपं रूपः । अनर्थस्य = अनिष्टस्य । क्रमः = परिपाटी ।

अन्वयः—प्रणयबहुमानात् प्रीतिः अनुदिनं समारूढा । अकृतपूर्वम् इदम् व्यलीकम् खलु अद्य मया कृतम् वीक्ष्य असहना असौ प्रिया स्फुटम् जीवितम् मुञ्चति हि प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितम् । अविसह्यम् भवति ॥ १५ ॥

समारूढेति । प्रणयबहुमानात्—प्रणयस्य = अन्योन्यप्रेम्णः बहुमानात् = अत्यादरात् हेतोः प्रीतिः = प्रणयः । अनुदिनम् = प्रतिदिनम् । समारूढा = वृद्धिगता । अकृतपूर्वम् = पूर्वं कदाचिदपि नाचरितम् । इदम् = एतत् व्यवस्थितमित्यर्थः । व्यलीकम् = अकार्यम् । खलु = नूनम् । अद्य = अस्मिन् दिने । मया = प्रियतमेन (उदयनेन) कृतम् = अनुष्ठितम् । वीक्ष्य = दृष्ट्वा । असहना = अमर्षणा असौ = सा प्रियतमा । स्फुटम् = स्पष्टम् । जीवितम् = स्वजीवनम् । मुञ्चति =

राजा—(मुँह उठाकर देखकर) क्या बिना कृपा किये (नाराज ही) देवी चली गई।

विदूषक—क्यों नहीं कृपा की (अर्थात् अवश्य कृपा की) जो कि अब भी हम दोनों की देह ज्यों की त्यों (सुरक्षित) है ।

राजा—अरे मूर्ख ! धिक्कार है । इस प्रकार मेरी मजाक क्यों बना रहे हो । वास्तव में तुम्हारे कारण ही हमारे ऊपर यह महान् अनर्थ आ पड़ा है ।

क्योंकि—अत्यन्त प्रेम के सम्मान से स्नेह दिन पर दिन बढ़ता ही गया । पहले कभी न किया गया यह अपराध वास्तव में आज मेरे द्वारा किया गया देखकर सहन न कर सकने वाली यह प्रिया स्पष्ट है कि जीवन त्याग कर देगी । क्योंकि बढ़े हुए प्रेम का टूटना असह्य हो जाता है ॥ १५ ॥

विदू०—भो रुठ्ठा देवी किं करिस्सदित्ति ण जाणामि । साअरिआ उण दुक्करं जीवस्सदित्ति तक्केमि । [भो रुष्टा देवी किं करिष्यतीति न जानामि । सागरिका पुनर्दुष्करं जीविष्यतीति तर्कयामि ।]

राजा—वयस्य अहमप्येव चिन्तयामि । हा प्रिये सागरिके !

(ततः प्रविशति वासवदत्तावेषधारिणी सागरिका ।)

सागरिका—(सोद्वेगम् ।) दिठ्ठिआ णाहं इमिणा विरइददेवीवेसेण इमादो चित्तसालिआदो णिक्कसन्ती केणावि लक्खिदम्हि । ता इदाणिं किं करिस्सम् । [दिष्ट्या नाहमनेन विरचितदेवीवेषेणास्याश्चित्रशालिकाया निष्क्रामन्ती केनापि लक्षितास्मि । तदिदानीं किं करिष्यामि ।] (सास्रं चिन्तयति ।)

विदूषकः—भोः किं मूढो विअ चिठ्ठसि । चिन्तेहि एत्थ पडिआरं । [भोः किं मूढ इव तिष्ठति । चिन्तयात्र प्रतीकारम् ।]

राजा—ननु तमेव चिन्तयामि । वयस्य देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि । तदेहि । तत्रैव गच्छावः ।

(इति परिक्रामतः ।)

त्यजति हि = यतः । प्रकृष्टस्य = उत्कृष्टस्य प्रेम्णः = प्रणयस्य । स्खलितम् = भ्रंशः ('स्खलितं छलिते भ्रंशे' इति हेमचन्द्रः) । अविसह्यम् = सोढुमशक्यम् । भवति जायते । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ १५ ॥

दुष्करम् = कष्टपूर्वकम् । विरचितेन = कृतेन । निष्क्रमन्ती = बहिर्भवन्ती । लक्षिता = अवलोकिता । सास्रम् = रुदती । प्रतीकारम् = शोधनोपायम् । प्रसादनम् = अनुनयनम् । मुक्त्वा = त्यक्त्वा । अत्र = तत्कोपोपशमे ।

विदूषक—अरे 'महारानी रुष्ट होकर क्या करेंगी' यह मैं नहीं जानता हूँ पर सागरिका का जीवित रहना अति कठिन हो जायेगा ।

राजा—मित्र ! मैं भी यही सोच रहा हूँ । हाय प्रिये सागरिके !

(तब वासवदत्ता का वेष धारण किये हुए सागरिका प्रवेश करती है)

सागरिका—(उद्वेग के साथ) सौभाग्य से मैं इस बनाये गये महारानी के वेष से इस चित्र शालिका से निकलती हुई किसी के द्वारा नहीं देखी जा सकी हूँ । अतः अब क्या करूँ । (रोती हुई सोचने लगती है ।)

विदूषक—अरे क्या मूर्ख की भाँति बैठे हो । इसका प्रतीकार सोचो ।

राजा—यही तो मैं सोच रहा हूँ । मित्र, महारानी को प्रसन्न करने के सिवाय मुझे और कोई उपाय नहीं दिखलाई देता है । अतः आओ । वहीं चलें । (दोनों जाते हैं)

सागरिका—(विमृश्य ।) वरं दाणिं सअं ज्जेव्व अप्पाणं उव्बन्धिअ उवरदा ण उण जाणिदसंकेतवुत्तन्ताए देवीए परिभूदम्हि । ता जाव अहं असोअपादवं गदुअ जहासमीहिदं करिस्सम् । [**वरमिदानीं स्वयमेवात्मानमुद्बध्योपरता न पुनर्ज्ञातसंकेतवृत्तान्तया देव्या परिभूतास्मि । तद्यावदहमशोकपादपं गत्वा यथासमीहितं करिष्यामि ।]**

विदू०—(आकर्ण्य ।) चिट्ठ दावा । चिट्ठ भो । पदसद्दो सुणीअदि । जाणामि कदावि गहिदपच्छादावा पुणोवि देवी आगदा भवे । [**तिष्ठ तावत् । तिष्ठ भोः । पदशब्दः श्रूयते । जानामि कदापि गृहीतपश्चात्तापा पुनरपि देव्यागता भवेत् ।]**

राजा—वयस्य महानुभावा खलु देवी कदाचिदेवमपि स्यात् । तत्त्वरितं निरूप्यताम् ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [**यद्भवानाज्ञापयति ।**] (इति परिक्रामति ।)

सागरिका—(उपसृत्य ।) ता जाव इमाए माहवीलदाए पासं विरइअ असोअपादवे अप्पाणअं उपब्बन्धिअ वावादेमि । हा ताद हा अम्ब एसा दाणिं अहं अणाधा असरणा विवज्जामि मन्दभाइणी । [**तद्यावदेतस्याः माधवीलतायाः पाशं विरचय्याशोकपादप आत्मानमुद्बध्य व्यापादयामि । (इति**

उद्बध्य = कण्ठे पाशं निक्षिप्य । उपरता = मृता । ज्ञातसंकेतवृत्तान्तया—ज्ञात अधिगतः सङ्केतस्य = अभिसरणस्य वृत्तान्तः = समाचारः यया सा तया । परिभूता = तिरस्कृता । यथासमीहितम् = यथाभिलषितम् ।

गृहीतपश्चात्तापा—गृहीतः = स्वीकृतः पश्चात्तापः = खेदः यया सा ।

पार्श्वम् = निकटम् । विरचय्य = रचनां कारयित्वा । उदबध्य = कण्ठे पाशं

सागरिका—(सोचकर) इस समय स्वयमेव अपने को बाँधकर मर जाना अच्छा है । नहीं तो देवी इस संकेत वृत्तान्त को जानकर बड़ी दुर्गत करेगी । तो जबतक मैं अशोक वृक्ष के पास जाकर इच्छानुसार करूँगी (फाँसी लगा लूँगी) ।

विदूषक—(सुनकर) ठहरो तब तक ठहरो । अरे पैरों की ध्वनि सुनाई पड़ती है । मालूम पड़ता है कि कदाचित पश्चात्ताप करके पुनः महारानी लौट आई हों ।

राजा—मित्र ! वास्तव में महारानी बड़ी उदारहृदया हैं । शायद ऐसा ही हो । अतः शीघ्र देखिये ।

विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा । **(इस प्रकार घूमने लगता है ।)**

सागरिका—(आगे बढ़कर) तो जब तक इस माधवीलता से फन्दा बनाकर अशोक वृक्ष में अपने को बाँधकर समाप्त किये लेती हूँ । **(लतापाश बनाती है ।)** । यह

लतापाशं रचयन्ती ।) हा तात हा अम्ब एवेदानीमहमनायाऽशरणा विपद्ये मन्द-भागिनी ।] (इति कण्ठे लतापाशमर्पयति ।)

विदूषकः—(विलोक्य ।) का पुण एसा । कहं देवी वासवदत्ता । भो वअस्स परित्ताहि परित्ताहि । एसा क्खु देवी वासवदत्ता उब्बन्धिअ अत्ताणअं वावादेदि । [का पुनरेषा । कथं देवी वासवदत्ता (ससंभ्रममुच्चैः ।) भो वयस्य परित्रायस्व । परित्रायस्व । एषा खलु देवी वासवदत्तोद्बध्यात्मानं व्यापादयति ।]

राजा—(ससंभ्रममुपसृत्य ।) क्वासौ क्वासौ ।

विदूषकः—णं एसा । [नन्वेषा ।]

राजा—(उपसृत्य कण्ठात्पाशमपनयन् ।) अयि साहसकारिणि किमिदमकार्यं क्रियते ।

मम कण्ठगताः प्राणाः पाशे कण्ठगते तव ।
अतः स्वार्थं प्रयत्नोऽयं त्यज्यतां साहसं प्रिये ॥ १६ ॥

वंचना । व्यापादयिष्यामि = मारयिष्यामि । अशरणा—नास्ति शरणं = रक्षणं यस्याः सा । परित्रायस्व = रक्ष ।

अन्वयः—पाशे तव कण्ठगते (सति) मम प्राणाः कण्ठगताः अतः अयम् प्रयत्नः स्वार्थः हे प्रिये साहसम् त्यज्यताम् ॥ १६ ॥

ममेति । पाशे = लताविरचितोद्बन्धने । तव = ते । कण्ठगते—कण्ठे = ग्रीवायाम् गते = प्राप्ते (सति) मम = उदयनस्य । प्राणाः = असवः । कण्ठगताः = गलगताः = निःसरितुं प्रवृत्ताः इत्यर्थः । अतः-अयम् = एषः । प्रयत्नः = प्रयासः

पिता हा माता । यह अब मैं अनाथ अशरण मन्दभागिनी मर रही हूँ । (इस प्रकार गले में लता पाश डालती है ।)

विदूषक—(देखकर) फिर यह कौन है ? क्या देवी वासवदत्ता है ? (घबराहट से चिल्लाकर) अरे मित्र ! बचाओ, बचाओ । यह देवी वासवदत्ता बाँधकर (फाँसी लगाकर) अपने को समाप्त कर रही हैं ।

राजा—(घबराहट और वेग से पास जाकर) वह कहाँ है, कहाँ है ?

विदूषक—यही तो है ।

राजा—(आगे बढ़कर गले से फन्दा निकालता हुआ) अरी साहस करने वाली । तू यह अकार्य क्या कर रही है ?

फन्दा तुम्हारे गले में पड़ने पर मेरे तो प्राण ही निकले जा रहे हैं । अतः (फाँसी लगाकर) मरने से हटाने का यह प्रयत्न स्वार्थ (अपने को बचाने के लिये) भी है । हे प्रिये ! इस अकार्य (फाँसी लगाने) के साहस को छोड़ दो ॥ १६ ॥

सागरिका—(राजानं दृष्ट्वा ।) अम्मो । कधं एसो भट्टा । जं सच्चं एणं पेक्खिअ पुणोवि मे जीविदाहिलासो संवुत्तो । अह वा एणं पेक्खिअ कदत्था भविअ सुहेण एव्व जीविदं परिच्चइस्सम् । मुञ्चदु मं भट्टा । पराहीणो क्खु अअं जणा ण उण इदिसं अवसरं मरिदुं पावेदि । [अम्मो । कथमेष भर्ता । (सहर्षमात्मगतम् ।) यत्सत्यमेनं प्रेक्ष्य पुनरपि मे जीविताभिलाषः । संवृत्तः । अथवैनं प्रेक्ष्य कृतार्था भूत्वा सुखेनैव जीवितं परित्यक्ष्यामि । (प्रकाशम् ।) मुञ्चतु मुञ्चतु मां भर्ता । पराधीनः खल्वयं जनः न पुनरीदृशमवसरं मर्तुं प्राप्नोति ।]

(इति पुनः कण्ठे पाशं दातुमिच्छति ।)

राजा—(निर्वर्ण्य । सहर्षमात्मगतम् ।) कथं प्रिया मे सागरिका ।

(कण्ठात्पाशमाक्षिप्य ।)

अलमलमतिमात्रं साहसेनाऽमुना ते
त्वरितमयि विमुञ्च त्वं लतापाशमेतम् ।

(त्वन्मोचनप्रयास इत्यर्थः) स्वार्थः = स्वस्य कृते विहितः । हे प्रिये ! = हे प्रेयसि साहसम् = दुष्कार्यम् ('साहसं तु दमे दुष्करकर्मणि' इति हेमचन्द्रः) त्यज्यताम् = विसृज्यताम् । पाशः कण्ठे वासवदत्तायाः प्राणाश्च प्रयान्ति राज्ञः इति कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतयोर्निबन्धनादसंगतिरलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १६ ॥

अम्भो = विस्मयबोधकमव्ययम् । जीविताभिलाषः—जीवितस्य = जीवनस्य अभिलाषः = कामना । सम्वृत्तः = जातः । कदर्थिता = कृतार्था । परित्यक्ष्यामि = परित्यागं करिष्यामि । मुञ्चतु = त्यजतु । पराधीनः—परस्य = अन्यस्याधीनः = परायत्तः ।

अन्वयः—अयि जीवितेशे ते अमुना अतिमात्रम् साहसेन अलम् अलम् त्वम् एतम् लतापाशम् त्वरितम् विमुञ्च । चलितम् अपि मम जीवितम् । निरोद्धुम् इह कण्ठे क्षणम् बाहुपाशम् ॥ १७ ॥

अलमिति । अयि जीवितेशे = हे प्राणेश्वरि । ते = तव । अमुना = अनेन ।

सागरिका—(राजा को देखकर) अरी ! क्या यह महाराज हैं । (प्रसन्नता से मन ही मन) यदि यह सच है तो इन्हें देखकर फिर से मुझे जीवित रहने की इच्छा हो आई है । अथवा इन्हें देखकर कृतार्थ होकर सुख से ही प्राण त्याग करूँगी । (प्रकट रूप में) छोड़े छोड़ें मुझे महाराज ! पराधीन यह जन (मैं सागरिका) मरने का ऐसा अवसर फिर नहीं पायेगा । (इस प्रकार पुनः गले में फन्दा डालना चाहती है ।)

राजा—(ध्यान से देखकर, प्रसन्नता से मन ही मन) क्या मेरी प्रियतमा सागरिका है ? (गले के फन्दे को खींचकर)

(प्रकट रूप में) हे प्राणेश्वरी ! तुम्हारे इस अत्यधिक साहस से कोई लाभ नहीं है ।

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे
क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ॥ १७ ॥

(इति बाहुमाक्षिप्य कण्ठे कृत्वा स्पर्शं नाटयन् ।) सखे इयमनभ्रा वृष्टिः।

विदू०—भो एदं ण्णेदं जदि अआलवादावली भविअ ण आआदि देवी वासवदत्ता। [भो एवं न्विदं यद्यकालवातावली भूत्वा नायाति देवी वासवदत्ता।]

(ततः प्रविशति वासवदत्ता काञ्चनमाला च।)

वासवदत्ता—हञ्जे कञ्चणमाले तं तहा चलणनिवडिदं अज्जउत्तं अवधीरिअ आअच्छन्तीए मए अदिणिठ्ठुरं किदम्। ता दाणि सअं जेव्व गदुअ अज्जउत्तं अणुणइस्सम्। [हञ्जे काञ्चनमाले तं तथा चरणनिपतितमार्यपुत्रमवधीर्यागच्छन्त्या मयातिनिष्ठुरं कृतम्। तदिदानीं स्वयमेव गत्वार्यपुत्रमनुनेष्यामि।]

अतिमात्रम् = अत्यन्तम्। साहसेन=दुष्करकर्मणा। अलम् अलम् = पर्याप्तं पर्याप्तम्। त्वम् = भवती। एतत् = एनम्। लतापाशम् = लताबन्धनम्। त्वरितम् = द्रुतम्। विमुञ्च = त्यज। चलितम् = प्रस्थानोन्मुखम् = निःसरितुमित्यर्थः। अपि मम = स्वप्रियतमस्य। जीवितम् = जीवनम्। निरोद्धुम् = गमनाद् वारयितुम्। इह = अत्र। (मम) कण्ठे = गलदेशे। क्षणम् = स्वल्पकालम्। बाहुपाशम् = भुजलता, बन्धनम्। निधेहि = धारय। मां गाढमालिङ्गयेत्यर्थः। अत्र पर्यायोक्तिरलङ्कारः। मालिनीवृत्तम्। तद्यथा—'ननमयययुतेयं मालिनीभोगिलोकैः' ॥ १७ ॥

अनभ्रा = मेघेन विना। अकालवातावली = असमयवात्या। चरणनिपतितम्—चरणयोः निपतितो यस्तम् = पादयोः पतितम्। अवधीर्य = अपमत्य।

तुम इस लता पाश को शीघ्र छोड़ दो। निकलने को उद्यत भी मेरे प्राण बचाने के लिए यहाँ मेरे कण्ठ (गले) में क्षण भर को अपनी भुजाओं रूपी लता का पाश डाल दो अर्थात् मुझे गाढालिंगन कर लो ॥ १७ ॥

(इस प्रकार हाथ खींचकर गले लगाकर स्पर्श करने का अभिनय करता है) मित्र ! यह बिना बादल (मेघ) की वर्षा (है)।

विदूषक—अरे ऐसा ही है, यदि वे मौके पर आँधी के समान बनकर देवी वासवदत्ता न आ जायें।

(तब वासवदत्ता और काञ्चनमाला प्रवेश करती हैं।)

वासवदत्ता—सखि काञ्चनमाले ! उस प्रकार चरणों पर पड़े हुए उन महाराज की अवज्ञा करके आती हुई मैंने अतीव निष्ठुर कार्य किया है। अतः अब स्वयमेव जाकर महाराज (आर्यपुत्र) की अनुनय करूँगी।

• —

काञ्चन०—को अण्णो देवीं वज्जिअ एव्वं भणिदुं जाणादि। वरं सो ज्जेव देवो दुज्जणो भोदु ण उण देवी। ता एदु एदु भट्टिणी। [कोऽन्यो देवीं वर्जयित्वैवं भणितुं जानाति। वरं स एव देवो दुर्जनो भवतु न पुनर्देवी। तदेत्वेतु भट्टिनी।]

(परिक्रामतः।)

राजा—अयि मुग्धे किमद्यापि मध्यस्थतया वयं विफलमनोरथाः क्रियामहे।

काञ्च० —(कर्णं दत्वा।) भट्टिणि एसो क्खु जहा समीवे भट्टा मन्तेदि तहा तक्केमि तुमं एव्वं अणुणेदुं इदो एव्व आअच्छदि। [भट्टिनि, एष खलु यथा समीपे भर्ता मन्त्रयते तथा तर्कयामि त्वामेवानुनेतुमित एवागच्छति।]

वासवदत्ता—(सहर्षम्।) तेण हि अलक्खिदा एव्व पुट्ठदो गदुअ कण्ठे गेण्हिअ पसादइस्सम्। [तेन ह्यलक्षितैव पृष्ठतो गत्वा कण्ठे गृहीत्वा प्रसादयिष्यामि।]

विदू०—भोदि साअरिए वीसत्था भविअ पिअवअस्सं आलवेहि। [भवति सागरिके, विश्वस्ता भूत्वा प्रियवयस्यमालप।]

देवीं वर्जयित्वा = भवतीं विहाय। दुर्जनः = दुष्टः जनः। अनुनेष्यामि = प्रसादयिष्यामि। मुग्धे = सामयिककर्त्तव्यानभिज्ञे। मध्यस्थतया = ताटस्थ्येन। विफलमनोरथाः—विफलाः = असफलाः मनोरथाः = कामनाः येषां ते = असफलालिङ्गनाभिलाषाः। अनुनेतुम् = प्रसादयितुम्। कण्ठे गृहीत्वा = आलिङ्गय। प्रसादयिष्यामि = विनोदयिष्यामि। विश्वस्ता = सञ्जातविश्वासा। आलप = वार्त्तालापं कुरु।

काञ्चनमाला—महारानी को छोड़कर और कौन ऐसा कहना जानता है। भले ही वह महाराज दुर्जन बन जायें पर आप वैसा न बनें। अतः आप चलें।

(दोनों चलती हैं)

राजा—अरी मुग्धे! अब भी तटस्थ रहकर क्यों हमारे मनोरथों को विफल कर रही हो।

काञ्चनमाला—(कान लगाकर) महारानी जी! समीप ही यह जो महाराज कह रहे हैं इससे सम्भावना करती हूँ कि तुम्हें ही प्रसन्न करने के लिए (वह) इधर ही आ रहे हैं।

वासवदत्ता—(प्रसन्नता से) अतएव छिपे-छिपे ही पीछे से जाकर आलिङ्गन करके (उन्हें) प्रसन्न करूँगी।

विदूषक—देवि सागरिके! विश्वस्त होकर प्रिय मित्र से वार्त्तालाप करो।

वासवदत्ता—(आकर्ण्य । सविषादम् ।) कञ्चणमाले कधं साअरिआ इदो एव्व आगदा । ता सुणिस्सं दाव । पच्छा उवसप्पिस्सम् । [काञ्चनमाले कथं सागरिकेत एवागता । तच्छ्रोष्यामि तावत् । पश्चादुपसर्प्स्यामि ।] (तथा करोति ।)

सागरिका—भट्टा किं एदिणा आलिक्कदक्खिण्णेन जीविआदोवि वल्लहतराए देवीए अप्पाणं अवराहिणं करेसि । [भर्तः किमेतेनालीकदाक्षिण्येन जीवितादपि वल्लभतराया देव्या आत्मानमपराधिनं करोषि ।]

राजा—अयि मिथ्यावादिनी खल्वसि । कुतः—

श्वासोत्कम्पिनि कम्पितं कुचयुगे मौने प्रियं भाषितं
वक्त्रेऽस्याः कुटिलीकृतभ्रुणि तथा यातं मया पादयोः ।

अलीकदाक्षिण्येन–अलीकम्=मिथ्या, दक्षिणस्य अनुकूलस्य भावो दाक्षिण्यम्=आनुकूल्यम् तेन । जीवितात्=जीवनात् । वल्लभतरायाः = प्रियतमायाः । देव्याः= वासवदत्तायाः । अपराधिनम् = कृतानागसम् । मिथ्यावादिनी = असत्यभाषिणी ।

अन्वयः—अस्याः कुचयुगे श्वासोत्कम्पिनि (सति) मया कम्पितम् मौने प्रियम् भाषितम् वक्त्रे कुटिलीकृतभ्रुणि तथा पादयोः यातम् इत्थम् देव्याः सहजाभिजात्यजनिता नः सेवा एव (आसीत्) परम् प्रेमाबन्धविवर्धितायाः प्रीतिः सा तु त्वयि एव (अस्ति) ॥ १८ ॥

श्वासोत्कम्पिनीति । अस्याः = देव्याः वासवदत्तायाः । कुचयुगे—कुचयोः = स्तनयोः युगे = युगले । श्वासोत्कम्पिनि = कोपजनितोच्छ्वासेन चलिते सति । मया = राज्ञा वत्सराजेन । कम्पितम् = कम्पोऽनुभूतः । मौने = मूकीभावे । प्रियम् = चाटुवचनम् । भाषितम् = कथितम् । वक्त्रे = मुखे । कुटिलीकृतभ्रुणि— कुटिलीकृते = वक्रतांगमिते भ्रुवौ = भृकुट्यौ यस्मिन् तत् तादृशे सति । तथा = तेन प्रकारेण । पादयोः = चरणयोः यातम् = पतितम् । इत्थम् = अनेन प्रकारेण ।

वासवदत्ता—(सुनकर दुःख सहित) काञ्चनमाले ! क्या सागरिका इधर ही आई है ? तो तब तक सुनूँगी । तदनन्तर पास में चलूँगी । (वैसा करती है ।)

सागरिका—स्वामिन् । इस मिथ्या चातुर्य (झूठ प्रेम-दर्शन) से अपने को प्राणों से भी अधिक प्रिय प्राणवल्लभा का अपराधी क्यों बना रहे हो ?

राजा—अरी तुम तो झूठ बोलती हो । क्योंकि—

इसके स्तन युगल में श्वासोच्छ्वास होने (क्रोध से गहरी साँस लेने) से मैं काँप गया । मौन (चुप) हो जाने पर प्रिय वचन कहा, टेढ़ी भौंहों वाला मुख होने पर उस प्रकार पैरों पर पड़ गया । इस प्रकार महारानी के प्रति जन्मजात स्वाभाविक कुलीनता

इत्थं नः सहजाभिजात्यजनिता सेवैव देव्याः परं
प्रेमाबन्धविवर्धिताधिकरसा प्रीतिस्तु या सा त्वयि ॥ १८ ॥

वासवदत्ता—(सहसोपसृत्य सरोषम् ।) अज्जउत्त जुत्तं एदं सरिसं एदम्। [आर्यपुत्र युक्तमेतत् सदृशमेतत् ।]

राजा—(दृष्ट्वा । सवैलक्ष्यम् ।) देवि न खल्वकारणे मामुपालब्धुमर्हसि। सत्यं त्वामेव मत्वा वेषसादृश्यविप्रलब्धा वयमिहागताः । तत्क्षम्यताम्। (इति पादयोः पतति)

वासवदत्ता—(सरोषम् ।) अज्जउत्त उट्ठेहि उट्ठेहि । किं अज्जवि सहजाभिजादाए सेवाए दुक्खं अणुहवीअदि । [आर्यपुत्र उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । किमद्यापि सहजाभिजातायाः सेवया दुःखमनुभूयते ।]

देव्याः = वासवदत्तायाः । सहजाभिजात्यजनिता—सहजम् = स्वाभाविकम् आभिजात्यम् = कुलीनता, तेन जनिता = उत्पादितः नः = अस्माकम् । सेवा एव = आराधना एव (आसीत्) परम् = केवलम् । प्रेमाबन्धविवर्धिता—प्रेम्णः = प्रीतेः आबन्धेन = दृढसंसर्गेण विवर्धिता = वृद्धिं गता या तादृशीः या = मम हृदयसंवेद्या प्रीतिः = हृदयानुरक्तिः सा तु = तादृशी प्रीतिस्तु । त्वयि = सागरिकायाम् एव आस्ते इति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १८ ॥

सदृशम् = त्वद्योग्यम् । अकारणे = व्यर्थम् । उपालब्धुम् = जुगुप्सितुम् । त्वाम् = वासवदत्ताम् । मत्वा = ज्ञात्वा । वेषसादृश्यविप्रलब्धाः = वेषस्य = नेपथ्यस्य सादृश्यम् = एकरूप्यम् तेन विप्रलब्धाः = वञ्चिताः । सहजाभिजातायाः = स्वाभाविककुलीनायाः (मम वासवदत्तायाः) दुःखमनुभूयते = दुःखस्यानुभवं क्रियते, त्वया ।

से उत्पन्न हुई हमारी सेवा मात्र ही थी । परन्तु प्रेम के दृढ़ सम्बन्ध से बढ़ी हुई जो प्रीति है वह तो तुम पर ही है ॥ १८ ॥

वासवदत्ता—(सहसा आगे बढ़कर क्रोध के साथ) आर्यपुत्र ! आपने ठीक कहा, अनुकूल कहा ।

राजा—(देखकर लज्जा से) हे महारानी ! अकारण मुझे अपमानित मत करो । सच है कि तुम्हारे जैसा वेष होने के कारण वञ्चित हो हम तुम्हें ही समझ कर यहाँ आये हैं। अतः क्षमा कीजिये । (इस प्रकार पैरों पर गिर पड़ता है ।)

वासवदत्ता—(क्रोध सहित) आर्यपुत्र ! उठो, उठो । क्या आज भी स्वाभाविक कुलीन (मेरी) की सेवा से आप दुःख का अनुभव कर रहे हैं ।

राजा—(स्वगतम् ।) किमेतदपि श्रुतं देव्या । तत्सर्वथा देवीप्रसादनं प्रति निराशीभूताः स्मः । (अधोमुखस्तिष्ठति ।)

विदूषक:—भोदु तुमं किं उब्बन्धिअ अत्ताणअं वावादेसित्ति वेससारिस्समोहिदेण मए पिअवअस्सो एत्थो आणिदो । जइ मम वअणं ण पत्तिआअसि ता पेक्ख एतं लदापासम् । [भवति त्वं किमुद्बध्यात्मानं व्यापादयसीति वेषसादृश्यमोहितेन मया प्रियवयस्योऽत्रानीतः । यदि मम वचनं न प्रत्येषि तत्प्रेक्षस्वैतं लतापाशम् ।] (इति लतापाशं दर्शयति ।)

वासवदत्ता—(सकोपम् ।) कञ्चणमाले एदेण जेव्व लदापासेण बन्धिअ गेण्ह एणं बम्भणम् । एदं च दुव्विणीदं कण्णकं अग्गदो करेहि । [काञ्चनमाले, एतेनैव लतापाशेन बद्ध्वा गृहाणैनं ब्राह्मणम् । एतां च दुर्विनीतां कन्यकामग्रतः कुरु ।]

काञ्चनमाला—जं देवी आणवेदि । हदास अणुहव दाणिं अत्तणो दुण्णअस्स फलम् । साअरिए तुमं वि अग्गदो होहि । [यद्देव्याज्ञापयति । (लतापाशेन विदूषकं बध्नाति ।) हताश अनुभवेदानीमात्मनो दुर्नयस्य फलम् । सागरिके त्वमप्यग्रतो भव ।]

देवीप्रसादनम्—देव्याः = वासवदत्तायाः प्रसादनम् तत् ।

व्यापादयसि = हंसि । वेषसादृश्यमोहितेन–वेषस्य = नेपथ्यस्य सादृश्यम् तेन मोहितस्तेन = समानवेषवञ्चितेन । प्रत्येषि = विश्वसिषि । प्रेक्षस्व = अवलोकय । बद्ध्वा = आलंब्य । दुर्विनीताम् = दुष्टाम् । कन्यकाम् = सागरिकाम् । अग्रतः कुरु = समक्षमानय । दुर्नयस्य = अविनयस्य ।

राजा—(मन ही मन) क्या यह भी महारानी जी ने सुन लिया । अतः सब भाँति महारानी को प्रसन्न करने के प्रति हम निराश हो चुके हैं । (मुँह लटका कर खड़ा हो जाता है ।)

विदूषक—महारानी जी ! 'क्या तुम अपने को बाँधकर (फाँसी लगाकर) मार रही हो' इस प्रकार वेष की समानता से मोहित होकर मैं प्रिय मित्र को यहाँ ले आया । यदि मेरे वचनों पर आप को विश्वास नहीं है तो इस लतापाश को देखो !

(लतापाश दिखलाता है ।)

वासवदत्ता—(क्रोध सहित) काञ्चनमाले ! इस लतापाश से ही बाँधकर इस ब्राह्मण को पकड़ो । और इस दुष्टा कन्या (सागरिका) को आगे करो ।

काञ्चनमाला—जो महारानी जी की आज्ञा (लतापाश से विदूषक को बाँधती है) हे भग्न आशाओं वाले (विदूषक) ! अब अपनी दुष्टता का फल भोगो । सागरिके ! तुम भी आगे आओ ।

सागरिका--(स्वगतम् ।) हद्धी कधं अकिदपुण्णाए मए मरिदुं वि अत्तणो इच्छाए न पारिदम् । [हा धिक् कथमकृतपुण्यया मया मर्तुमप्यात्मन इच्छया न पारितम् ।]

विदूषकः—(सविषादं राजानमवलोक्य ।) भो वअस्स सुमरेहि मं अणाधं देवीए बन्धनादो विवज्जन्तं । [भो वयस्य, स्मर मामनाथं देव्या बन्धनाद् विपद्यमानम् ।]

(सर्वानादाय निष्क्रान्ता वासवदत्ता ।)

राजा—(सखेदम् ।) कष्टं भो कष्टम् ।

किं देव्याः कृतदीर्घरोषमुषितस्निग्धस्मितं तन्मुखं
त्रस्तां सागरिकां सुसंभृतरुषा किं तर्ज्यमानां तया ।

अकृतपुण्यया—न कृतं पुण्यं यया सा तया = पापिन्या । मया = सागरिकया । मर्तुम् = जीवितं त्यक्तुम् । इच्छया = अभिलाषया । विपद्यमानम् – म्रियमाणम् ।

अन्वयः—किम् अहम् कृतदीर्घरोषमुषितस्निग्धस्मितम् देव्याः तन्मुखम् चिन्तयामि ? किम् सुसम्भृतरुषा तया तर्ज्यमानाम् त्रस्ताम् सागरिकाम् (चिन्तयामि) किम् बध्वा इतः नीतम् विदूषकम् (चिन्तयामि) ? अहो इति सर्वाकारकृतव्यथः अहम् क्षणम् अपि निर्वृतिम् न प्राप्नोमि ।। १९ ।।

किमिति । किम् अहम् – राजा उदयनः । कृतदीर्घरोषमुषितस्निग्धस्मितम्—कृतः = आहितः यः दीर्घः = चिरव्यापकः रोषः = कामः, तेन मुषितम् = चोरितम् स्निग्धम् = मनोहारि, स्मितम् = ईषद् हास्यम् यस्य तत् तादृशम् । देव्याः = वासवदत्तायाः । तन्मुखम् = आनन्ददायिमुखम् । चिन्तयामि = शोचामि ? किम् सुसम्भृतरुषा—सुसम्भृता = विवृद्धा रुट् = रोषः यस्याः सा तया । तया = वासव-

---

सागरिका—(मन ही मन) धिक्कार है । क्या मैं पापिनी अपनी इच्छा से मर तक न सकी ।

विदूषक—(दुःखी होकर राजा को देखकर) हे मित्र, मुझ अनाथ को महारानी जी के बन्धन से मरते हुए याद कर लेना ।

(सबको लेकर वासवदत्ता निकल जाती है ।)

राजा—(खेद के साथ) अरे कष्ट है ! कष्ट है !

क्या मैं, महारानी के किये गये अत्यन्त क्रोध से चुराई गई स्निग्ध मुस्कान वाले उस मुख को सोचूँ ! क्या बढ़े हुए क्रोध वाली उस (महारानी वासवदत्ता) से डरी हुई

वद्ध्वा नीतमितो वसन्तकमहं किं चिन्तयामीत्यहो
सर्वाकारकृतव्यथः क्षणमपि प्राप्नोमि नो निर्वृतिम् ॥ १९ ॥

तत्किमिदानीमिह स्थितेन । देवीं प्रसादयितुमभ्यन्तरमेव प्रविशामि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति संकेतो नाम तृतीयोऽङ्कः ।

दत्तया तर्ज्यमानाम् = भर्त्स्यमानाम् । त्रस्ताम् = भीताम् । सागरिकाम् = तन्नाम्नीं प्रियाम् (चिन्तयामि) किम् बध्वा = संयम्य । इतः = अस्मात् स्थानात् । नीतम् = अन्यत्र प्रापितम् । विदूषकम् = स्ववयस्यम् वसन्तकम् । चिन्तयामि । अहो = हा धिक् । इति = इत्यम् । सर्वाकारकृतव्यथः-सर्वाकारेण = सर्वप्रकारेण कृता व्यथा पीडा यस्य सः अहम् (उदयनः) क्षणम् अपि = निमिषमात्रमपि निर्वृत्तिम् = शान्तिम् नो प्राप्नोमि = न लेभे । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १६ ॥

तत् = अत एव । इदानीम्=साम्प्रतम् । इह=अत्र । अभ्यन्तरम्=अन्तःपुरम् ।

इति परमेश्वरदीनपाण्डेय-प्रणीतायां सुधाटीकायां रत्नावली-
नाटिकायाः सङ्केतकं नाम तृतीयोऽङ्कः ।
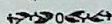
सागरिका को सोचूँ ! क्या बाँधकर यहाँ से अन्यत्र ले जाये गये विदूषक वसन्तक (प्रियमित्र) को सोचूँ । हाय ! इस प्रकार सम्पूर्ण ढंग से पीडित मैं (उदयन) क्षण भर को भी शान्ति नहीं पा रहा हूँ ॥ १९ ॥

अत एव अब यहाँ ठहरने से क्या (लाभ) । महारानीजी को प्रसन्न करने के लिए अन्तःपुर को ही चलें ।

(सभी निकल जाते हैं)

इस प्रकार संकेतक नामक तृतीय अङ्क की हिन्दी टीका समाप्त ।
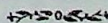
चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति गृहीतरत्नमाला सास्रा सुसंगता)

सुसंगता—(सकरुणं निःश्वस्य ।) हा पिअसहि साअरिए हा लज्जाउण्णि हा उदारसीले हा सहीजणवच्छले हा सोम्मदंसणे कहिं दाणिं तुमं मए पेक्खिदव्वा । अइ देव्वहदअ अअरुण असासमण्णरूअसोहा तादिसी तुए जइ णिम्मिदा ता कीस उण ईदिसं अवत्यन्तरं पाविदा । इअं अ रअणमाला जीविदणिरासाए ताए कस्सवि बम्हणस्स हत्थे पडिवादेसित्ति भणिअ मम हत्थे समप्पिदा । ता जाव कं पि बम्हण अण्णोसामि । अए एसो क्खु अज्जवसन्तओ इदो ज्जेव आअच्छदि । ता जाव एदस्स ज्जेव एदं पडिवादइस्सम् । [हा प्रियसखि सागरिके हा लज्जावति हा उदारशीले हा सखीजनवत्सले हा सौम्यदर्शने कुत्रेदानीं त्वं मया प्रेक्षितव्या । (इति रोदिति । ऊर्ध्वमवलोक्य निःश्वस्य च ।) अयि दैवहतक अकरुण असामान्यरूपशोभा तादृशी त्वया यदि निर्मिता तत्कस्मात्पुनरीदृशमवस्यान्तरं प्रापिता । इयं च रत्नमाला जीवितनिराशया तया कस्यापि ब्राह्मणस्य हस्ते प्रतिपादयेति भणित्वा मम हस्ते समर्पिता । तद्यावत्कमपि ब्राह्मणमन्विष्यामि । (परिक्रम्याग्रतो विलोक्य च ।) अये एष

'हा' इति सर्वत्र विषादे ('हा विषादाशुर्गतिषु' इत्यमरः) उदारशीले = उदाराशये । सखीजनवत्सले—सखीजने = आलिवर्गे वत्सला = प्रीतियुक्ता तत् सम्बुद्धौ । सौम्यदर्शने—सौम्यम् = चित्ताकर्षकम् दर्शनम् = अवलोकनम् यस्यास्तत्सम्बुद्धौ । प्रेक्षितव्या = अवलोकनीया । दैवहतक = दुर्दैव । हतकशब्दो निन्दासूचकोऽत्र । अकरुण = निर्दय । असामान्यरूपशोभा—असामान्यम् = असाधारणम् रूपम् शोभा = कान्तिश्च ते यस्याः सा । निर्मिता = रचिता । अवस्यान्तरम् = विपरीतदशाम् ।

(तब रत्नमाला लिये हुए रोती हुई सुसंगता प्रवेश करती है ।)

सुसंगता—(दुःख के साथ श्वास लेकर) हा प्रिय सखि, सागरिके ! हा लज्जावती हा उदारशीले, हा सखी वर्ग को प्रेम करने वाली, हा देखने में सुन्दर, मैं अब तुम्हें कहाँ देखूँगी । (इस प्रकार रोती है) (ऊपर देखकर और लम्बी साँस लेकर) अरे दुष्ट भाग्य ! निर्दय, यदि तूने असाधारण वैसी सुन्दर उसे बनाया था तो फिर उसे ऐसी विपरीत दशा में क्यों पहुँचा दिया । और यह रत्नमाला जीवन से निराश होकर उसने 'किसी ब्राह्मण को दे देना' यह कहकर मेरे हाथ में सौंप दी है । अतः जबतक किसी ब्राह्मण को खोज करूँगी

खल्वार्यवसन्तक इत एवागच्छति। तद्यावदेतस्मा एवैतां प्रतिपादयिष्यामि।]

(ततः प्रविशति प्रहृष्टो वसन्तकः।)

वसन्तकः—ही ही भो अज्ज क्खु पिअवअस्सेण पसादिदाए तत्तभो दीए वासवदत्ताए बन्धणादो मोचिअ सहत्थदिण्णेहिं मोदएहि चिरस्स ॰ त कालस्स उअरं मे सुपूरिदं किदम्। अण्णं च एदं पट्टंसुअजुअलं कण्णाभरणं अ दिण्णम्। ता जाव दाणिं गदुअ पिअवअस्सं पेक्खामि। [ही ही भो अद्य प्रियवयस्येन प्रसादितया तत्रभवत्या वासवदत्तया बन्धनान्मोचयित्वा स्वहस्तदत्तै-र्मोदकैश्चिरस्य तावत्कालस्योदरं मे सुपूरितं कृतम्। अन्यच्चेतत्पट्टांशुकयुगलं कर्णा-भरणं च दत्तम्। तद्यावदिदानीं गत्वा प्रियवयस्यं प्रेक्षे।]

(परिक्रामति।)

सुसंगता—(रुदती सहसोपसृत्य।) अज्ज वसन्तअ चिट्ठ दाव मुहुत्तअम् [आर्य वसन्तक तिष्ठ तावन्मुहूर्तम्]

जीवितनिराशया—जीवितेन = जीवनेन निराशया = आशाहीनया। तया = सागरिकया। प्रतिपादय = समर्पय। भणित्वा = कथयित्वा। अन्विष्यामि = गवेषयामि। प्रतिपादयिष्यामि = समर्पयिष्यामि।

प्रसादितया = प्रसन्नतां प्रापितया। तत्र भवत्या = पूज्यया। स्वहस्तदत्तैः = आत्मकरसमर्पितैः। सुपूरितम्। पट्टांशुकयुगलम् = पट्टनिर्मितवस्त्रद्वयम्। कर्णा-भरणम्—कर्णयोः = श्रोत्रयोः आभरणम् = आभूषणम्। प्रेक्षे = अवलोकयामि। मुहूर्त्तम् = क्षणम्।

(घूमकर और सामने देखकर) अरे यह श्रीमान् वसन्तक तो इधर ही आ रहे हैं। तो इन्हीं को समर्पित करूँगी।

(तब प्रसन्न वसन्तक प्रवेश करता है।)

वसन्तक—अहा हा अरे आज प्रिय मित्र के द्वारा प्रसन्न की गई पूजनीया वासवदत्ता ने बन्धन से खोलकर अपने हाथों से दिये लड्डुओं द्वारा बहुत समय के लिए मेरा पेट खूब भर दिया है और रेशमी दो वस्त्र तथा कर्णाभूषण भी दिये हैं। अतः प्रियमित्र के पास जाकर इन्हें दिखाता हूँ। (चलता है।)

सुसंगता—(रोती हुई सहसा आगे बढ़कर) आर्य वसन्तक! तब तक क्षणभर ठहरिये।

विदूषकः—(दृष्ट्वा ।) कधं सुसंगदा । सुसंगदे किंणिमित्तं रोदीअदि। ण क्खु साअरिआए अच्चाहिदं किंवि संवुत्तम् । [कथं सुसंगता । सुसंगते किंनिमित्तं रुद्यते । न खलु सागरिकाया अत्याहितं किमपि संवृत्तम् ।]

सुसंगता—अज्ज वसन्तअ एदं णिवेदइस्सम् । क्खु तवस्सिणी देवीए उज्जइणि णीअदित्ति पवादं कदुअ उवत्थिदे अद्धरत्तेण जाणीअदि कहिं णोदेत्ति । [आर्य वसन्तक एतदेव निवेदयिष्यामि । सा खलु तपस्विनी देव्या उज्जयिनीं नीयत इति प्रवादं कृत्वोपस्थितेऽर्धरात्रे न ज्ञायते कुत्र नीतेति ।]

विदूषकः—(सोद्वेगम् ।) अदिणिग्घिणं क्खु किदं देवीए। [अतिनिर्घृणं खलु कृतं देव्या ।]

सुसंगता—इअं अ रअणमाला ताए जीविदणिरासाए अज्जवसन्त अस्स हत्थे पडिवादेसित्ति भणिअ मम हत्थे समप्पिदा । ता गेण्हदु एदं अज्जो। [इयं च रत्नमाला तया जीवितनिराशया आर्यवसन्तकस्य हस्ते प्रतिपादयेति मम हस्ते समर्पिता । तद्गृह्णात्वेतामार्यः ।]

अत्याहितम् = महद्भयम् । ('अत्याहिदं महाभीतिः कर्मजीवानपेक्षि च' इत्यमरः ।) सम्वृत्तम् = सञ्जातम् ।

तपस्विनी = कृपार्हा । प्रवादम् = जनापवादम् । अर्द्धरात्रे=रात्रेरर्धम् अर्द्धरात्रस्तस्मिन् । अतिनिर्घृणम् = अत्यन्तघृणितम् । तया = सागरिकया । जीवितनिराशया— जीविते = जीवने निराशा यस्याः सा, तया । प्रतिपादय=सम्पादय ।

विदूषक—(देखकर) क्या सुसंगता है ? सुसंगते ! किस निमित्त रो रही हो ! क्या सागरिका पर तो कोई संकट नहीं आ पड़ा है ?

सुसंगता—आर्य वसन्तक ! यह बतलाऊँगी । 'वह बेचारी तो महारानी के द्वारा उज्जयिनी नगरी को ले जाई जा रही है' यह जनापवाद करके आधीरात को न जाने कहाँ ले जाई गई है ।

विदूषक—(उद्वेग के साथ) महारानी ने यह अत्यन्त घृणित कार्य किया है ।

सुसंगता—और यह रत्नमाला है । (जो कि) जीवन से निराश होकर उसने 'इसे आर्य वसन्तक के हाथ में सौंप देना' यह कहकर मेरे हाथ में सौंप दी (थी) । अतः इसे आप ले लें ।

विदूषकः—(सास्रम् ।) भोदि ण मे ईदिसे पत्थावे हत्था गेण्हिदुं पसरन्ति । [**भवति न म ईदृशे प्रस्तावे हस्तौ ग्रहीतुं प्रसरतः ।**]

(उभौ रुदितः ।)

सुसंगता—(अञ्जलिं बद्ध्वा) ताए ज्जेव अणुग्गहं करन्तो अङ्गीकरेदु एदं अज्जो । [**तस्या एवानुग्रहं कुर्वन्नङ्गीकरोत्वेतामार्यः ।**]

विदूषकः—(विचिन्त्य ।) अह वा उवणेहि । जेण इमाए ज्जेव्व साअरिआविरहदुक्खिदं पिअवअस्सं विणोदइस्सम् । [**अथवोपनय । येनानयैव सागरिकाविरहदुःखितं प्रियवयस्यं विनोदयिष्यामि ।**]

(सुसंगतोपनयति ।)

विदूषकः—(गृहीत्वा निर्वर्ण्य सविस्मयम् ।) सुसंगदे कुदो उण ताए ईदिसस्स अलंकारस्स समागमो । [**सुसंगते कुतः पुनस्तस्या ईदृशस्यालंकारस्य समागमः ।**]

सुसंगता—अज्ज मय वि सा कोदहलेण पुच्छिदा ज्जेव्रासि । [**आर्य मयापि सा कौतूहलेन पृष्टैवासीत् ।**]

ईदृशे प्रस्तावे = अतिमर्मपीडकदशायाम् । प्रसरतः = पुरोभवतः ।

तस्याः = सागरिकायाः । अनुग्रहम् = कृताम् अङ्गीकरोतु = स्वीकरोतु । उपनय = देहि । सागरिकाविरहदुःखितम् = सागरिकायाः विरहेण दुःखितम् = खिन्नम् । विनोदयिष्यामि = सुखयिष्यामि । निर्वर्ण्य = निपुणं निरीक्ष्य । तस्याः = सागरिकायाः । ईदृशस्य = एतावता मूल्यस्य । समागमः = प्राप्तिः । कौतूहलेन = कौतुकेन ।

विदूषक—(रोता हुआ)-श्रीमती जी, ऐसे प्रस्ताव में (इस दशा में) रत्नमाला लेने के लिए मेरे हाथ नहीं फैल रहे हैं । **(दोनों रोते हैं ।)**

सुसंगता—(हाथ जोड़कर) उसी पर कृपा करते हुए आप इसे स्वीकार कर लीजिए ।

विदूषक—(सोचकर) अथवा लाओ जिससे कि इस (रत्नमाला) के द्वारा ही सागरिका के वियोग से दुःखी प्रिय मित्र को प्रसन्न करूँगा । **(सुसंगता देती है ।)**

विदूषक—(लेकर निपुणता से देखकर विस्मय के सहित) फिर ऐसे बहुमूल्य आभूषण की उसे कहाँ से प्राप्ति हुई ।

सुसंगता—हे आर्य ! मैंने भी कौतूहलवश उससे ऐसा ही पूछा था ।

विदूषकः—तदो ताए किं भणिदम् । [ततस्तया किं भणितम् ।]

सुसंगता—तदो सा उद्धं पेक्खिअ दीहं णिस्ससिअ सुसंगदे किं दाणि तुए एदाए कधाएत्ति भणिअ रोदिदुं पउत्ता । [ततः सोर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वस्य सुसंगते किमिदानीं तवैतया कथयेति भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता ।]

विदूषकः—ण कहिदं ज्जेव सामण्णजणदुल्लहेण इमिणा परिच्छदेण सव्वहा महाकुलप्पसूदाए ताए होदव्वंत्ति। सुसंगदे पिअवअस्सो दाणि कहिं । [ननु कथितमेव सामान्यजनदुर्लभेनानेन परिच्छदेन सर्वथा महाकुलप्रसूतया तया भवितव्यमिति । सुसंगते प्रियवयस्य इदानीं कुत्र ।]

सुसंगता—अज्ज एसो क्खु भट्टा देवीभवणाओ णिक्कमिअ फडिअसिलामण्डवं गदो । ता गच्छदु अज्जो । अहं वि देवीए पासवत्तिणी भविस्सम् । [आर्य एष खलु भर्ता देवीभवनान्निष्क्रम्य स्फटिकशिलामण्डपं गतः । तद्गच्छत्वार्यः । अहमपि देव्याः पार्श्ववर्तिनी भविष्यामि ।]

विदूषकः—एव्वम् । [एवम् ।]

(इति निष्क्रान्तौ ।)

इति प्रवेशकः ।

एतया कथया = अनेन वार्त्तालापेन । भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता = रुदितवती । सामान्यजनदुर्लभेन = सामान्यः = साधारणः यो जनः = व्यक्तिः, तेन दुर्लभेन = दुष्प्राप्येण । परिच्छदेन = अलङ्कारेण । महाकुलप्रसूतया—महाकुले = उच्चवंशे प्रसूतया = समुत्पन्नया । देवीभवनात् = राज्ञीप्रासादात् । निष्क्रम्य = बहिर्भूय । पार्श्ववर्त्तिनी = समीपवर्त्तिनी ।

विदूषक—तब उसने क्या कहा ?

सुसंगता—तब वह ऊपर देखकर और लम्बी श्वास लेकर—"सुसंगते ! अब तुझे इस कथन से क्या लाभ है" यह कह कर रोने लगी ।

विदूषक—सामान्य जन दुर्लभ इस आभूषण ने ही वास्तव में बतला दिया कि उसे सर्वथा महान् कुल में उत्पन्न होना चाहिए। सुसंगते ! इस समय प्रिय मित्र कहाँ है ?

सुसंगता—श्रीमान् जी, यह महाराज तो महारानी जी के महल से निकल कर स्फटिकशिला मण्डप को गये हैं । अतः आप जायें । मैं भी महारानी जी के पास चलूँगी ।

विदूषक—ऐसा ही (करें) । (दोनों निकल जाते हैं ।)

इति प्रवेशक ।

(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा ।)

राजा—(विचिन्त्य ।)

सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्त्याधिकं
वैलक्ष्येण परेण पादपतनैर्वाक्यैः सखीनां मुहुः ।
प्रत्यापत्तिमुपागता न हि तथा देवी रुदत्या यथा
प्रक्षाल्येव तयैव बाष्पसलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम् ॥ १ ॥

(सोत्कण्ठं निःश्वस्य ।) इदानीं देव्यां प्रसन्नायां सागरिकाचिन्तैव केवलां मां बाधते । कुतः—

अन्वयः—सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा अधिकम् चित्तानुवृत्त्या परेण वैलक्ष्येण पादपतनैः मुहुः सखीनाम् वाक्यैः देवी तथा प्रत्यापत्तिम् नहि उपगता यथा रुदत्या तया स्वयम् एव बाष्पसलिलैः प्रक्षाल्य इव कोपः अपनीतः ॥ १ ॥

सव्याजैरिति । सव्याजैः—व्याजेन = छलेन सहितैः = युक्तैः । शपथैः = शपनैः । प्रियेण = मधुरेण । वचसा = वचनेन । अधिकम् = अत्यन्तम् । चित्तानुवृत्त्या—चित्तस्य = मनसः अनुवृत्त्या अनुवर्त्तनेन । परेण = महता । वैलक्ष्येण = लज्जया । पादपतनैः = चरणपातैः । मुहुः = वारम्वारम् सखीनाम् = आलीनाम् । वाक्यैः = वचनैः । देवी—राज्ञी वासवदत्ता । तथा = तावतीम् प्रत्यापत्तिम् = प्रकृतिस्थां दशाम् । नहि = नैव । उपागता=आयाता । यथा = येन प्रकारेण रुदत्या = रोदनं कुर्वत्या । तया = वासवदत्तया । स्वयमेव = आत्मनैव । बाष्पसलिलैः= अश्रुजलैः, प्रक्षाल्य इव = परिमृज्य इव । कोपः = मद्विषयः क्रोधः । अपनीतः = दूरीकृतः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १ ॥

इदानीम् = साम्प्रतम् । देव्याम् = वासवदत्तायाम् । प्रसन्नायां = प्रसादितायाम् । माम् = उदयनम् । बाधते = पीडयति ।

(आसन स्थित राजा का प्रवेश)

राजा—(सोचकर)

छल पूर्ण सौगन्दों, प्रिय वचनों, अनुकूल मनोवृत्ति, अतीव लज्जा, पैरों पर पड़ने तथा बार-बार सखियों के वाक्यों से महारानी वैसी प्रसन्न नहीं हुई जैसी कि रोती-रोती उन्होंने (महारानी ने) स्वयमेव अश्रुजल से धोकर क्रोध दूर कर दिया ॥ १ ॥

(उत्कण्ठा से उच्छ्वास लेकर) अब महारानी जी के प्रसन्न हो जाने पर केवल सागरिका की ही चिन्ता मुझे पीडित कर रही है । क्योंकि—

अम्भोजगर्भसुकुमारतनुस्तदाऽसौ
कण्ठग्रहे प्रथमरागघने विलीय।
सद्यः पतन्मदनमार्गणरन्ध्रमार्गै-
र्मन्ये मम प्रियतमा हृदयं प्रविष्टा ॥ २ ॥

(विचिन्त्य ।) योऽपि मे विश्वासस्थानं वसन्तकः सोऽपि देव्या संयतस्तिष्ठति । तत्कस्याग्रे बाष्पमोक्षं करिष्ये । (इति निःश्वसिति ।)

(ततः प्रविशति वसन्तकः ।)

वसन्तकः—(राजानं दृष्ट्वा ।) एसो क्खु णिब्भरोक्कण्ठापरिक्खामं वि सलाघणिज्जलावण्णं तणुं समुव्वहन्तो उदिओ विअ दुदिआचन्दो अहिअअरं

अन्वयः—अम्भोजगर्भसुकुमारतनुः असौ प्रियतमा प्रथमरागघने कण्ठग्रहे तथा विलीय सद्यः पतन्मदनमार्गणरन्ध्रमार्गैः मम हृदयम् प्रविष्टा मन्ये ॥ २ ॥

अम्भोजेति । अम्भोजगर्भसुकुमारतनुः—अम्भोजस्य = कमलस्य गर्भः = मध्यभागः स इव सुकुमारा = मृदुतमा तनुः = कायः यस्याः सा । असौ = एषा । प्रियतमाः = प्राणवल्लभा प्रथमरागघने = प्रथमः = नूतनः यः रागः = अनुरागः, तेन घने = प्रगाढे । कण्ठग्रहे = गलाऽऽलिङ्गने । तथा = तेन प्रकारेण । विलीय= विलयनमिव कृत्वा । सद्यः = झटिति । पतन्मदनमार्गणरन्ध्रमार्गैः = पतन्तः ये मदनस्य = कामदेवस्य मार्गणाः = बाणाः तेषाम् रन्ध्राणि = छिद्राणि तान्येव मार्गाः = अन्तःप्रवेशपथाः, तैः । मम = राज्ञः उदयनस्य । हृदयम् = चित्तम् । प्रविष्टा-गता (इत्यहम्) मन्ये = सम्भावयामि । अत्रोत्प्रेक्षाकाव्यलिङ्गोपमालङ्काराणां सङ्करः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २ ॥

विश्वासस्थानम् = विश्वसनीयः । संयतः-नियन्त्रितः । बाष्पमोक्षम्-रोदनम् ।

कमलगर्भ के समान सुकुमार शरीर वाली वह प्रियतमा नूतन अनुराग से प्रगाढ़ कण्ठालिङ्गन में उस प्रकार विलीन होकर शीघ्र गिरते हुए कामदेव के बाणों के छिद्र मार्गों से मानों मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गई हो ॥ २ ॥

(सोचकर) मेरा जो विश्वसनीय वसन्तक था वह भी महारानी के द्वारा कैद कर लिया गया है । किसके सामने रोऊँ (जोर का श्वास लेती है ।)

(तब वसन्तक प्रवेश करता है ।)

वसन्तक--(राजा को देखकर) यह अतिशय उत्कण्ठा से कृश होते हुए भी प्रशंसनीय लावण्य वाला क्षीण शरीर धारण किये हुये भी उदित हुए द्वितीया के चन्द्रमा के

सोहदि पिअवअस्सो। ता जाव णं उवसप्पामि। सोत्थि भवदे। दिट्ठिआ दिट्ठोसि देवीहत्थगदेणावि मए पुणोवि एदेहिं अच्छीहिं। [एष खलु निर्भरोत्कण्ठापरिक्षामामपि श्लाघनीयलावण्यां तनुं समुद्वहन्नुचित इव द्वितीयाचन्द्रोऽधिकतरं शोभते प्रियवयस्यः। तद्यावदेनमुपसर्पामि। (उपसृत्य।) स्वस्ति भवते। दिष्ट्या दृष्टोऽसि देवीहस्तगतेनापि मया पुनरप्येताभ्यामक्षिभ्याम्।]

राजा—(दृष्ट्वा सहर्षम्।) अये वसन्तकः प्राप्तः। सखे परिष्वजस्व माम्।

विदूषकः—(परिष्वजति।)

राजा—वयस्य वेषेणैव निवेदितस्ते देव्याः प्रसादः। तत्कथ्यतामिदानीं सागरिकायाः का वार्तेति।

(विदूषकः सवैलक्ष्यमधोमुखस्तिष्ठति।)

राजा—वयस्य किं न कथयसि।

विदूषकः—अप्पिअं दे णिवेदिदुं ण पारेमि। [अप्रियं ते निवेदयितुं न पारयामि।]

निर्भरोत्कण्ठापरिक्षामाम् = निर्भरा = समृद्धा या उत्कण्ठा = उत्सुकता तया परिक्षामाम् = अतिकृशाम्। श्लाघनीयलावण्याम्—श्लाघनीयम् = प्रशंसनीयम् लावण्यम् = रूपसौदर्यम् यस्याः सा, ताम्। तनुम् = कायम्। समुद्वहन् = धारयन्। एवम् = प्रियवयस्यम्। देवीहस्तगतेन—देव्याः = वासवदत्तायाः हस्ते करे गतेन = यातेन। अक्षिभ्याम् = चक्षुर्भ्याम्। परिष्वजस्व = गाढमालिङ्ग। वेषेण = परिच्छदेन। निवेदितः = प्रकटितः। का वार्त्ता = कः समाचारः। पारयामि = शक्नोमि।

समान प्रियमित्र शोभित हो रहे हैं। अतः तब तक इनके पास ही चलता हूँ। (आगे बढ़कर) आपका कल्याण हो। सौभाग्य से महारानी जी के हाथ पड़कर भी मैं फिर से इन आँखों से आपको देख रहा हूँ।

राजा—(देखकर प्रसन्नता से) अरे वसन्तक मिल गये। मित्र मुझे आलिङ्गन करो।

विदूषक—(आलिंगन करता है।)

राजा—मित्र! तुम्हारी वेषभूषा ही महारानी का प्रसन्न होना बतला रही है। अतः अब सागरिका का समाचार क्या है यह बतलाओ।

(विदूषक लज्जा के साथ मुँह नीचा करके खड़ा रहता है।)

राजा—मित्र, कहते क्यों नहीं हो।

विदूषक—आपसे अप्रिय निवेदन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।

राजा—(सोद्वेगम् ।) वयस्य कथमप्रियम् । व्यक्तमुत्सृष्टं जीवितं तया। हा प्रिये सागरिके। (इति मूर्च्छति ।)

विदूषकः—(ससंभ्रमम् ।) समस्ससदु समस्ससदु पिअवअस्सो। [समाश्वसितु समाश्वसितु प्रियवयस्यः ।]

राजा—(समाश्वस्य । सास्रम् ।)

प्राणाः परित्यजत काममदक्षिणं मां
रे दक्षिणा भवत मद्वचनं कुरुध्वम्।
शीघ्रं न यात यदि तन्मुषिताः स्थ नूनं
याता सुदूरमधुना गजगामिनी सा ॥ ३ ॥

सोद्वेगम् = मनोव्यथया सहितम् । व्यक्तम् = स्पष्टम् । उत्सृष्टम् = परित्यक्तम् । जीवितम् = जीवनम् । तया = सागरिकया ।

समाश्वसितु = संज्ञां लभताम् ।

अन्वयः—रे प्राणाः कामम् अदक्षिणम् माम् परित्यजत, दक्षिणाः भवत, मद्वचनम् कुरुध्वम् यदि शीघ्रम् न यात तत् नूनम् मुषिताः स्थ (यतः) गजगामिनी सा अधुना सुदूरम् याता ॥ ३ ॥

प्राणा इति । रे प्राणाः = हे असवः । कामम् = अत्यन्तम् । अदक्षिणम् = अनुदारम् । माम् = उदयनम् । परित्यजत = मुञ्चत । दक्षिणाः = अनुकूलाः । भवत = वर्त्तध्वम् । मद्वचनम् = मत्कथनम् । कुरुध्वम् = विधत्त । यदि = चेत् । शीघ्रम् = द्रुतम् । न यात = न गच्छत । तत् = तर्हि । नूनम् = खलु । मुषिताः स्थ = वञ्चिताः भवथ । (यतः) गजगामिनी—गज इव गमनम् = व्रजनम् यस्याः सा । सा = मम प्रिया सागरिका । अधुना = साम्प्रतम् । दूरम्=सुदूरम् । याता= गता, मृतेत्याशयः । अत्र पर्यायोक्तमलंकारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ३ ॥

राजा—(दुःखी मन से) मित्र ! अप्रिय कैसा ! स्पष्ट है कि उसने प्राण त्याग दिये। हा प्रिये सागरिके ! (इस प्रकार मूर्च्छित हो जाता है ।)

विदूषक—(सहसा) प्रिय मित्र धैर्य रखें, धैर्य रखें।

राजा—(होश में आकर, रुदन करता हुआ)

हे प्राणो ! अत्यन्त अनुदार मुझ उदयन को तुम छोड़ दो (मेरे) अनुकूल बन जाओ। मेरा कहना मान लो। यदि तुम शीघ्र न गये तो अवश्यमेव तुम ठग लिये गये होंगे। क्योंकि हाथी के समान मतवाली चाल चलने वाली मेरी प्रियतमा (सागरिका) अब बहुत दूर जा चुकी है। (अर्थात् मर चुकी है।) ॥ ३ ॥

विदूषकः—भो वअस्स मा अण्णधा संभावेहि। सा क्खु तवस्सिणी देवीए उज्जइणिं पेसिदत्ति सुणीअदि। अदो मए अप्पिअं त्ति भणिदम्। [भो वयस्य, माऽन्यथा संभावय। सा खलु तपस्विनी देव्योज्जयिनीं प्रेषितेति श्रूयते। अतो मयाऽप्रियमिति भणितम्।]

राजा—कथमुज्जयिनीं प्रेषिता। अहो निरनुरोधा मयि देवी। वयस्य केन तवैतदाख्यातम्।

विदूषकः—(सास्रं निःश्वस्य।) भो सुसंगदाए। अण्णं च। मम हत्थे ताए किंवि णिमित्तं इअं रअणमाला पेसिदा। [भोः सुसंगतया। अन्यच्च। मम हस्ते तया किमपि निमित्तमियं रत्नमाला प्रेषिता।]

राजा—किमपरम्। मां समाश्वासयितुम्। तद्वयस्योपनय।

(विदूषक उपनयति।)

राजा—(गृहीत्वा रत्नमालां निर्वर्ण्य हृदये निधाय।) अहह—

अन्यथा = अन्यप्रकारेण। सम्भावय = सम्भावनां कुरु। तपस्विनी = वराका। अप्रियम् = दुःखकरम्।

निरनुरोधा—निर्गतः अनुरोधः = अनुवर्त्तनम् यस्याः सा तादृशी। ('अनुरोधोऽनुवर्त्तनम्' इत्यमरः।) आख्यातम् = कथितम्। अपरम् = अन्यत्। अहह इति खेदे।

विदूषक—मित्र ! अन्य प्रकार की सम्भावना मत करो। 'वह बेचारी तो महारानी के द्वारा उज्जयिनी नगरी को भेज दी गई है' ऐसा सुना जाता है। इसीलिए मैंने अप्रिय शब्द कह दिया।

राजा—क्या उज्जयिनी को भेज दी गई है ! अरे महारानी ने मुझ पर बिल्कुल अनुरोध नहीं किया। मित्र, तुमसे यह किसने कहा ?

विदूषक—(रोता हुआ लम्बी साँस लेकर) अरे सुसंगता ने। और भी (सुनो) उसने किसी कारणवश यह रत्नमाला भेजी है।

राजा—और क्या (कारण सम्भव है) मुझे ढाढस दिलाने के लिए। तो मित्र ! लाओ।

(विदूषक देता है।)

राजा—(रत्नमाला लेकर, भली-भाँति देखकर और छाती से लगाकर) अहह—

कण्ठाश्लेषं समासाद्य तस्याः प्रभ्रष्टयाऽनया ।
तुल्यावस्था सखीवेयं तनुराश्वास्यते मम ॥ ४ ॥

वयस्य त्वं परिधत्स्वैताम् । येन वयमेनां तावद् दृष्ट्वा धृतिं करिष्यामः ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [यद्भवानाज्ञापयति ।] (परिदधाति ।)

राजा—(सास्रम् ।) वयस्य दुर्लभं पुनर्दर्शनं प्रियायाः ।

विदूषकः—(दिशोऽवलोक्य सभयम् ।) भो वअस्स मा एव्वं उच्चं मन्तेहि । कआवि को वि देवीए इह संचरदि । [भो वयस्य, मैवमुच्चैर्मन्त्रयस्व कदापि कोऽपि देव्या इह संचरति ।]

(ततः प्रविशति वेत्रहस्ता वसुन्धरा ।)

वसुन्धरा—(उपसृत्य ।) जअदु जअदु भट्टा । भट्टा एसो क्खु रुमण्णदो

अन्वयः—तस्याः कण्ठाश्लेषम् समासाद्य प्रभ्रष्टया अनया तुल्यावस्था इयम् मम तनुः सखी इव समाश्वास्यते ॥ ४ ॥

कण्ठेति । तस्याः = प्रियायाः सागरिकायाः । कण्ठाश्लेषम्—कण्ठस्य=ग्रीवायाः आश्लेषम् = आलिङ्गनम् । समासाद्य = प्राप्य । प्रभ्रष्टया = ततः पृथग्भूतया । अनया = रत्नमालया । तुल्यावस्था-तुल्या = समाना अवस्था = दशा यस्याः सा । इयम् = एषा । मम = उदयनस्य । तनुः = शरीरम् । सखी इव = आलिसमा । समाश्वास्यते = सम्भाव्यते । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४ ॥

परिधत्स्व = धारय । एनाम् = रत्नमालाम् । धृतिम् = धैर्यम् । परिदधाति = धारयति । दिशः = इतस्ततः । मन्त्रयस्व = भण । वसुन्धरा = तन्नाम प्रतीहारी ।

उस प्रियतमा सागरिका के गले का आलिङ्गन पाकर उससे पृथक् हुई यह रत्नमाला समानदशा वाली मेरी इस देह को सखी के समान ही आश्वासन दे रही है ॥ ४ ॥

मित्र, तुम इसे (रत्नमाला को) पहन लो । जिससे कि हम इसी को देखकर धैर्य धारण करें ।

विदूषक—अरे जैसी आपकी आज्ञा (पहनता है ।)

राजा—(रोकर) मित्र ! प्रियतमा का पुनः दर्शन हो पाना दुर्लभ है ।

विदूषक—(डरकर इधर-उधर देखकर) हे मित्र ! ऐसा जोर से मत कहो । कदाचित् कोई महारानी जी की सेविका आदि इधर से निकल रही हो ।

(तब हाथ में बेंत लिए हुए वसुन्धरा प्रवेश करती है ।)

वसुन्धरा—(आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, जय हो । महाराज, यह

भाइणेओ विजअवम्मा पिअं किंपि णिवेविदुकामो दुआरे चिट्ठदि। [जयतु जयतु भर्ता। भर्तः एष खलु रुमण्वतो भागिनेयो विजयवर्मा प्रियं किमपि निवेदयितुकामो द्वारे तिष्ठति।]

राजा—वसुन्धरे अविलम्बितं प्रवेशय।

वसुन्धरा—जं देवो आणवेदि। विजअवम्म एसो क्खु भट्टा। ता उपसप्पदु अज्जो। [यद्देव आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य विजयवर्मणा सह पुनः प्रविश्य।) विजयवर्मन् एष खलु भर्ता। तदुपसर्पत्वार्यः।]

विजयवर्मा–(उपसृत्य।) जयतु जयतु देवः। देव दिष्ट्या वर्धसे रुमण्वतो विजयेन।

राजा—साधु रुमण्वन् साधु। अचिरान्महत्प्रयोजनमनुष्ठितम्। विजयवर्मन् इत आस्यताम्।

(विजयवर्मोपविशति।)

राजा—विजयवर्मन् जितः कोसलाधिपतिः ?

विजयवर्मा—देवस्य प्रभावेण।

रुमण्वतः = वत्सराजसेनानायकस्य। भागिनेयः = भगिनीपुत्रः।

अविलम्बितम् = विलम्बेन बिना। भर्त्ता = उदयनः। अचिरात् = अल्पेन कालेन। महत्प्रयोजनम् = महत्कार्यम्। अनुष्ठितम् = कृतम्। देवस्य = भवतः।

रुमण्वान् (सेनापति) के भानजे (भगिनी पुत्र) विजयवर्मा कुछ प्रिय समाचार निवेदन करने के लिए द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—वसुन्धरे ! शीघ्र प्रविष्ट करो।

वसुन्धरा—जैसी महाराज की आज्ञा। (निकल कर तथा पुनः विजयवर्मा के साथ प्रवेश कर) विजयवर्मन् ! यही महाराज हैं। अतः आप बैठ जायें।

विजयवर्मा—(बढ़कर) महाराज की जय हो, जय हो। महाराज, सौभाग्य से (सेनापति) रुमण्वान् की विजय से आपको बधाई है।

राजा—शाबास विजयवर्मन् शाबास। शीघ्र ही महान् कार्य कर लिया। विजयवर्मन इधर बैठिये।

(विजयवर्मा बैठ जाता है।)

राजा—विजयवर्मन् ! क्या कोशल नरेश को जीत लिया है ?

विजयवर्मा—महाराजजी के प्रभाव से (कोशल नरेश को जीत लिया गया है।)

राजा—विजयवर्मन् तत्कथय कथमिति । विस्तरतः श्रोतुमिच्छामि ।

विजयवर्मा—देव श्रूयताम् । वयमितो देवादेशात्कतिपयैरेवाहोभिरनेककरितुरगपत्तिदुर्निवारेण महता बलसमूहेन गत्वा विन्ध्यदुर्गावस्थितस्य कोसलाधिपतेर्द्वारमवष्टभ्य सेनाः समावेशयितुमारब्धाः ।

राजा—ततस्ततः ।

विजयवर्मा—ततः कोसलाधिपतिरपि दर्पात्परिभवमसहमानो हास्तिकप्रायमशेषमात्मसैन्यं सज्जीकृतवान् ।

विदूषकः—भोः लहुं आचक्ख । वेवदि विअ मे हिअअम् । [भो लघ्वाचक्ष्व । वेपत इव मे हृदयम् ।]

इतः = अस्मात् स्थानात् । देवादेशात्—देवस्य = भवतः आदेशात् = आज्ञायाः अहोभिः = दिवसैः । अनेककरितुरगपत्तिदुर्निवारेण = अनेके = बहवः करिणश्च = हस्तिनश्च तुरगाश्च = अश्वाश्च पत्तयश्च = पदातयश्च इति अनेककरितुरगपत्तयः, तेन दुर्निवारेण = दुःखेन निवारयितुं शक्येन । महता = विशालेन । बलसमूहेन = सैन्यसमूहेन । विन्ध्यदुर्गावस्थितस्य–विन्ध्यदुर्गे अवस्थितस्य = वर्त्तमानस्य । अवष्टभ्य = अवरुध्य । समावेशयितुम् = पुरीरोधाय व्यवस्थापयितुम् । आरब्धाः = आरब्धवन्तः ।

अतिदर्पात् = अतिगर्वात् । परिभवम् = पराजयम् । असहमानः = सोढुमशक्तः सन् । हस्तिकप्रायम्—हस्तीनाम् = करीणाम् समूहः = हास्तिकम् तत्प्रायम् = तद्बहुलम् । सज्जीकृतवान् = सन्नद्धं कृतवान् ।

लघु = द्रुतम् । आचक्ष्व = कथय । वेपते = कम्पते ।

राजा—विजयवर्मन् ! तो कहो किस प्रकार (विजय प्राप्त की ।) ? विस्तार से सुनना चाहता हूँ ।

विजयवर्मा—महाराज, सुनिये । मैं यहाँ से आपकी आज्ञा से कुछ ही दिनों से अनेक हाथी-घोड़े, पैदल आदि दुर्जेय बल समूह (सेना) के साथ जाकर विन्ध्य दुर्ग में अवस्थित कोशल नरेश के द्वार को घेर कर सेना ने नगर में प्रवेश करना आरम्भ कर दिया ।

राजा—फिर (क्या हुआ) ?

विजयवर्मा—तब कोसल नरेश ने अत्यन्त अभिमान से पराजय को सहन न करते हुए एक मात्र अपनी हाथियों की सेना को तैयार किया ।

विदूषक—अरे शीघ्र कहो । मेरा हृदय काँप सा रहा है ।

राजा—ततस्ततः ।

विजयवर्मा—देव कृतनिश्चयश्चासौ—

योद्धुं निर्गत्य विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्विभागान्
विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन् ।
वेगाद् बाणान् विमुञ्चन् समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिर्निपत्य
प्रत्यैच्छद्वाञ्छिताप्तिर्द्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान् क्षणेन ॥ ५ ॥

अन्वयः—तत्क्षणम् अपरेण विन्ध्येन इव द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन दिग्विभागान् रुन्धन् विन्ध्यात् निर्गत्य योद्धुम् अभिमुखः अभवत् । (अथ) समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिः रुमण्वान् बाणान् विमुञ्चन् वेगात् क्षणेन निपत्य वाञ्छिताप्तिद्विगुणितरभसः (सन्) तम् प्रत्यैच्छत् ॥ ५ ॥

योद्धुमिति । तत्क्षणम् = तत्कालम् । अपरेण = अन्येन । विन्ध्येन = विन्ध्याचलेन इव = यथा । द्विपतिपृतनापीडबन्धेन—द्वाभ्याम् मुखशुण्डाभ्याम् पिबन्तीति द्विपाः = गजाः, तेषां पत्तयः = स्वामिनः = महागजाः, तेषां या पृतना = सेना तस्याः पीडबन्धेन = घनव्यूहरचनया । दिग्विभागान् = दिशां = काष्ठानाम् विभागान् = अन्तरालान् । रुन्धन् = व्याप्नुवन् । विन्ध्यात् = विन्ध्यपर्वतात् । निर्गत्य = निःसृत्य । योद्धुम् = युद्धं कर्त्तुम् । अभिमुखः = पुरोवर्त्ती । अभवत् = बभूव । (अथ) समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिः—समदानाम् = मदस्राविणाम्, करिणाम् = हस्तीनाम् या घटा = पंक्तिसमूहः तया उत्पिष्टाः = चूर्णीकृताः पत्तयः = पदातयः येन स तादृशः । रुमण्वान् = तन्नामकः सेनापतिः । बाणान् = शरान् ! विमुञ्चन् = उत्सृजन् । वेगात् = तरसा । क्षणेन = निमिषेण निपत्य = द्रुतमाक्रम्य । वाञ्छिताप्तिद्विगुणितरभसः—वाञ्छितस्य = अभीप्सितस्य शत्रोः, आप्त्या = प्राप्त्या द्विगुणितः = वृद्धिगतः रभसः = वेगः यस्य तादृशः सन् । तम् = शत्रुम् कोशलपतिम् । प्रत्यैच्छत् =

राजा—फिर क्या हुआ ?

विजयवर्मा—महाराज ! दृढ़ निश्चय किये हुए वह (कोशल नरेश)—

तत्काल दूसरे विन्ध्याचल के समान विशाल हाथियों की सेना की घनी व्यूह रचना से सभी दिशाओं को व्याप्त करते हुए विन्ध्याचल से निकल कर युद्ध करने के लिए सामने आये । तदनन्तर मतवाले हाथियों के पंक्ति-समूह से चकना चूर किये गये पैदल सेना वाले रुमण्वान् (सेनापति) बाणों को छोड़ते हुए तेजी से क्षण भर में ही आक्रमण करके अभीष्ट शत्रु के मिल जाने से दुगने जोश के साथ उन (कोशल नरेश) के सामने पहुँच गये ॥ ५ ॥

अपि च—

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमाङ्गे क्षणं
व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्वलद्वह्निनि ।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभवन्-
न्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ॥ ६ ॥

प्रतीष्टवान् । अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः, सात्वतीवृत्तिः, वीररसः गौडीरीतिः स्रग्धरावृत्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमाङ्गे, क्षणम्, व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे, वर्मोद्वलद्वह्निनि आजिमुखे भङ्गप्रतीपीभवन् मत्तद्विपस्थः सः कोसलाधिपतिः आहूय एकेन एव रुमण्वता शरशतैः हतः ॥ ६ ॥

अस्त्रेति । अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमाङ्गे—अस्त्रैः = आयुधैः व्यस्तानि = क्षिप्तानि शिरस्त्राणि लौहनिर्मितानि शिरोरक्षासाधनानि यत्र च तानि शस्त्राणि = प्रहरणानि तेषां कषणेन = प्रहारेण उत्कृत्तानि = छिन्नानि उत्तमाङ्गानि = शिरांसि यस्मिन् तादृशे । क्षणम् = मुहूर्त्तकालम् । व्यूढा सृक्सरिति—व्यूढा = विस्तृता, असृजः = रक्तस्य सरित् = नदी यस्मिन् तादृशे स्वनत्प्रहरणे—स्वनन्ति = शब्दायमानानि प्रहरणानि = आयुधानि यस्मिन् तादृशे । वर्मोद्वलद्वह्निनि—वर्मभ्यः कवचेभ्यः उद्वलन् = प्रकटीभवन् वह्निः = अग्निः यत्र तादृशे । आजिमुखे—आजेः = युद्धस्य मुखे = प्रारम्भे भङ्गप्रतीपीभवन् = भङ्गस्य = स्वसैन्यपलायनस्य प्रतीपीभवन् = अवरोद्धुमुद्युञ्जानः, स्वसैन्यपलायनं निवारयन्नित्यर्थः । मत्तद्विपस्थः—मत्तः = मदयुक्तः यः द्विपः = हस्ती तत्र तिष्ठतीति स्थः = वर्त्तमानः सः कोसलाधिपतिः = सः कोसलनरेशः । आहूय = आकार्य । एकेन = एकाकिना एव रुमण्वता = तन्नामकेन भवत्सेनापतिना । शरशतैः = शतसंख्याकैः बाणैः हतः = मारितः । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६ ॥

और भी—अस्त्रों से इधर-उधर शिरस्त्राण (लोहे से बने हुए शिर रक्षक टोप) फेंके जाने लगे, शस्त्रों के प्रहार से काटकर शिर (मुण्ड) फेंके जाने लगे । क्षण भर में विशाल रक्त की नदी बहने लगी, आयुधों की परस्पर प्रहारों से खनखनाहट होने लगी, कवचों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं । उस युद्ध के आरम्भ काल में अपनी भागती हुई सेना को रोकते हुए मत्त हाथी पर बैठे हुये उस कोशल नरेश को ललकार कर अकेले रुमण्वान् ने ही सैकड़ों बाणों से उसका वध कर दिया ॥ ६ ॥

विदूषकः—जअदु जअदु भवं। जितं अम्हेहिं [जयतु जयतु भवान् । जितमस्माभिः ।] (इत्युत्थाय नृत्यति ।)

राजा—साधु कोसलपते साधु। मृत्युरपि ते श्लाघ्यो यस्य शत्रवोऽप्येवं पुरुषकारं वर्णयन्ति। ततस्ततः।

विजयवर्मा—देव, ततो रुमण्वानपि कोसलेषु मद्भ्रातरं ज्यायांसं जयवर्माणं स्थापयित्वा समरव्रणितमशेषबलमनुवर्तमानः शनैः शनैरागच्छत्येव।

राजा—वसुन्धरे उच्यतां यौगन्धरायणः दीयतां मत्प्रसादोऽस्येति।

वसुन्धरा—जं देवो आणवेदि। [यद्देव आज्ञापयति ।] (इति विजयवर्मणा सह निष्क्रान्ता ।)

(ततः प्रविशति काञ्चनमाला ।)

काञ्चनमाला—आणत्तह्मि देवीए जह-हञ्जे काञ्चणमाले गच्छ। एदं इन्द्रजालिअं अज्जउत्तस्य दंसेहि। एसो क्खु भट्टा। ता जाव उपसप्पामि।

मृत्युः = मरणम् । श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः । शत्रवः = अरयः । पुरुषकारम् = पराक्रमम् । वर्णयन्ति = कथयन्ति ।

ततः = तदनन्तरम् । कोसलेषु = कोसलराज्ये । ज्यायांसम् = ज्येष्ठम् । स्थापयित्वा = नियुज्य । समरव्रणितम् = युद्धक्षतम् । अशेषबलम् = समस्तसैन्यम् । अनुवर्तमानः = अनुसरन् ।

मत्प्रसादम् = मत्तः पारितोषिकम् । अस्य = विजयवर्मणः ।

विदूषक—महाराज की जय हो, जय हो। हम जीत गये। (इस प्रकार खड़े होकर नाचने लगता है।)

राजा—शाबास कोसल नरेश, शाबास। मृत्यु भी तुम्हारी प्रशंसनीय है जो कि शत्रु भी जिसके पराक्रम का इस प्रकार वर्णन करते हैं। फिर क्या (हुआ)।

विजयवर्मा—देव! तब रुमण्वान् भी अपने (मेरे) बड़े भाई जयवर्मा को कोसल राज्य में छोड़ (नियुक्त) कर युद्ध में घायल सम्पूर्ण सेना को साथ लेकर धीरे-धीरे आ ही रहे हैं।

राजा—वसुन्धरे! यौगन्धरायण से कहो कि इसे मेरी ओर से पुरस्कार देवें।

वसुन्धरा—जो आज्ञा। (इस प्रकार विजयवर्मा के साथ निकल जाती है।)

(काञ्चनमाला प्रवेश करती है।)

काञ्चनमाला—मुझे महारानी जी ने आज्ञा दी है कि हे काञ्चनमाले! जाओ। इस ऐन्द्रजालिक को महाराज का दर्शन कराओ। (इधर-उधर घूमकर और देखकर) यह

जअदु जअदु भट्टा। देवी विण्णवेदि–एसो क्खु उज्जइणीदी सव्वसिद्धी णाम इन्दजालिओ आअदो। ता पेक्खदुणं अज्जउत्तोत्ति। [**आज्ञप्तास्मि देव्या यथा–हञ्जे काञ्चनमाले गच्छ। एतमैन्द्रजालिकमार्यपुत्राय दर्शय। (परिक्रम्याव-लोक्य च।)। एष: खलु भर्ता। तद्यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य।) जयतु जयतु भर्ता। देवी विज्ञापयति–एष खलूज्जयिनीत: सर्वसिद्धिर्नामैन्द्रजालिक आगत:। तत्प्रेक्षतामेनमार्यपुत्र इति।]**

राजा—अस्ति न: कौतुकमिन्द्रजाले। तच्छीघ्रं प्रवेशाय।

काञ्चनमाला—जं देवो आणवेदि। [**यद्देव आज्ञापयति।**]

(निष्क्रम्य पुन: पिच्छिकाहस्तेनेन्द्रजालिकेन सह प्रविशति।)

ऐन्द्रजालिक:—(पिच्छिकां भ्रमयन्।)

पणमह चलणे इन्दस्स इन्दजालअपिणद्धणामस्स।
तह ज्जेव्व संवरस्स माआसुपरिठ्ठिदजसस्स॥

आज्ञप्ता = आदिष्टा। ऐन्द्रजालिकम् = मायाक्रीडाप्रदर्शनकर्त्तारम्। आर्य-पुत्राय = राज्ञे वत्सराजाय। विज्ञापयति = निवेदयति। प्रेक्षताम् = अवलोकयतु। कौतुकम् = आश्चर्यम्। न: = अस्माकम्।

पिच्छिकाहस्तेन— पिच्छिका = मयूरपिच्छिस्तवक: हस्ते यस्य स:, तेन।

अन्वय:—इन्द्रजालकपिनद्धनाम्न: इन्द्रस्य चरणौ प्रणमत मायासुपरिस्थित-यशस: शम्बरस्य (च चरणौ) तथैव (प्रणमत।)॥ ७॥

तो महाराज ही हैं। तो फिर इनके पास चलता हूँ। (**समीप जाकर**) महाराज की जय हो, जय हो। देव! महारानी जी निवेदन करती हैं कि यह उज्जयिनी से सर्वसिद्धि नामक ऐन्द्रजालिक (जादूगर) आया है। अत: महाराज इसे दर्शन दें।

राजा—हमें ऐन्द्रजालिक (जादूगर) के प्रति कौतुक है। अत: शीघ्र प्रविष्ट करो।

काञ्चनमाला—जो महाराज की आज्ञा।

(निकल कर पुन: मोर पंख हाथ में लिए हुए जादूगर के साथ प्रवेश करती है।)

ऐन्द्रजालिक (जादूगर)—**(मोर पंख घुमाते हुए)**

इन्द्रजाल के प्रवर्त्तक देवराज इन्द्र तथा सुप्रसिद्ध मायावी शम्बर के चरणों को प्रणाम करो॥ ७॥

ऐन्द्रजालिक = जादूगर। इन्द्रजाल (जादूगरी) के प्रवर्त्तक देवराज इन्द्र माने गये हैं अत: मङ्गलाचरण में उन्हीं को प्रणाम किया गया है। प्राचीन काल में शम्बराक्षस भी प्रसिद्ध मायावी हुआ। तदनुसार उसे भी यहाँ प्रणाम करना कवि ने दिखाया है।

[प्रणमत चरणाविन्द्रस्येन्द्रजालकपिनद्धनाम्नः।
तथैव शम्बरस्य मायासुप्रतिष्ठितयशसः ॥ ७ ॥]

काञ्चनमाला—(उपसृत्य।) भट्टा एसो क्खु इन्दजालिओ। [भर्तः एष खल्वैन्द्रजालिकः।]

ऐन्द्रजालिकः—जअदु जअदु देवो। देव। [जयतु जयतु देवः। देव।]

किं धरणिए मिअङ्को आआसे महिहरो जले जलणो।
मज्झण्हम्मि पओसो दाविज्जइ देहि आणतिम् ॥

[किं धरण्यां मृगाङ्क आकाशे महीधरो जले ज्वलनः।
मध्याह्ने प्रदोषो दश्यंतां देह्याज्ञप्तिम् ॥ ८ ॥]

प्रणमतेति। इन्द्रजालकपिनद्धनाम्नः—इन्द्रजालमेवैन्द्रजालकम् = माया, तेन पिनद्धं = अनुस्यूतम् नाम = संज्ञा यस्य तस्य = इन्द्रजालप्रवर्त्तकस्य। इन्द्रस्य = शक्रस्य चरणौ = पादौ। प्रणमत = नमस्कुरुत। मायासुप्रतिष्ठितयशसः-मायया = जालकर्मणा सुप्रतिष्ठितम् = सुपरिस्थितम् यशः = कीत्तिः यस्य तस्य। शम्बरस्य = शम्बरनाम्नो मायाविनः च चरणौ तथैव = इन्द्रवत्। प्रणमत = नमस्कुरुत। अत्र परिकरालङ्कारः। वृत्तं गाथाभेदः ॥ ७ ॥

भर्त्तः = स्वामिन्। ऐन्द्रजालिकः = मायावी ('जादूगर' इति भाषायाम्।)

अन्वयः—आज्ञप्तिम् देहि, किम् धरण्याम् मृगाङ्कः आकाशे महीधरः जले ज्वलनः मध्याह्ने प्रदोषः दश्यंताम् ॥ ८ ॥

किमिति। आज्ञप्तिम् देहि = आदेशय। 'किम्' इति प्रश्ने। धरण्याम् = भूमौ। मृगाङ्कः = चन्द्रः, (वा) आकाशे = गगने। महीधरः = पर्वतः। (वा) जले = नीरे। ज्वलनः = अग्निः। (वा) मध्याह्ने = मध्याह्नकाले ('दोपहरी में' इति भाषायाम्) प्रदोषः = सन्ध्यायाः आविर्भावकालः। दश्यंताम् = प्रदश्यंताम्। अत्र विरोधाभासनामालङ्कारः। गाथावृत्तम् ॥ ८ ॥

काञ्चनमाला—(आगे बढ़कर) हे महाराज! यही ऐन्द्रजालिक (जादूगर) है।

ऐन्द्रजालिक—महाराज की जय हो, जय हो। महाराज—

महाराज! आज्ञा दीजिये। क्या पृथ्वी पर चन्द्रमा, क्या आकाश में पर्वत, क्या जल में आग अथवा क्या दोपहर में प्रदोषकाल दिखलाया जाय ॥ ८ ॥

अह वा किं बहुणा जप्पिदेण। [अथ वा किं बहुना जल्पितेन।]

मज्ज पइण्णा एसा जं जं हिअएण इहसि संदट्ठुम्।
तं तं दंसेमि अहं गुरुणो मन्तप्पभावेण॥
[मम प्रतिज्ञैषा यद्यद् हृदयेनेहसे संद्रष्टुम्।
तत्तद्दर्शयाम्यहं गुरोर्मन्त्रप्रभावेण॥ ९॥]

विदूषकः—भो वअस्स अवहिदो होहि। ईदिसो से अवट्ठम्भो जेण सव्वं संभावीअदि। [भो वयस्य अवहितो भव। ईदृशोऽस्यावष्टम्भो येन सर्वं सम्भाव्यते।]

राजा—भद्र, तिष्ठ तावत्। काञ्चनमाले उच्यतां देवी। युष्मदीय एवायमैन्द्रजालिको विजनीकृतश्चायमुद्देशः। तदेहि। सहितावेवैनं पश्याव इति।

काञ्चनमाला—जं भट्टा आणवेदि। [यद्भर्ताज्ञापयति।] (इति निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशति वासवदत्ता काञ्चनमाला च।)

बहुना = अधिकेन। जल्पितेन = भणितेन।

अन्वयः—एषा मम प्रतिज्ञा—यत् यत् संद्रष्टुम् हृदयेन ईहसे गुरोः मन्त्रप्रभावेण अहम् तत् तत् दर्शयामि॥ ९॥

मम प्रतिज्ञैषेति। एषा = इयम्। मम = (ऐन्द्रजालिकस्य) मदीया। प्रतिज्ञा = प्रणः। यद् यत् = यद् दृश्यम्। संद्रष्टुम् = अवलोकितुम्। हृदयेन = मनसा। ईहसे = चेष्टसे। गुरोः = शिक्षकस्य। मन्त्रप्रभावेण = मन्त्रशक्त्या। अहम् = ऐन्द्रजालिकः। तत् तत् = तद् दृश्यम्। दर्शयामि = प्रदर्शयामि। गाथावृत्तम्॥ ९॥

अवहितः = सावधानः। अवष्टम्भः = अभिमानपूर्णा दृढता। युष्मदीयः =

अथवा अधिक कहने से क्या—

मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो-जो (दृश्य) आप देखने के लिए हृदय से इच्छुक हों गुरु जी के द्वारा बताये गये मन्त्र प्रभाव से मैं वही दृश्य दिखला दूँ॥ ९॥

विदूषक—अरे मित्र, सावधान हो जाओ। इसकी ऐसी अभिमानपूर्ण दृढ़ता है जिससे सब कुछ सम्भव है।

राजा—भद्र! तो ठहरो। (अरी) काञ्चनमाले! देवी जी से कहो। तुम्हारे यहाँ का ही यह ऐन्द्रजालिक (जादूगर) है और यह स्थान भी निर्जन कर दिया गया है। अतः आइये। हम दोनों एक साथ ही देखें।

काञ्चनमाला—जैसी महाराज की आज्ञा। (इस प्रकार निकल जाती है)

(तब वासवदत्ता और काञ्चनमाला प्रवेश करती हैं।)

वासवदत्ता—कञ्चणमाले उज्जइणीदो आअदोत्ति अत्थि मे तस्सि इन्द-जालिए पक्खवादो । [काञ्चनमाले उज्जयिनीत आगत इत्यस्ति मे तस्मिन्नैन्द्र-जालिके पक्षपातः ।]

काञ्चनमाला—णादिकुलबहुमाणो क्खु एसो भट्टिणीए । ता एदु एदु भट्टिणी । [ज्ञातिकुलबहुमानः खल्वेष भर्त्र्याः । तदेत्वेतु भर्त्री ।] (इति परिक्रामतः ।)

वासवदत्ता—(उपसृत्य ।) जेदु जेदु अज्जउत्तो । [जयतु जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—देवि बहुतरमनेन गर्जितम् । तदिहोपविश्यताम् । पश्यामस्तावत् ।

(वासवदत्तोपविशति ।)

राजा—भद्र, प्रस्तूयतामिन्द्रजालम् ।

ऐन्द्रजालिकः—जं देवो आणवेदि [यद्देव आज्ञापयति ।]

(इति बहुविधं नाट्यं कृत्वा पिच्छिकां भ्रमयन् ।)

हरिहरबम्हप्पमुहे देवे दंसेमि देवराअं च ।
गगणम्मि सिद्धचारणसुरबहुसत्थं च णच्चन्तम् ॥

युष्माकम् विजनीकृतः = निर्जनीकृतः । उद्देशः = प्रदेशः । सहितौ = मिलितौ ।
पक्षपातः = आदरातिशयः ।

ज्ञातिकुलबहुमान–ज्ञातिकुले = पितृवंशे ('ज्ञातिस्तातगोत्रयोः' इति मेदिनी) ।
बहुमानः = अत्यादरः । भर्त्र्याः = स्वामिन्याः वासवदत्तायाः ।

बहुतरम् = अत्यन्तम् । गर्जितम् = जल्पितम् ।

प्रस्तूयताम् = प्रारभ्यताम् ।

वासवदत्ता—काञ्चनमाले ! 'उज्जयिनी से यह आया है' इसलिए उस ऐन्द्रजालिक के प्रति मेरा पक्षपात है ।

काञ्चनमाला—यह तो महारानी जी का पितृकुल (मायके) के प्रति आदर है अतः आप चलें । (इस प्रकार दोनों चलती हैं ।)

वासवदत्ता—(आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, जय हो ।

राजा—देवि, इसने बड़ी डींग हाँकी है । अतः यहाँ बैठिए । हम देखें ।

(वासवदत्ता बैठती है ।)

राजा—भद्र ! जादूगरी प्रारम्भ करो ।

ऐन्द्रजालिक—जैसी महाराज की आज्ञा ।

(अनेक प्रकार से अभिनय करके मोर पंख घुमाता हुआ)

[हरिहरब्रह्मप्रमुखान्देवान्दर्शयामि देवराजं च ।
गगने सिद्धचारणसुरवधूसार्थं च नृत्यन्तम् ॥ १० ॥]

ता पेक्खदु देवो [तत्प्रेक्षतां देवः ।]

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्यासनादवतरन् ।) आश्चर्यमाश्चर्यम् । देवि पश्य—

एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शङ्करोऽयं
दोर्भिर्दैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भिः ।
एषोऽप्यैरावतस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि देवास्तथाऽन्ये
नृत्यन्ति व्योम्नि चैताश्चलचरणरणन्नूपुरा दिव्यनार्यः ॥ ११ ॥

अन्वयः—गगने हरिहरब्रह्मप्रमुखान् देवान् च देवराजम् नृत्यन्तम् सिद्धचारण-वधूसार्थम् दर्शयामि ॥ १० ॥

हरिहरेति । गगने = आकाशे । हरिहरब्रह्मप्रमुखान्—हरिः=विष्णुः च हरः = शिवः च ब्रह्मा = चतुराननश्च ते = हरिहरब्रह्माणः प्रमुखाः = मुख्याः येषाम्, तान् देवान् = सुरान् । च = तथा । देवराजम् = इन्द्रम् । नृत्यन्तम् = नर्त्तने संलग्नम् । सिद्धचारणसुरवधूसार्थम्—सिद्धाश्च चारणाश्च सिद्धचारणाः = देवयोनिविशेषाः ("विद्याधरोऽप्सरोयक्ष–रक्षोगन्धर्वकिन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः" इत्यमरः ।) ते च = सुराश्च = देवाश्च तेषां वध्वः = स्त्रियः तासां सार्थम् = समवायम् । दर्शयामि = प्रदर्शयामि ॥ १० ॥

आसनात् = स्वस्थानात् । अवतरन् = अवरोहन् ।

अन्वयः—देवि व्योम्नि सरोजे एषः ब्रह्मा, रजनिकरकलाशेखरः, अयम् शंकरः, सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैः चतुर्भिः दोर्भिः असौ दैत्यान्तकः, ऐरावतस्थः एषः अपि त्रिदशपतिः; तथा अमी अन्ये देवाः, एताः च चलचरणरणन्नूपुराः दिव्यनार्यः नृत्यन्ति ॥ ११ ॥

एष इति । देवि = हे प्रिये । व्योम्नि = आकाशे । सरोजे—सरसि जातम् तत्

आकाश में विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं को और देवराज इन्द्र को सिद्ध-चारणों की पत्नियों सहित नाचते हुए मैं दिखला रहा हूँ ॥ १० ॥

अतः महाराज देखें ।

राजा—(ऊपर देखकर आसन से उतरते हुए) आश्चर्य है, आश्चर्य है । देवि, देखो—
हे देवि, आकाश में कमल पर यह ब्रह्मा जी हैं । चन्द्रकला को शिर पर धारण करने वाले यह शङ्कर जी हैं, धनुष, तलवार, गदा तथा चक्र चार चिह्नों वाली भुजाओं से दैत्यों

वासवदत्ता—अच्चरिअं अच्चरिअम् । [आश्चर्यमाश्चर्यम् ।]

विदूषकः—(अपवार्य ।) आः दासीएपुत्तो इन्दजालिअ किं एदेहिं देवेहिं अच्छराहिं च दंसिदाहिं । जइ दे इमिणा परितुट्ठेण कज्जं ता साअरिअं दंसेहि । [आः दास्याः पुत्र ऐन्द्रजालिक किमेतैर्देवैरप्सरोभिश्च दर्शितैः । यदि तेऽनेन परितुष्टेन कार्यं तत्सागरिकां दर्शय ।]

(ततः प्रविशति वसुन्धरा ।)

वसुन्धरा—(राजानमुपसृत्य ।) जेदु जेदु भट्टा । अमच्चो जोअन्धराअणो

तस्मिन् = कमले । एषः = अयम् । ब्रह्मा = चतुराननः । (अस्ति) रजनिकरकलाशेखरः-रजनिकरस्य = चन्द्रस्य कला = छटा शेखरे = शिखरे यस्य सः तादृशः अयम् = एषः शङ्करः = शिवः । (वर्त्तते) सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैः = धनुश्च = शार्ङ्गम् च असि च खड्गश्च गदा च = कौमोदकी गदा च चक्रम् च = सुदर्शननामकं चक्रम् च तान्येव चिह्नानि = लक्षणानि तैः सह वर्त्तन्ते इति तथाभूतैः । चतुर्भिः = चतुःसंख्याकैः । दोर्भिः = बाहुभिः (युक्तः) असौ = सः दैत्यान्तकः = दैत्यानाम् = राक्षसानाम् अन्तम् = संहारम् करोतीति दैत्यान्तकः = दैत्यारिः विष्णुः । (दृश्यते) ऐरावतस्थः—एरावते = तन्नामके गजे तिष्ठति इति—ऐरावतस्थः = देवगजे वर्तमानः । एषः=अयम् । अपि च त्रिदशपतिः-त्रिदशानां पतिः= सुरराट् इन्द्रः । (दृश्यते) तथा = अपि च । अमी = एते । अन्ये = इतरे । देवाः = सुराः (सन्ति) एताः=इमाः । चलचरणरणन्नूपुराः—चलन्तः=इतस्ततो गच्छन्तः ये चरणाः = पादाः तेषु रणन्तः = मुखराः मञ्जीराः = नूपुराः यासाम् तादृश्यः । दिव्यनार्यः-दिव्याश्च ताः नार्यः = दिव्याङ्गनाः । नृत्यन्ति = नृत्यं कुर्वन्ति । अत्र सरोजस्थित्यादिना ब्रह्माद्यनुमानात् अनुमानालङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् ।। ११ ।।

का विनाश करने वाले यह भगवान् विष्णु हैं । ऐरावत हाथी पर बैठे हुए यह देवराज इन्द्र हैं तथा अन्य यह देवता हैं । यह चञ्चल चरणों में बजते हुए नूपुरों वाली दिव्याङ्गनायें नाच रही हैं ॥ ११ ॥

वासवदत्ता—आश्चर्य है, आश्चर्य है ।

विदूषक—(**मनाकर**) अरे दासी पुत्र ऐन्द्रजालिक ! इन देवताओं और अप्सराओं को दिखाने से क्या ? यदि तुम्हें इनको प्रसन्न करना है तो सागरिका को दिखलाओ ।

(तब वसुन्धरा प्रवेश करती है ।)

वसुन्धरा—(**राजा के निकट आकर**) जय हो महाराज, जय हो । मन्त्री यौगन्ध-

विण्णवेदि—एसो क्खु विक्कमबाहुणो पहाणामच्चो वसुभूदी बब्भव्वेण कञ्चुइण अह आगदो। ता अम्हदि देवो इमस्सि ज्जेव सुन्दरमुहुत्तए पेक्खिदुम्। अहंपि कज्जसेसं समापिअ आगदो एव्वत्ति। [जयतु जयतु भर्ता। अमात्यो यौगन्धरायणो विज्ञापयति— एष खलु विक्रमबाहोः प्रधानामात्यो वसुभूतिर्बाभ्रव्येण कञ्चुकिना सहागतः। तदर्हति देवोऽस्मिन्नेव सुन्दरमुहूर्ते प्रेक्षितुम्। अहमपि कार्यशेषं समाप्यागत एवेति।]

वासवदत्ता—अज्जउत्त चिट्ठदु दाव इन्दआलं। माउलघरादो पहाणामच्चो वसुभूदो आगदो। तं दाव पेक्खदु अज्जउत्तो। [आर्यपुत्र तिष्ठतु तावदिन्द्रजालम्। मातुलगृहात्प्रधानामात्यो वसुभूतिरागतः तं तावत्प्रेक्षतामार्यपुत्रः।]

राजा—यथाह देवी। (ऐन्द्रजालिकं प्रति।) भद्र विश्रम्यतामिदानीम्।

ऐन्द्रजालिकः—जं देवो आणवेदि। एक्को उण मह खेलओ अवस्सं देवेण पेक्खिदव्वो। [यद् देव आज्ञापयति। (पुनः पिच्छिकां भ्रमयति।) (निष्क्रामन्।) एकः पुनर्मम खेलोऽवश्यं देवेन प्रेक्षितव्यः]

राजा—भद्र द्रक्ष्यामः।

अप्सरोभिः = दिव्याङ्गनाभिः। अमात्यः = मन्त्री। विक्रमबाहोः = सिंहलेश्वरस्य। अर्हति = योग्यो भवति। सुन्दरमुहूर्त्ते = शुभमुहूर्त्ते। प्रेक्षितुम् = अवलोकितुम्। कार्यशेषम् = कार्याणाम् = कर्तव्यानाम् शेषम् = अवशिष्टम्।

तिष्ठतु = विरमतु। इन्द्रजालम् = मायाजालम् ('जादूगरी' इति भाषायाम्। मातुलगृहात्—मातुलस्य = पितृश्यालकस्य सिंहलेश्वरस्य, गृहात्—भवनात्। प्रधानामात्यः—प्रधानश्चासावमात्यः = मुख्यमन्त्री। प्रेक्षितव्यः = द्रष्टव्यः।

रायण निवेदन करते हैं—यह सिंहलेश्वर विक्रमबाहु के प्रधानमन्त्री वसुभूति बाभ्रव्य कन्चुकि के साथ आये हैं। अतः आपको इसी शुभ मुहूर्त्त पर दर्शन देना चाहिए। मैं भी शेष कार्य समाप्त कर आ ही रहा हूँ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, तब तक इन्द्रजाल (जादूगरी) को बन्द कर दिया जाये। मामा के घर से महामात्य वसुभूति आये हैं। तब तक आप उन्हें दर्शन देवें।

राजा—जैसा आपने कहा (वही होगा।) (**ऐन्द्रजालिक से**) भद्र अब (इस समय) विश्राम कर लीजिये।

ऐन्द्रजालिक—जैसी आपकी आज्ञा। (**पुनः मयूरपंख घुमाता है।**) (**निकलते हुए**) मेरा एक खेल तो अवश्य महाराज को देख लेना चाहिये।

राजा—भले आदमी! देखेंगे।

वासवदत्ता—कञ्चणमाले गच्छ तुमं देहि से पारितोसिकम्। [काञ्चनमाले गच्छ त्वं देह्यस्य पारितोषिकम्।]

काञ्चनमाला—जं देवी आणवेदि। [यद् देव्याज्ञापयति।] (ऐन्द्रजालिकेन सह निष्क्रान्ता।)

राजा—वसन्तक, प्रत्युद्गम्य प्रवेश्यतां वसुभूतिः।

विदूषक—जं देवो आणवेदि। [यद् देव आज्ञापयति।] (इति वसुन्धरया सह निष्क्रान्तः।)

(ततः प्रविशति वसन्तकेनानुगम्यमानो वसुभूतिर्बाभ्रव्यश्च।)

वसुभूतिः—(समन्तादवलोक्य।) अहो वत्सेश्वरस्यानुभावः। इह हि—

आक्षिप्तो जयकुञ्जरेण तुरगान्निर्वर्णयन्वल्लभान्
संगीतध्वनिना हृतः क्षितिभृतां गोष्ठीषु तिष्ठन्क्षणम्।

अस्य = ऐन्द्रजालिकस्य। पारितोषिकम् = पुरस्कारम्। प्रत्युद्गम्य = उत्थाय अग्रतः।

अन्वयः—वल्लभान् तुरगान् निर्वर्णयन् जयकुञ्जरेण आक्षिप्तः क्षितिभृताम् गोष्ठीषु क्षणम् तिष्ठन् संगीतध्वनिना हृतः अहो! कक्षाप्रदेशे अपि सद्यः विस्मृतसिंहलेन्द्रविभवः अहम् द्वाःस्थेन एव महता कुतूहलेन ग्राम्यः यथा कृतः॥ १२॥

आक्षिप्त इति। वल्लभान् = प्रियान् ('दयितं वल्लभं प्रियम्' इत्यमरः)

वासवदत्ता—काञ्चनमाले, तुम जाओ (और) इसे पुरस्कार दो।

काञ्चनमाला—जो महारानी जी की आज्ञा। (जादूगर के साथ निकल जाती है।)

राजा—वसन्तक, बढ़कर वसुभूति को प्रविष्ट किया जाय (लाया जाय।)

विदूषक—जो महराज की आज्ञा। (इस प्रकार वसुन्धरा के साथ निकल जाता है।)

(तब वसन्तक को आगे किये हुये वसुभूति और बाभ्रव्य प्रवेश करते हैं।)

वसुभूति—(चारों ओर देखकर) धन्य है वत्सराज (उदयन) का प्रभाव। क्योंकि

सङ्गीत—नृत्य, गायन तथा वादन सङ्गीत कहलाता है।

मत्तकुञ्जर—मदयुक्त हाथी, जिसकी मदगन्ध को सूँघ कर दूसरे प्रतिद्वन्द्वी हाथी सामने न ठहर सकें ऐसा विजय दिलाने वाला होता है। यथा—

'यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः।
तं गन्धहस्तिनं प्राहुर्नृपतेर्विजयावहम्॥' इति॥

सद्यो विस्मृतसिंहलेन्द्रविभवः कक्षाप्रदेशेऽप्यहो
द्वाःस्थेनैव कुतूहलेन महता ग्राम्यो यथाहं कृतः ॥ १२ ॥

बाभ्रव्यः—वसुभूते अद्य खलु चिरात्स्वामिनं द्रक्ष्यामीति यत्सत्यमानन्दातिशयेन किमप्यवस्थान्तरमनुभवामि । कुतः—

विवृद्धिं कम्पस्य प्रथयतितरां साध्वसवशा-
दविस्पष्टां दृष्टिं तिरयतितरां बाष्पपटलैः ।

तुरगान् = अश्वान् । निर्वर्णयन् = निपुणं निरीक्षयन् । जयकुञ्जरेण—जयस्य = विजयस्य कुञ्जरः = हस्ती, तेन = विजयकारिणा मत्तगजेन । आक्षिप्तः = आकृष्टः । क्षितिभृताम् = नृपतीनाम् । गोष्ठीषु = सभासु । क्षणम् = किञ्चित्कालम् । तिष्ठन् = वर्त्तमानः सन् संगीतध्वनिना = संगीतस्य = गीतवाद्यनृत्यस्य ('नृत्यं गीतं तथा वाद्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।') ध्वनिना = शब्देन । हृतः = बलादेवाकृष्टः । अहो = आश्चर्यम् । कक्षाप्रदेशे = बहिःप्रकोष्ठे । अपि च । सद्यः = झटिति । विस्मृतसिंहलेन्द्रविभवः–विस्मृतः = विस्मृतिपथं नीतः सिंहलेन्द्रस्य सिंहलनरेशस्य विभवः = ऐश्वर्यम् येन तथोक्तः अहम् = सिंहलेश्वरमन्त्री वसुभूतिः । द्वाःस्थेन एव = द्वारिवर्त्तमानेनैव । महता = विशालेन । कुतूहलेन = आश्चर्येण । ग्राम्यः = ग्रामीणः । यथा = इव । कृतः = सम्पादितः । अत्रोदात्तालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—अद्य, मम, परितोषः, साध्वसवशात्, कम्पस्य, विवृद्धिम्, प्रथयतितराम्, बाष्पपटलैः, अविस्पष्टाम्, दृष्टिम्, तिरयतितराम्, गद्गदतया स्खलद्वर्णाम् वाणीम् जडयतितराम्, जरायाः साहाय्यम् कुरुते हि ॥ १३ ॥

विवृद्धिमिति । अद्य = अस्मिन् काले । मम = मामकीनः । परितोषः = सन्तोषः ।

यहाँ—प्रिय (उत्तमोत्तम) घोड़ों को ध्यान से देखते हुये, मतवाले हाथी से आकृष्ट राजाओं की गोष्ठियों में क्षणभर को रुकता हुआ, संगीत स्वर से आकृष्ट होकर बाहरी कमरों को ही देखते हुए सिंहल राज्य के वैभव को भूलकर तो द्वार पर ही होने वाले महान् कौतूहल से ग्रामीण (गँवार) जैसा बन गया हूँ अर्थात् जैसे कोई गँवार प्रथम बार नगर के चाकचक्य को देखकर सुध-बुध खो बैठता है वैसी ही मेरी दशा हो रही है ॥ १२ ॥

बाभ्रव्य—हे वसुभूति जी, आज तो 'बहुत समय बाद महाराज को देखूँगा' इसलिए सचमुच अत्यन्त आनन्द से मुझे किसी और ही अवस्था का अनुभव हो रहा है क्योंकि—

आज मेरा सन्तोष भयवश शरीर कम्पन को और भी बढ़ा रहा है, अश्रु प्रवाह से धुँधली

स्खलद्वर्णां वाणीं जडयतितरां गद्गदतया
जरायाः साहाय्यं मम हि परितोषोऽद्य कुरुते ॥ १३ ॥

विदूषकः—(अग्रे भूत्वा ।) एदु एदु अमच्चो । [एत्वेत्वमात्यः ।]

वसुभूतिः—(विदूषकस्य कण्ठे रत्नमालां दृष्ट्वाऽपवार्य ।) बाभ्रव्य जाने सैवेयं रत्नमाला या देवेन राजपुत्र्यै प्रस्थानकाले दत्ता ।

बाभ्रव्यः—अमात्य अस्ति सादृश्यम् । तत्किं वसन्तकं पृच्छामि प्राप्तिमस्याः ।

साध्वसवशात्—साध्वसस्य = भयस्य ('भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः) वशात् = अधीनत्वात् । कम्पस्य = वेपथोः । विवृद्धिम् = अधिकताम् । प्रथयतितराम् = अधिकतरं वर्धयति । बाष्पपटलैः = अश्रुसमूहैः । अविस्पष्टाम् = मन्दाम् । दृष्टिम् = अवलोकनसामर्थ्यम् । तिरयतितराम् = बहुतरमाच्छादयति । गद्गदतया= गद्गदभावेन । स्खलद्वर्णाम्–स्खलन्तः = च्युताः भवन्तः वर्णाः = अक्षराणि यस्यां सा, ताम् । वाणीम् = वाचम् । जडयतितराम् = बहुतरं जडयति । (इत्थम्) जरायाः = वृद्धावस्थायाः । साहाय्यम् = सहायताम् । कुरुते = विदधाति हि । अर्थात् शरीरकम्पनदृष्टिवैषम्य-वर्णस्खलनादिभिः वार्धक्यस्य वृद्धिरेव भवतीति । अत्र कम्पनदृष्टिवैषम्यवर्णस्खलनादिकरणैर्वार्धक्ये साहाय्यकारणात् काव्यलिङ्गालङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ १३ ॥

जाने = अहं जानामि । देवेन = सिंहलेश्वरेण । राजपुत्र्यै = सागरिकायै । प्रस्थानकाले = गमनसमये ।

सादृश्यम् = समानता (पूर्वदत्तया रत्नमालयेति शेषः) । अस्याः = एतस्याः रत्नमालायाः । प्राप्तिम् = उपलब्धिम् ।

बनी हुई दृष्टि और भी अधिक धुँधली बन रही है । हृदय गद्-गद होने के कारण लड़खड़ाती हुई वाणी और भी अधिक जड़वत् बना रही है । वास्तव में यह सब कम्पन, दृष्टि-वैषम्य, वाणी का लड़खड़ाना आदि सब कुछ बुढ़ापे की सहायता ही कर रहे हैं अर्थात् जो क्रियायें बुढ़ापे में होती हैं कम्पनादि से उनमें बढ़ती ही हो रही है ॥ १३ ॥

विदूषक—(आगे होकर) आइये, आइये मन्त्री जी ।

वसुभूति—(विदूषक के गले में रत्नमाला को देखकर मुँह घुमाकर) बाभ्रव्य, मैं समझता हूँ कि यह वही रत्नमाला है जो महाराज (सिंहलेश्वर) ने राजपुत्री (सागरिका) को चलते समय दी थी ।

बाभ्रव्य—मन्त्री जी, बिल्कुल समानता है । तो क्या वसन्तक से उस (रत्नमाला) की प्राप्ति (के सम्बन्ध) में पूछूँ ।

वसुभूतिः—बाभ्रव्य मा मैवम् । महति राजकुले रत्नबाहुल्यान्न दुर्लभो भूषणानां संवादः (इति परिक्रामति ।)

विदूषकः—भो एसो क्खु महाराओ । ता उपसप्पदु अमच्चो । [भो एष खलु महाराजः । तदुपसर्पत्वमात्यः ।]

वसुभूतिः—(उपसृत्य ।) विजयतां महाराजः ।

राजा—(उत्थाय ।) आर्य अभिवादये ।

वसुभूतिः—आयुष्मान्भव ।

राजा—आसनमासनमार्याय ।

विदूषकः—एदं आसणम् । उपविसदु अमच्चो । [एतदासनम् उपविशत्वमात्यः ।] (वसुभूतिरुपविशति ।)

बाभ्रव्यः—देव बाभ्रव्यः प्रणमति ।

राजा—(पृष्ठे हस्तं दत्त्वा ।) बाभ्रव्य इत आस्यताम् ।

(बाभ्रव्य उपविशति ।)

मा मैवम् = एतत् न कुरु । महति = विशाले । राजकुले = राजवंशे । रत्नबाहुल्यात्—रत्नानाम् = बहुमूल्यमणीनाम् बाहुल्यम् = आधिक्यम्, तस्मात् । संवादः = सादृश्यम् ।

महाराजः = वत्सराज उदयनः । आसनमासनम् = एतद् आसनम् । अत्र सम्भ्रमे द्विरुक्तिः ।

पृष्ठे हस्तं दत्वा = स्नेहं सूचयित्वा ।

वसुभूति—बाभ्रव्य, ऐसा मत करो । विशाल राजकुल में रत्नों की अधिकता से आभूषणों का समान होना दुर्लभ नहीं है । (इस प्रकार घूमने लगता है ।)

विदूषक—अरे यह तो महाराज जी (वत्सराज उदयन) हैं । अतः मन्त्री जी आप (इनके) निकट पधारें ।

वसुभूति—(आगे बढ़कर) जय हो महाराज की ।

राजा—(उठकर) आर्य, अभिवादन करता हूँ ।

वसुभूति—(आप) चिरायु होवें ।

राजा—आसन, आर्य के लिए आसन (दिया जाये ।)

विदूषक—यह आसन है । मन्त्री जी बैठिये । (वसुभूति बैठते हैं ।)

बाभ्रव्य—महाराज ! (यह) बाभ्रव्य आपको प्रणाम कर रहा है ।

राजा—(पीठ पर हाथ फेरकर) बाभ्रव्य, इधर बैठो । (बाभ्रव्य बैठता है)

विदूषकः—अमच्च एसा देवी वासवदत्ता पणमदि । [अमात्य एषा देवी वासवदत्ता प्रणमति ।]

वासवदत्ता—अज्ज पणमामि । [आर्यं प्रणमामि ।]

वसुभूतिः—आयुष्मति वत्सराजसदृशं पुत्रमाप्नुहि ।

(सर्वे उपविशन्ति ।)

राजा—आर्य वसुभूते अपि कुशलं तत्रभवतः सिंहलेश्वरस्य ।

वसुभूतिः—(ऊर्ध्वमवलोक्य निःश्वस्य च ।) देव न जाने किं विज्ञापयामि । (अधोमुखस्तिष्ठति ।)

वासवदत्ता—(सविषादमात्मगतम् ।) हद्धी हद्धी । किं दाणिं वसुभूदी कधइस्सदि । [हा धिक् हा धिक् । किमिदानीं वसुभूतिः कथयिष्यति ।]

राजा—कथय किमेतत् । आर्य आकुल इव मेऽन्तरात्मा ।

बाभ्रव्यः—(अपवार्य ।) अमात्य चिरमपि स्थित्वा कथनीयम् । तत्कथ्यताम् ।

वत्सराजसदृशम् = पतिसदृशं गुणवन्तम् । अवाप्नुहि = प्राप्नुहि ।
न जाने किं विज्ञापयामि = कुशलमकुशलं वा निवेदयामीति भावः ।
अधोमुखस्तिष्ठति = एतदवस्थित्या खेदं प्रकटयति ।
आकुलः = खिन्नः । अन्तरात्मा = अंतःकरणम् ।
चिरमपि स्थित्वा = किञ्चित्कालं विलम्ब्य । कथनीयम् = वक्तव्यम् ।

विदूषक—मन्त्री जी, यह देवी वासवदत्ता प्रणाम कर रही हैं ।

वासवदत्ता—आर्य, (मैं) प्रणाम कर रही हूँ ।

वसुभूति—आयुष्मति, वत्सराज के समान (गुणवान्) पुत्र प्राप्त करो ।

(सभी बैठ जाते हैं ।)

राजा—आर्य वसुभूति, क्या श्रीमान् सिंहलेश्वर सकुशल तो हैं ।

वसुभूति—(ऊपर देखकर और निःश्वास लेकर) महाराज, न जाने मैं (शुभ अथवा अशुभ) क्या निवेदन कर रहा हूँ ।

(नीचे मुख करके खड़ा रहता है ।)

वासवदत्ता—(दुःख के साथ मन ही मन) हाय हाय । इस समय वसुभूति क्या कहेंगे ।

राजा—कहिये, यह क्या । मेरा हृदय व्याकुल सा हो रहा है ।

बाभ्रव्य—(मुँह फेर कर) मन्त्री जी, ठहर कर कहना चाहिए था । तो कहिये ।

वसुभूतिः—(सास्रम् ।) देव न शक्यं निवेदयितुं तथाप्येष कथयामि मन्दभाग्यः। यासौ सिंहलेश्वरेण स्वदुहिता रत्नावली नाम आयुष्मतीं वासवदत्तां दग्धामुपश्रुत्य देवाय पूर्वं प्रार्थिता सती दत्ता—

राजा—(अपवार्य ।) देवि किमेतदलीकमेव त्वन्मातुलामात्यः कथयति।

वासवदत्ता—(स्मित्वा ।) अज्जउत्त ण जाणीअदि को अलिअं मन्तेदित्ति । [आर्यपुत्र न ज्ञायते कोऽलीकं मन्त्रयत इति ।]

विदूषकः—तदो ताए किं वुत्तम् । [ततस्तस्याः किं वृत्तम् ।]

वसुभूतिः—सा च युष्मदन्तिकमानीयमाना यानभङ्गात्सागरे निमग्ना । (इति रुदन्नधोमुखस्तिष्ठति ।)

वासवदत्ता—(सास्रम् ।) हा हदम्हि मन्दभाइणी । हा बहिणि रअणावलि कहिं दाणिं सि । देहि मे पडिवअणम् । [हा हतास्मि मन्दभागिनी । हा भगिनि रत्नावलि कुत्रेदानीमसि । देहि मे प्रतिवचनम् ।]

स्वदुहिता—स्वस्य = आत्मनः दुहिता = कन्या । दग्धाम् = अग्नौ ज्वलिताम् । उपश्रुत्य = आकर्ण्य । देवाय = भवते (वत्सराजाय) पूर्वम् = प्राक् । प्रार्थिता = याचिता । दत्ता = समर्पिता ।

अलीकम् = असत्यम् । मन्त्रयति = कथयति ।

तस्याः = सागरिकायाः । वृत्तम्=समाचारः । युष्मदन्तिकम्=भवत्सन्निधिम् । आनीयमाना = प्रापयमाणा । यानभङ्गात् = यानस्य नौकायाः, भङ्गात्=नाशात् । सागरे = समुद्रे । प्रतिवचनम् = उत्तरम् ।

वसुभूति—(आँसू बहाते हुये) महाराज निवेदन करने की सामर्थ्य नहीं है फिर भी मैं निवेदन कर रहा हूँ । जो वह सिंहल नरेश द्वारा अपनी कन्या रत्नावली नाम की आयुष्मती वासवदत्ता को आग में जला हुआ सुनकर आपके लिए पहले याचना करने पर दी गई थी—

राजा—(मना करके) देवि, क्या यह झूठ ही तुम्हारे मामा के मन्त्री जी कह रहे है ?

वासवदत्ता—(मुस्करा कर) आर्यपुत्र, ज्ञात नहीं है कि कौन असत्य कह रहा है।

विदूषक—तो फिर उसका क्या समाचार है ?

वसुभूति—और वह आप के पास लाई जाती हुई पोत के नष्ट हो जाने से समुद्र में डूब गई । (इस प्रकार रोते हुये मुँह नीचे कर लेता है ।)

वासवदत्ता—(रोती हुई) हाय मैं मन्दभागिनी मारी गई । हाँ बहन रत्नावली, तुम अब कहाँ हो । मुझे प्रत्युत्तर दो ।

राजा—देवि समाश्वसिहि समाश्वसिहि। दुरवगाहा गतिर्दैवस्य। यानभङ्गपतितोत्थितौ नन्वेतावेव निदर्शनम् (इति वसुभूतिबाभ्रव्यौ दर्शयति।)

वासवदत्ता—अज्जउत्त जुज्जदि एदं। परं कुतो मम एत्तिअं भाअहेअम्। [आर्यपुत्र युज्यत एतत्। परं कुतो ममैतावद्भागधेयम्।]

(नेपथ्ये महान्कलकलः।)

हर्म्याणां हेमश्रृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः।
कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै—
रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः॥ १४॥

दुरवगाहा-दुःखेन अवगाहो यस्याः सा = दुर्विज्ञेया। गतिः = स्थितिः। दैवस्य = भाग्यस्य। यानभङ्गपतितोत्थितौ—यानभङ्गात् (समुद्रे) पतितौ। कारणवशाच्च तत उत्थितौ = निष्क्रान्तौ। एतौ = वसुभूति-बाभ्रव्यौ। निदर्शनम् = दृष्टान्तत्वम्।

युज्यते = उपयुक्तमस्ति। एतावद् भागधेयम् = एतावन्मात्रं भाग्यम्।

अन्वयः—अर्चिषाम् निचयैः हर्म्याणाम् हेमश्रृङ्गश्रियम् इव आदधानः सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः धूमपातैः क्रीडामहीध्रम् सजलजलधरश्यामलम् कुर्वन् प्लोषार्तयोषिज्जनः एषः अग्निः इह अन्तःपुरे सहसा एव उत्थितः॥ १४॥

हर्म्याणामिति। अर्चिषाम् = ज्वालानाम्। निचयैः = समूहैः। हर्म्याणाम् =

राजा—देवि, धैर्य रखो, धैर्य रखो। भाग्य की गति बड़ी कठिनाई से जानी जा सकती है। यान नष्ट होने से गिर कर बचे हुये यह दोनों (वसुभूति तथा बाभ्रव्य) ही उदाहरण हैं। (इस प्रकार वसुभूति और बाभ्रव्य को दिखलाता है।)

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, यह ठीक है। पर मेरा इतना भाग्य कहाँ है।

(नेपथ्य में महान् कलकल ध्वनि होती है।)

आग की लपटों से राज प्रासादों के स्वर्णशिखरों की शोभा सी धारण करती हुई घने उद्यान वृक्षों की चोटियों को मुरझा देने के कारण अत्यन्त तीक्ष्ण ताप को सूचित करती हुई, धुएँ के फैलाव से उद्यान में बने क्रीड़ा पर्वत को जल से भरे हुए काले बादलों के

क्रीडामहीध्र-प्राचीन काल में राजा लोग अपने क्रीडोद्यानों में कृत्रिम पर्वत बनवा कर उसके ऊपर क्रीडा कर वास्तविक पर्वत विहार के आनन्द का अनुभव किया करते थे।

अपि च—देवीदाहप्रवादोऽसौ योऽभूल्लावाणके पुरा।
करिष्यन्निव तं सत्यमयमग्निः समुत्थितः ॥ १५ ॥

(सर्वे सम्भ्रान्ताः पश्यन्ति ।)

राजा—(ससंभ्रममुत्थाय ।) कथमन्तःपुरेऽग्निः । कष्टं देवी वासवदत्ता दग्धा । हा प्रिये वासवदत्ते ।

राजप्रासादानाम् । हेमभृङ्गश्रियम्—हेम्नः = सुवर्णस्य भृङ्गाणि = शिखराणि तेषां श्रियम् = शोभाम् इव आदधानः = धारणं कुर्वन् । सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः = सान्द्राणाम् = घनानाम् उद्यानद्रुमाणाम् = पुष्पवाटिकावृक्षाणाम् अग्राणि = ऊर्ध्वभागाः तेषाम् ग्लपनेन = म्लानतासम्पादनेन पिशुनितः = सूचितः अत्यन्ततीव्रः = अतिविषमः अभितापः = सन्तापः यस्य तादृशः । धूमपातैः—धूमस्य पातैः = प्रसारैः । क्रीडामहीध्रम् = क्रीडापर्वतम् । सजलजलधरश्यामलम्—सजलः = जलेन सहितः यो जलधरः = मेघः तम् इव श्यामलम् = कृष्णवर्णम् । कुर्वन् = विदधन् । प्लोषार्तयोषिज्जनः—प्लोषेण = दाहेन आर्त्तः = पीडितः योषिताम् = कुर्वन् = विदधन् । प्लाषार्तयोषिज्जनः—प्लोषेण = दाहेन आर्त्तः = पीडितः योषिताम् = स्त्रीणाम् जनः = समूहः यस्मात् सः । एषः = अग्रम् पुरोदृश्यमानः । अग्निः = वह्निः । इह = अत्र अन्तःपुरे = अवरोधने । ('अन्तःपुरं स्यादवरोधनम्' इत्यमरः ।) सहसा = अतर्कितम् एव । उत्थितः = प्रादुर्भूतः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—पुरा लावाणके यः असौ देवीदाहप्रवादः अभूत् तम् सत्यम् करिष्यन् इव अयम् अग्निः समुत्थितः ॥ १५ ॥

देवीति । पुरा = प्राक् । लावाणके = लावाणकनामके ग्रामे । यः असौ = सः देवी दाहप्रवादः—देव्याः वासवदत्तायाः दाहस्य = ज्वलनस्य प्रवादः = मिथ्यासम्वादः अभूत् = आसीत् । तम् = तद्देवीदाहप्रवादम् । सत्यम् = तथ्यम् । कुर्वन् = विदधन् । इव अयम् = एषः । अग्निः = वह्निः । समुत्थितः = उद्गतः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १५ ॥

समान श्यामवर्ण करती हुई, दाह से पीडित स्त्रियों वाली यह अग्नि इस अन्तःपुर में सहसा उठ खड़ी (भड़की) हुई है ॥ १४ ॥

और भी—पहले लावाणक नामक गाँव में जो वह महारानी के आग में जलने वाली बात (झूठ मूठ) फैल गई थी उसको सच बनाती हुई सी यह आग उठी है ॥ १५ ॥

(सभी घबड़ाये हुये देखने लगते हैं ।)

राजा—(घबड़ाहट के साथ उठकर) क्या अन्तःपुर में आग (लग गई) है । दुःख है कि देवी वासवदत्ता जल गई हैं । हाय प्रिये वासवदत्ते ।

वासवदत्ता—अज्जउत्त परित्ताहि परित्ताहि । [आर्यपुत्र परित्रायस्व परित्रायस्व ।]

राजा—अये कथमतिसंभ्रमादिहस्थापि देवि नोपलक्षिता । देवि समाश्वसिहि ।

वासवदत्ता—अज्जउत्त मए अत्तणो किदे ण भणिदम् । एसा क्खु मए णिग्घिणाए इध निअडेण संजमिदा साअरिआ विवज्जदि । ता तं परित्ताअदु अज्जउत्तो । [आर्यपुत्र मयात्मनः कृते न भणितम् । एषा खलु मया निर्घृणयेह निगडेन संयमिता सागरिका विपद्यते । तत्तां परित्रायतामार्यपुत्रः ।]

राजा—कथं देवि सागरिका विपद्यते । एष गच्छामि ।

वसुभूति—देव किमकारणमेवं पतंगवृत्तिः क्रियते ।

बाभ्रव्यः—देव युक्तमाह वसुभूतिः ।

विदूषकः—(राजानमुत्तरीये गृहीत्वा ।) वअस्स मा क्खु एवं साहसं करेहि । [वयस्य मा खल्वेवं साहसं कुरु ।]

दग्धा = ज्वलिता । अतिसम्भ्रमात् = अतिसंवेगात् । इहस्थापि = वामभागस्थितापि । उपलक्षिता = दृष्टा ।

भणितम् = कथितम् । निर्घृणया = दयाशून्यया । निगडेन = शृङ्खलया । संयमिता = सन्दानिता । विपद्यते = म्रियते ।

अकारणम् = कारणेन विना । पतङ्गवृत्तिः = पतङ्गवद् वृत्तिः यस्याः सा = पतङ्गवद् अग्नौ शरीरनाशः ।

युक्तम् = उचितम् ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र बचाओ, बचाओ ।

राजा—अरे क्या अत्यन्त घबराहट से यहाँ बैठी हुई महारानी को भी नहीं देखा जा सका । देवि, धीरज रखो, धीरज रखो ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, मैंने अपने लिए नहीं कहा । यह मुझ निर्दया साँकल से सागरिका को बाँध रखा है जो कि मर रही है । अतः आप उसको बचा लें ।

राजा—महारानी जी, क्या सागरिका (जलकर) मर रही है । यह आ रहा हूँ ।

वसुभूति—क्या अकारण इस प्रकार पतिङ्गों के समान आग में जली जा रही है ।

बाभ्रव्य—महाराज, वसुभूति ने ठीक कहा है ।

विदूषक—(राजा की चादर पकड़कर) मित्र, ऐसा साहस मत करो ।

राजा—(उत्तरीयमुत्सृज्य ।) धिङ् मूर्ख सागरिका विपद्यते । किमद्यापि प्राणा धार्यन्ते । (इति ज्वलनप्रवेशं नाटयित्वा धूमाभिभवं नाटयन् ।)

विरम विरम वह्ने मुञ्च धूमानुबन्धं
प्रकटयसि किमुच्चैरर्चिषां चक्रवालम् ।
विरहहुतभुजाऽहं यो न दग्धः प्रियायाः
प्रलयदहनभासा तस्य किं त्वं करोषि ॥ १६ ॥

वासवदत्ता—कधं मम दुक्खभाइणीए वअणादो एव्वं अज्झवसिदं अज्जउत्तेण । ता अहंपि अज्जउत्तं एव्व अणुगमिस्सम् । [कथं मम दुःखभागिन्या वचनादेवमध्यवसितमार्यपुत्रेण । तदहमप्यार्यपुत्रमेवानुगमिष्यामि ।]

धार्यन्ते = अवस्थाप्यन्ते ।

अन्वयः—वह्ने विरम् विरम, धूमानुबन्धम् मुञ्च, उच्चैः अर्चिषाम् चक्रवालम् किं प्रकटयसि । यः अहम् प्रियायाः प्रलयदहनभासा विरहहुतभुजा न दग्धः तस्य त्वं किम् करोषि ॥ १६ ॥

विरमेति । हे वह्ने ! = भोः अग्ने ! विरम, विरम = झटिति विरतो भव । धूमानुबन्धम् = धूमस्य अनुबन्धस्तम् = धूमविस्तारम् । मुञ्च = त्यज । उच्चैः = उच्चगानि अर्चिषाम् = ज्वालानाम् । चक्रवालम् = मण्डलम् । किम् = किमर्थम् । प्रकटयसि = दर्शयसि । यः अहम् = वत्सराज उदयनः । प्रियायाः = प्रियतमायाः । प्रलयदहनभासा–प्रलयस्य=प्रलयकालस्य यो दहनः=वह्निः तद्वद् भाः=कान्तिः यस्य सः, तेन । विरहहुतभुजा=विरहानलेन । न दग्धः = न ज्वलितः । तस्य=तादृशस्य (मम) । त्वम्=साधारणानलः । किम् करोषि=किं कर्त्तुमर्हसि । अत्र रूपकालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् । तद् यथा–'न न मयययुतेयं मालिनीभोगिलोकैः' इति ॥ १६ ॥

दुःखभागिन्याः = भाग्यहीनायाः । वचनात् = कथनात् । अध्यवसितम्=अनुष्ठितम् । अनुगमिष्यामि = अनुसरिष्यामि ।

राजा—(उत्तरीय (चादर) छुड़ाकर) धिक्कार है (तुम्हें) मूर्ख । सागरिका जलकर मर रही है । क्या अब भी प्राण बचे हुये हैं । (इस प्रकार आग में प्रवेश करने का अभिनय करके धुयें से कष्ट का अभिनय करता हुआ ।)

हे वह्नि ! ठहरो ठहरो । धुयें का प्रसार छोड़ दो । ऊँची-ऊँची लपटों को क्यों दिखला रहे हो । मैं जो प्रिया के प्रलय कालीन अग्नि की कान्ति जैसी विरहानल से नहीं जला तो तुम साधारण आग मेरा क्या कर सकती हो ॥ १६ ॥

वासवदत्ता—मुझ दुःखभागिनी के कहने से आर्यपुत्र ने यह क्या कर डाला । अतः मैं भी आर्यपुत्र का ही अनुसरण करूँगी ।

विदूषकः—(परिक्रामन्नग्रतो भूत्वा ।) भोदि अहं वि दे पथोवदेस-ओहोमि । [भवति अहमपि ते पथ्युपदेशको भवामि ।]

वसुभूतिः—कथं प्रविष्ट एव ज्वलनं वत्सराजः । तन्ममापि दृष्टराजपुत्री-विपत्तेरिहैव युक्तमात्मानमाहुतीकर्तुम् ।

बाभ्रव्य—हा दैव किमिदमकारणमेव भरतकुलं संशयतुलामारोपितम् । अथ वा किं प्रलापेन । अहमपि भक्तिसदृशमाचरामि ।

(सर्वेऽग्निप्रवेशं नाटयन्ति ।)

(ततः प्रविशति निगडसंयता सागरिका ।)

सागरिका—(दिशोऽवलोक्य ।) हद्धी समन्तदो पज्जलिदो हुतवहो । अज्ज हुतवहो दिट्ठिआ करिस्सदि मे दुःखावसाणम् । [हा धिक् समन्ततः प्रज्वलितो हुतवहः । (विचिन्त्य सपरितोषम् ।) अद्य हुतवहो दिष्ट्या करिष्यति मम दुःखावसानम् ।]

पथ्युपदेशकः = पथप्रदर्शकः । ज्वलनम् = वह्निम् । दृष्टराजपुत्रीविपत्तेः—दृष्टा = अवलोकिता राजपुत्र्याः = सिंहलेश्वरदुहितायाः रत्नावल्याः विपत्तिः = विपन्नता येन तस्य । इहैव = अत्रैव वह्नौ । आत्मानम् = स्वम् । आहुतीकर्तुम् = आहुतिवदग्नौ पातितुम् अकारणम् = विनैव हेतुना । भरतकुलम् = राजवंशम् । संशयतुलाम् = सन्देहतुलाम् । आरोपितम् = आरोहितम् । प्रलापेन = रुदितेन । भक्तिसदृशम् = स्वामिभक्त्यनुकूलम् । अवसानम् = समापनम् ।

विदूषक—(चलता हुआ आगे होकर) श्रीमती जी, मैं भी आपका पथप्रदर्शक बनता हूँ ।

वसुभूति—क्या वत्सराज आग में ही प्रविष्ट हो गये । तो राजपुत्री पर पड़ी विपत्ति को देखने वाले मुझ (अभागे) को भी अपने को आहुत कर देना ठीक रहेगा ।

बाभ्रव्य—हा दैव ! यह अकारण ही तूने भरतकुल (राजवंश) को क्यों संशयतुला पर चढ़ा दिया । अथवा रोने से क्या (लाभ) मैं भी स्वामिभक्ति के अनुरूप आचरण करता हूँ । (अर्थात् इन सबके समान मैं भी अब प्राण त्याग कर रहा हूँ ।)

(सभी आग में प्रविष्ट होने का अभिनय करते हैं ।)

(तब बेड़ियों से जकड़ी हुई सागरिका प्रवेश करती है ।)

सागरिका—(चारों ओर देखकर) हाय, चारों ओर आग जल रही है । (सोच-कर हर्ष से ।) सौभाग्य से आज अग्निदेव मेरे दुःखों की समाप्ति कर देंगे ।

राजा—अये इयमासन्नहुतवहा वर्तते सागरिका। तत्त्वरितमेनां संभावयामि। (त्वरितमुपसृत्य) अयि प्रिये किमद्यापि संभ्रमे स्वस्थयावस्थीयते।

सागरिका—(राजानं दृष्ट्वा। स्वगतम्।) कधं अज्जउत्तो। ता एदं पेक्खिअ पुणोवि मे जीविदाहिलासो संवुत्तो। परित्ताअदु भट्टा। [कथमार्यपुत्रः। तदेतं प्रेक्ष्य पुनरपि मे जीविताभिलाषः संवृत्तः। (प्रकाशम्।) परित्रायतां परित्रायतां भर्ता।]

राजा—भीरो अलं भयेन।

मुहूर्त्तमपि सह्यतां बहल एष धूमोद्गमो (अग्रतोऽवलोक्य।)
हहा धिगिदमंशुकं ज्वलति ते स्तनात्प्रच्युतम्।
(विलोक्य।) मुहुःस्खलसि किं कथं निगडसंयताऽसि द्रुतं (परिकरं बद्ध्वा।)
नयामि भवतीमितः प्रियतमेऽत्रलम्बस्व माम्॥ १७॥

आसन्नहुतवहा–आसन्ने = निकटे हुतवहः = अग्निः यस्याः सा। त्वरितम् = द्रुतम्। एनाम् = एतां प्रियाम्। सम्भ्रमे = भीतिकाले। स्वस्थतया = शान्ततया। अवस्थीयते = भूयते।

प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा। जीविताभिलाषः = जीवितस्य = जीवनस्य, अभिलाषः = इच्छा। संवृत्तः = संजातः।

अन्वयः—एषः बहलः धूमोद्गमः मुहूर्त्तम् अपि सह्यताम्, हहा धिक् ते स्तनात् प्रच्युतम् इदम् अंशुकम् ज्वलति, मुहुः किं स्खलसि ? कथम् निगडसंयता असि ? भवतीम् इतः द्रुतम् नयामि, प्रियतमे माम् अवलम्बस्व॥ १७॥

मुहूर्त्तमिति। एषः = अयम्। बहलः = घनः। धूमोद्गमः–धूमस्य उद्गमः = उत्पत्तिः। मुहूर्त्तम् अपि = क्षणमात्रमपि। सह्यताम् = अनुभूयताम्। हहा धिक्–

राजा—अरे यह सागरिका तो आग के बिल्कुल निकट पहुँच गई है। अतः शीघ्र इसे सान्त्वना देता हूँ। (शीघ्र बढ़कर) अयि प्रिये, क्या आज भी इस घबराहट में शान्त खड़ी हो।

सागरिका—(राजा को देखकर, मन ही मन) क्या आर्यपुत्र हैं। अतः इन्हें देखकर फिर से मुझे जीवित रहने की अभिलाषा हो आई है। (प्रकट में) महाराज बचाइये, बचाइये।

राजा—हे भीरु, मत डरो।

क्षण भर इस धुआँधार को सहन करो। (आगे देखकर) हाय हाय ! तुम्हारे वक्षःस्थल से खिसका हुआ यह वस्त्र जलने लगा है।

(कण्ठे गृहीत्वा निमीलिताक्षः स्पर्शसुखं नाटयन् ।) अहो क्षणान्मेऽपगतोऽयं संतापः । प्रिये समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः ।
यतः संतापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ॥ १८ ॥

(उन्मील्याक्षिणी दिशोऽवलोक्य सागरिकां च मुक्त्वा ।) अहो महदाश्चर्यम् ।
क्वासौ गतो हुतवहस्तदवस्थमेत—
दन्तःपुरं (वासवदत्तां दृष्ट्वा ।) कथमवन्तिनृपात्मजेयम् ।

कष्टं भोः, ते = तव । स्तनात् = वक्षःस्थलात् । प्रच्युतम् = पतितम् । इदम् = एतत् अंशुकम् = वस्त्रम् । ज्वलति = दह्यते । मुहुः = वारंवारम् । किम् = किमर्थम् । स्खलसि = पातमनुभवसि । कथम् = किम् । निगडसंयता = निगडेन = लौहबन्धनेन संयता = बद्धा । असि = वर्त्तसे । भवतीम् = श्रीमतीं त्वाम् । इतः = अस्मात्स्थानात् द्रुतम् = शीघ्रम् । नयामि = प्रापयामि । प्रियतमे = प्रेयसि । माम् = स्वप्रियं वत्सराजम् । अवलम्बस्व = गृहाण । अत्र पृथ्वीवृत्तम् । तद् यथा— 'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' इति ॥ १७ ॥

अन्वयः—प्रिये, व्यक्तम् लग्नः अपि पावकः भवतीम् न दहति एव यतः ते अयम् स्पर्शः सन्तापम् हरति ॥ १८ ॥

व्यक्तमिति । प्रिये = प्रेयसि । व्यक्तम् = स्पष्टम् । लग्नः = संलग्नः । अपि पावकः = वह्निः । भवतीम् = श्रीमतीं त्वाम् । न दहति = दग्धां न करोति एव यतः = यस्मात् । ते = तव । अयम् = एषः । स्पर्शः = शरीरस्पर्शः । सन्तापम् = दाहकताम् हरति = विनाशयति । अनुष्टुप्-वृत्तम् ॥ १८ ॥

(देखकर) बार-बार लड़खड़ा क्यों रही हो क्या बेड़ी बँधी हुई है ? (फेंटा बाँधकर) हे प्रिये, मैं तुम्हें यहाँ से अन्यत्र लिये चल रहा हूँ, तुम मुझे पकड़ लो ॥ १७ ॥

(गले लगाकर आँखें बन्द किये हुये स्पर्श सुख का अभिनय करते हुये ।) अरे क्षण भर में ही यह सन्ताप दूर हो गया । प्रिये, धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

हे प्रिये ! स्पष्ट है कि लगी हुई आग भी आपको नहीं जला रही है क्योंकि तुम्हारा यह स्पर्श सन्ताप को ही दूर कर रहा है ॥ १८ ॥

(आखें खोलकर चारों ओर देखकर और सागरिका को छोड़कर) अरे महान् आश्चर्य है ।

वह अग्निदेव कहाँ चले गये । यह अन्तःपुर (राजमहल) उस दशा को पहुँच गया ।
(वासवदत्ता को देखकर) क्या यह अवन्ति राजपुत्री वासवदत्ता है !

वासवदत्ता—(राज्ञः शरीरं परामृश्य सहर्षम् ।) दिट्ठिआ अक्खतसरीरो अज्जउत्तो । [दिष्टयाऽक्षतशरीर आर्यपुत्रः ।]

राजा—बाभ्रव्य एष—

बाभ्रव्यः—देव इदानीं प्रत्युज्जीविताः स्मः ।

राजा— वसुभूतिरयम्—

वसुभूतिः—विजयतां महाराजः ।

राजा— —वयस्य—

विदूषकः—जअदु जअदु भवं । [जयतु जयतु भवान् ।]

राजा—स्वप्ने मतिर्भ्रमति किं न्विदमिन्द्रजालम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—असौ हुतवहः क्व गतः ? एतद् अन्तःपुरम् तदवस्थम् (अस्ति) कथम् इयम् अवन्तिनृपात्मजा (वर्त्तते) एष बाभ्रव्यः, अयम् वसुभूतिः, वयस्यः, स्वप्ने मतिः भ्रमति किम् नु इदम् इन्द्रजालम् (विद्यते) ॥ १९ ॥

क्वासाविति । असौ = सः । हुतवहः = अग्निः । क्व = कुत्र । गतः = यातः । एतत् = इदम् अन्तःपुरम् = प्रासादस्यान्तरिकं कक्षम् । तदवस्थम्–तत् = तादृशी अवस्था = दशा यस्य तत् । (अस्ति) कथम् = किम् । इयम् = एषा । अवन्तिनृपात्मजा = अवन्तिनृपस्य = उज्जयिनीनरेशस्य आत्मजा = सुता, वासवदत्ता इत्यर्थः । (वर्त्तते) एषः = अयम् । बाभ्रव्यः = तन्नामकः कञ्चुकिः (अस्ति) अयम् = एषः वसुभूतिः = सिंहलेश्वरामात्यः (अस्ति) (अयम्) वयस्यः = मित्रः वसन्तकः (अस्ति) स्वप्ने = स्वप्नदशायाम् । मतिः = बुद्धिः । भ्रमति = भ्रान्तिं गच्छति । किम् । नु = खलु । इदम् = एतत । इन्द्रजालम् = मायाजालम् ('जादूगरी' इति भाषायाम्) विद्यते । अत्र सन्देहालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १९ ॥

वासवदत्ता—(राजा के शरीर को स्पर्श कर प्रसन्नता से) सौभाग्य से महाराज जलने से बच गये हैं ।

राजा—यह बाभ्रव्य है ।

बाभ्रव्य—महाराज अब हम सब जीवित हो उठे ।

राजा—यह वसुभूति हैं ।

वसुभूति—महाराज की जय हो ।

राजा—मित्र (वसन्तक) हैं ।

विदूषक—जय हो, आप की जय हो ।

राजा—स्वप्न में बुद्धि भ्रम में पड़ गई है । क्या यह इन्द्रजाल (जादूगरी) है ? ॥१९॥

विदूषकः—भो मा संदेहं करेहि । इन्दजालं एव्व एदम् । भणिदं तेण दासीएपुत्तेण इन्दजालिएण जहा एक्को उण मह खेलओ अवस्सं देवेण पेक्खिदव्वोत्ति । ता तं ज्जेव्व एदम् । [भोः मा संदेहं कुरु । इन्द्रजालमेवेदम् । भणितं तेन दास्याः पुत्रेणैन्द्रजालिकेन यथैको मम पुनः खेलोऽवश्यं देवेन प्रेक्षितव्य इति । तत्तदेवैतत् ।]

राजा—देवि इयं त्वद्वचनादस्माभिरिहानीता सागरिका ।

वासवदत्ता—(सस्मितम् ।) अज्जउत्त जाणिदं मए । [आर्यपुत्र ज्ञातं मया ।]

वसुभूतिः—(सागरिकां दृष्ट्वा । अपवार्य ।) बाभ्रव्य सदृशीयं राजपुत्र्या ।

बाभ्रव्यः—अमात्य ममाप्येतदेव मनसि वर्तते ।

वसुभूतिः—(राजानमुद्दिश्य ।) देव कुत इयं कन्यका ।

राजा—देवी जानाति ।

वसुभूतिः—देवि कुतः पुनरियं कन्यका ।

वासवदत्ता—अमच्च एसा क्खु साअरादो पाविदेत्ति भणिअ अमच्चजोअन्धराअणेण मम हत्थे णिक्खित्ता । अदो एव्व साअरिआत्ति सद्दावीअदि । [अमात्य एषा खलु सागरात्प्राप्तेति भणित्वामात्ययौगन्धरायणेन मम हस्ते निक्षिप्ता । अत एव सागरिकेति शब्द्यते ।]

देवेन = महाराजेन । तदेव = इन्द्रजालमेव ।

सदृशी = समानाकृतिः ।

मम हस्ते निक्षिप्ता = मत्पार्श्वे स्थापिता । शब्द्यते = आख्यायते ।

विदूषक—अरे सन्देह मत करो । इन्द्रजाल ही है । उस दासी पुत्र ऐन्द्रजालिक ने कहा कि मेरा एक खेल तो आपको अवश्य देखना चाहिए । सो यह वही है ।

राजा—देवि, यह तुम्हारे कहने से मेरे द्वारा लाई गई सागरिका है ।

वासवदत्ता—(मुस्कराकर) आर्यपुत्र, मैंने जान लिया ।

वसुभूति—(सागरिका को देखकर, मुँह घुमाकर) बाभ्रव्य यह राजपुत्री के समान ही है ।

बाभ्रव्य—मन्त्री जी, मेरे मन में भी यह है ।

वसुभूति—(राजा की ओर संकेत करके) महाराज यह कन्या कहाँ से (लाई गई है ?)

राजा—महारानी जानती हैं ।

वसुभूति—देवि, यह कन्या कहाँ से (आई है ?)

वासवदत्ता—मन्त्री जी, 'यह तो समुद्र से प्राप्त हुई है' यह कहकर मन्त्री यौगन्धरायण मेरे हाथ में सौंप दी है । अत एव सागरिका कहलाती है ।

राजा—(स्वगतम् ।) यौगन्धरायणेन न्यस्ता ? कथमसौ मामनिवेद्य किंचित्करिष्यति ।

वसुभूतिः—(अपवार्य ।) बाभ्रव्य यथा सुसदृशी वसन्तकस्य कण्ठे रत्नमाला, अस्याश्च सागरात्प्राप्तिः, तथा व्यक्तं सिंहलेश्वरस्य दुहिता रत्नावलीयम् । (प्रकाशम् ।) आयुष्मति न खलु राजपुत्री रत्नावली त्वमेनामवस्थामुपगता ?

सागरिका—(वसुभूतिं विलोक्य सास्रम् ।) कहं अमच्चो वसुभूदी। [कथममात्यो वसुभूतिः ।]

वसुभूतिः—(सास्रम् ।) हा हतोऽस्मि मन्दभाग्यः । (भूमौ निपतति ।)

सागरिका—हा तात हा अम्ब कहिं सि । देहि मे पडिवअणम् । [हा तात ! हा अम्ब ! कुत्रासि । देहि मे प्रतिवचनम् ।] (इति वसुभूतेरुपरि पतन्ती मोहमुपगता ।)

वासवदत्ता—(ससंभ्रमम् ।) अज्ज कञ्चुइ इअं सा मम बहिणी रअणावली । [आर्य कञ्चुकिन् इयं सा मम भगिनी रत्नावली ।]

बाभ्रव्य—देवि इयमेव सा ।

न्यस्ता = न्यासीकृता । अनिवेद्य = अकथयित्वा । सुसदृशी = अतिसंगता । व्यक्तम् = स्पष्टम् । आयुष्मति = चिरजीविनि । एनाम् = ईदृशीम् । उपगता = प्राप्ता । प्रतिवचनम् = उत्तरम् । सा = रत्नावली ।

राजा—(मन ही मन) यौगन्धरायण ने दी है ? क्या यह मुझसे बिना कहे ही कुछ करेगा ।

वसुभूति—(मुँह फेरकर) बाभ्रव्य, जैसे वसन्तक के कण्ठ में रत्नमाला है और इसकी प्राप्ति समुद्र से है । इससे यह प्रकट होता है कि यह सिंहलराज की कन्या (रत्नावली) है । (प्रकट रूप में) आयुष्मति, क्या तुम राजकुमारी रत्नावली हो तो नहीं हो जो कि इस दशा को प्राप्त हो चुकी हो ।

सागरिका—(वसुभूति को देखकर आँसू बहाते हुये) क्या मन्त्री वसुभूति जी हैं ?

वसुभूति—(रोते हुये) हा ! मन्द भाग्यवाला मैं मारा गया । (भूमि पर गिर पड़ता है ।)

सागरिका—हा पिता जी, हाय माता जी, कहाँ हो । मुझे उत्तर दीजिये । (वसुभूति के ऊपर गिरकर मूर्च्छित हो जाती है)

वासवदत्ता—(भयभीत होकर) आर्य कञ्चुकि ! क्या यह मेरी बहन रत्नावली है ?

बाभ्रव्य—महारानी जी, हाँ वही यह है ।

वासवदत्ता—(रत्नावलीमालिङ्ग्य ।) बहिणि समस्सस । [भगिनि समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।]

राजा—कथमुदात्तवंशस्य सिंहलेश्वरस्य विक्रमबाहोरात्मजेयम् ।

विदूषकः—(रत्नमालां स्पृशन् । स्वगतम्) पढमं जेव्व मए जाणिदं ण क्खु सामण्णजणस्स ईदिसो परिच्छओ होदित्ति । [प्रथममेव मया ज्ञातं न खलु सामान्यजनस्येदृशः परिच्छदो भवतीति ।]

वसुभूतिः—(उत्थाय ।) आयुष्मति समाश्वसिहि समाश्वसिहि । नन्वियं ज्यायसी ते भगिनी दुःखमास्ते । तत्परिष्वजस्वैनाम् ।

सागरिका—(समाश्वस्य वासवदत्तां दृष्ट्वा स्वगतम् ।) किदावराहा क्खु अहं देवीए ण सक्कुणोमि मुहं दंसिदुम् । [कृतापराधा खल्वहं देव्या न शक्नोमि मुखं दर्शयितुम् ।] (इत्यधोमुखी तिष्ठति ।)

वासवदत्ता—(सास्रं बाहू प्रसार्य ।) एहि एहि अदिणिट्ठुरे इदाणिं पि दाव सिणेहं दंसेहि । अज्जउत्त लज्जेमि क्खु इमिणा अत्तणो णिसंसत्तणेन ।

आलिंग्य = कण्ठे गृहीत्वा । उदात्तवंशस्य = प्रतिष्ठितकुलस्य । आत्मजा = दुहिता, रत्नावली ।

सामान्यजनस्य = साधारणलोकस्य । परिच्छदः = वेशः । ज्यायसी = ज्येष्ठा । परिष्वजस्व = गाढमालिंग । एनाम् = वासवदत्ताम् । कृतापराधा—कृतः = विहितः अपराधः यया, सा ।

वासवदत्ता—(रत्नावली को आलिंगन करके) बहन धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

राजा—क्या उदार हृदय सिंहलराज विक्रमबाहु की यह कन्या (रत्नावली) है ।

विदूषक--(रत्नमाला को छूते हुये, मन ही मन) मैंने पहले ही जान लिया था कि यह सामान्य व्यक्ति नहीं हो सकता है ।

वसुभूति—(उठकर) आयुष्मति, धैर्य रखो, धैर्य रखो । यह तुम्हारी बड़ी बहन दुःखी है । अतः इन्हें गले लगाओ ।

सागरिका—(धैर्य रखकर वासवदत्ता को देखकर मन ही मन) मैंने तो महारानी जी का अपराध किया है, मैं मुँह भी नहीं दिखा सकती हूँ । **(मुँह नीचे कर खड़ी रहती है ।)**

वासवदत्ता—(रोती हुई बाँहें फैलाकर) आओ आओ । अतिनिठुर हृदय वाली, अब भी स्नेह दिखलाओ (गले लग जाती है । रत्नावली लड़खड़ाने का अभिनय

ता अवणेहि से बन्धणम् [एह्येह्यतिनिष्ठुरे इदानीमपि तावत्स्नेहं दर्शय। (इति कण्ठे गृह्णाति रत्नावली स्खलितं नाटयति ।) (अपवार्य ।) आर्यपुत्र लज्जे खल्वनेनात्मनो नृशंसत्वेन । तदपनयास्या बन्धनम ।]

राजा—(सपरितोषम् ।) यथाह देवी । (इति तथा करोति ।)

वास०—अज्जउत्त अमच्चयौगन्धराअणेण एत्तिअं क्खु कालं दुज्जणीकिदम्हि । जेण जाणंतेण वि ण णिवेदिदम् । [आर्यपुत्र अमात्ययौगन्धरायणेनैतावन्तं खलु कालं दुर्जनीकृतास्मि । येन जानतापि न निवेदितम् ।]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः ।)

यौगन्धरायणः—

देव्या मद्वचनाद्यदाऽभ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा
सा देवस्य कलत्रसंघटनया दु;खं मया स्थापिता ।

अतिनिष्ठुरे=अतिनिर्दये । स्नेहम्=प्रेम । लज्जे=लज्जितास्मि । नृशंसत्वेन =क्रूरत्वेन । अपनय=दूरीकुरु । बन्धनम्=निगडम् ।

सपरितोषम्=सन्तोषेण सह । एतावन्तम्=इयन्तम् । दुर्जनीकृता=कठोरत्वं प्रापिता । जानता=ज्ञातमात्रेण ।

अन्वयः—यदा मद् वचनात् देव्या पत्युः वियोगः अभ्युपगतः तदा मया देवस्य कलत्रसंघटनया सा दुःखं स्थापिता प्रभोः अयम् जगत्स्वामित्वलाभः तस्या प्रीतिम् करिष्यति (इति) सत्यम् तथापि लज्जया वदनम् दर्शयितुम् नो शक्नोमि ॥ २० ॥

देव्या इति । यदा=यस्मिन् काले । मद् वचनात्—मम=अमात्ययौगन्ध-

करती है ।) (मुँह घुमाकर) आर्यपुत्र, इसके प्रति किये गये क्रूर व्यवहार से मैं लज्जित हूँ । अतः इसका बन्धन खोल दो ।

राजा—(सन्तोष के साथ) जैसा आप कहती हैं (वैसा ही होगा) (वैसा करता है ।)

वासवदत्ता--आर्यपुत्र अमात्य यौगन्धरायण ने ही इतने समय तक दुष्टता की है। जो कि जानते हुये भी उन्होंने नहीं बतलाया ।

(तब यौगन्धरायण प्रवेश करते हैं ।)

यौगन्धरायण—जब मेरे कहने से "कि वासवदत्ता लावाणक ग्राम में आग में जल गई

मद्वचनात्--यौगन्धरायण का कथन है कि जब एक बार मैंने महारानी से यह कहा था कि आप कुछ समय के लिए मेरे किसी गूढ़ आशय से महाराज से

तस्याः प्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः
सत्यं दर्शयितुं तथाऽपि वदनं शक्नोमि नो लज्जया ॥ २० ॥

(क्षणं विचिन्त्य ।) अथ वा किं क्रियते । ईदृशमत्यन्तमाननीयेष्वपि निरनुरोधवृत्ति स्वामिभक्तिव्रतम् । (विलोक्य ।) अयं देवः । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य ।) जयतु जयतु देवः । देव क्षम्यतां यन्मया देवस्यानिवेद्य कृतम् ।

रायणस्य वचनात्=कथनात् । देव्याः=राज्ञ्याः वासवदत्तायाः । पत्युः=स्वामिनः । वियोगः=विश्लेषः । अभ्युपगतः=अङ्गीकृतः । तदा=तस्मिन् काले । मया =यौगन्धरायणेन । देवस्य=राज्ञः । कलत्रसंघटनया—कलत्रस्य=पत्न्याः संघटनया=योजनया । सा=देवी वासवदत्ता । दुःखम्=क्लेशम् । स्थापिता= प्रापिता । प्रभोः=स्वामिनः । अयम्=एषः । जगत् स्वामित्वलाभः—जगतः= लोकस्य स्वामित्वलाभः=मण्डलेश्वरपदप्राप्तिः तस्याः देव्याः । प्रीतिम्=स्नेहम् । करिष्यति=विधास्यति । (इति) सत्यम्=तथ्यम् । तथापि=तदापि । लज्जया= ह्रिया । वदनम्=मुखम् । दर्शयितुम्=अवलोकयितुम् । न शक्नोमि=नैव समर्थोऽस्मि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २० ॥

अत्यन्तमाननीयेषु=अत्यन्तादरभाजनेषु । निरनुरोधवृत्ति—निर्गतः=दूरीभूतः अनुरोधः=अनुकूलता ('अनुरोधोऽनुवर्त्तनम्' इत्यमरः ।) यस्याः सा तादृशी वृत्तिः=व्यवहारः यस्मिन् तादृशम् । स्वामिभक्तिव्रतम्—स्वामिनः=प्रभोः

हैं" देवी द्वारा पति से वियोग स्वीकार किया गया, उस समय मेरे द्वारा महाराज के स्त्री भाव की योजना से वह (देवी वासवदत्ता) दुःखी हो गई। स्वामी का यह मण्डलेश्वर पद का लाभ उसकी प्रीति बना देगा, यह सच है। फिर भी लज्जा से अपना मुँह दिखा पाने की सामर्थ्य (मुझ में) नहीं है ॥ २० ॥

(क्षणभर सोचकर) अथवा क्या किया जाय। ऐसे माननीयों में स्वामिभक्ति के व्रत में उपेक्षा करनी पड़ती है। (देखकर) यह महाराज हैं। इनके पास चलता हूँ। (आगे जाकर) जय हो महाराज जय हो। महाराज क्षमा कीजिये, जो कि मैंने आपको बताये बिना (कार्य) कर डाला।

राजा—यौगन्धरायण, कहिये, क्या बिना बताये कर डाला ?

पृथक् अज्ञात रूप में रहें। इस कथन को महारानी वासवदत्ता ने मान लिया था और कष्ट सहन किये थे।

राजा—यौगन्धरायण, कथय किमनिवेद्य कृतम् ।

यौगन्ध०—करोत्वासनपरिग्रहं देवः । सर्वं विज्ञापयामि ।

(सर्वे यथास्थानमुपविशन्ति ।)

यौगन्ध०—(कृताञ्जलिः ।) देव श्रूयताम् । इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धेनादिष्टा यथा योऽस्याः पाणिं ग्रहीष्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति। ततस्तत्प्रत्ययादस्माभिः स्वाम्यर्थं बहुशः प्रार्थ्यमानेनापि सिंहलेश्वरेण देव्या वासवदत्तायाश्चित्तखेदं परिहरता यदा न दत्ता—

राजा—तदा किम् ।

यौगन्ध०—तदा लावाणकेन वह्निना देवी दग्धेति प्रसिद्धिमुत्पाद्य तदन्तिकं बाभ्रव्यः प्रहितः ।

भक्तिः = श्रद्धा सैव व्रतम् = नियमः । अनिवेद्य = अकथयित्वा । आसनपरिग्रहम् = आसनग्रहणम् । विज्ञापयामि = निवेदयामि । इयम् = एषा । सिंहलेश्वरदुहिता = सिंहलराजपुत्री रत्नावली । सिद्धेन = सिद्धपुरुषेण । आदिष्टा = निर्दिष्टा । अस्याः = रत्नमालायाः । पाणिं ग्रहीष्यति = परिणेष्यति । सार्वभौमः = सर्वस्याः भूमेः राजा = चक्रवर्त्ती । तत्प्रत्ययात्—तस्य = सिद्धपुरुषस्य प्रत्ययात् = विश्वासात् । स्वाम्यर्थम् = भवदर्थम् बहुशः = वारंवारम् । प्रार्थ्यमानेन = कृतनिवेदनेन । सिंहलेश्वरेण = विक्रमबाहुना । चित्तखेदम् = सपत्नीत्वमनःपीडाम् । परिहरता = दूरीकुर्वता । तदन्तिकम्-तस्य = सिंहलेश्वरस्यान्तिकम् = पार्श्वम् । बाभ्रव्यः = तन्नामकञ्चुकी । प्रहितः = प्रेषितः ।

यौगन्धरायण—आप आसन-ग्रहण करें । सब बतला रहा हूँ ।

(सभी यथास्थान बैठ जाते हैं ।)

यौगन्धरायण—(हाथ जोड़कर) महाराज, सुनिये । इस सिंहलराज पुत्री (रत्नावली) को किसी सिद्ध पुरुष ने बतलाया कि जो व्यक्ति इसका पाणिग्रहण (विवाह) करेगा वह सार्वभौम राजा होगा । तब उस सिद्ध पुरुष की वाणी के विश्वास से हमने आपके हित के लिए बार-बार सिंहलेश्वर विक्रमबाहु से उसके विवाह के लिए प्रार्थना की पर सिंहल नरेश ने महारानी वासवदत्ता के चित्त के खेद को मिटाते हुये जब उस (रत्नावली) का विवाह नहीं किया तो—

राजा—तब क्या ?

यौगन्धरायण—तब लावाणक गाँव में लगी आग से देवी वासवदत्ता जल गई है, यह प्रसिद्ध करके सिंहलेश्वर के पास मैंने (विवाह का सन्देश लेकर) बाभ्रव्य (कंचुकि) को भेजा ।

राजा—ततः परं श्रुतं मया। अथेयं देव्या हस्ते किमनुचिन्त्य स्थापिता।

विदूषकः—भो० अणाचक्खिदं वि एदं जाणीअदि जेव्व जधा अन्तेउर-गदा सुहेण दे णअणपधं गमिस्सदित्ति। [भो अनाख्यातमप्येतज्ज्ञायत एव यथा अन्तःपुरगता सुखेन ते नयनपथं गमिष्यतीति।]

राजा—(विहस्य।) यौगन्धरायण गृहीताभिप्रायोऽसि वसन्तकेन।

यौगन्ध०—यदाज्ञापयति देवः।

राजा—ऐन्द्रजालिकवृत्तान्तोऽपि मन्ये त्वत्प्रयोग एव।

यौगन्ध०—देव एवम्। अन्यथाऽन्तःपुरे वद्धाया अस्याः कृतो देवेन दर्शनम्। अदृष्टायाश्च वसुभूतिना कुतः परिज्ञानम्। (विहस्य।) परिज्ञाता-याश्च भगिन्याः संप्रति यथाकरणीयं तत्र देवी प्रमाणम्।

इयम् = रत्नावली। देव्याः = वासवदत्तायाः। अनुचिन्त्य = बुद्धौ निधाय। अनाख्यातम् = अकथितम्। अन्तःपुरगता—अन्तःपुरे = अवरोधने गता = स्थिता। सुखेन = कष्टेन विना। दर्शनपथम् = नयनगोचरताम्।

गृहीताभिप्रायः=विदिताभिसन्धिः। त्वत्प्रयोगः—तव=यौगन्धरायणस्य प्रयोगः =कृतकार्यम्।

अदृष्टायाः = अनवलोकितायाः। परिज्ञानम् = अभिज्ञानम्। देवी प्रमाणम् = वासवदत्तायाः अधिकारः।

राजा—इसके बाद मैं सब सुन चुका हूँ। इसके बाद यह महारानी के हाथ में क्या सोचकर सौंपी गई ?

विदूषक—अरे बिना कहे ही यह समझा जाता है कि राजमहल में पहुँची हुई (वह) सुख से आप देख लेंगे।

राजा—(हँसकर) यौगन्धरायण, वसन्तक ने तुम्हारा अभिप्राय समझ लिया।

यौगन्धरायण—जो महाराज कह रहे हैं (वही ठीक है)।

राजा—मैं समझता हूँ—ऐन्द्रजालिक वृत्तान्त (जादूगरी की घटना) भी तुम्हारा ही प्रयोग है।

यौगन्धरायण—महाराज, ऐसा ही है। नहीं तो अन्तःपुर में बंधी हुई इस (रत्नावली) का दर्शन आपको कहाँ से होता। और बिना देखे वसुभूति को इसकी जानकारी कहाँ से सम्भव थी। (हँसकर) बहन के पहिचान लिये जाने पर अब जो व्यवहार करना चाहिये इसके लिए महारानी जी प्रमाण हैं अर्थात् देवीजी का यह अधिकार है।

वास०—(सस्मितम् ।) अज्ज फुडं जेव्व किं ण भणासि जहा पडिवादेहि से रअणावली त्ति । [आर्य स्फुटमेव किं न भणसि यथा प्रतिपादयास्मै रत्नावलीमिति ।]

विदूषकः—भोदि सुठ्ठु तुए जाणिदो अमच्चस्स अभिप्पाओ । [भवति सुष्ठु त्वया ज्ञातोऽमात्यस्याभिप्रायः ।]

वास०—(हस्तं प्रसार्य ।) एहि रअणावलि एहि । एत्तिअंवि दाव मे बहिणीआणुरूवं भोदु । अज्जउत्त पडिच्छ एदम् । [एहि रत्नावलि एहि । एतावदपि तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु । (रत्नावलीं स्वैराभरणैरलंकृत्य हस्ते गृहीत्वा राजानमुपसृत्य ।) आर्यपुत्र प्रतीच्छैनाम् ।]

राजा—(सपरितोषं हस्तौ प्रसार्य ।) को देव्याः प्रसादो न बहु मन्यते ।

वास०—अज्जउत्त दूरे क्खु एदाए पिदुकुलम् । ता तहा करेहि जहा ण बन्धुजणं सुमरेदि । [आर्यपुत्र दूरे खल्वेतस्याः पितृकुलम् । तत्तथा कुरु यथा न बन्धुजनं स्मरति ।](इति समर्पयति ।)

राजा—यथाज्ञापयति देवी । (रत्नावलीं गृह्णाति ।)

स्फुटम् = स्पष्टम् । प्रतिपादय = समर्पय । अभिप्रायः = तात्पर्यम् । एतावत्= त्वत्समर्पणम् । प्रतीच्छ = गृहाण । एताम् = एनाम् रत्नावलीम् । प्रसादः = प्रसन्नता । न बहुमन्यते = न आदरेण गृह्यते ।

एतस्याः = अस्याः रत्नावल्याः । पितृकुलम्—पितुः = तातस्य कुलम्=तातगृहम् । तथा कुरु = तादृशमाद्रियस्व ।

वासवदत्ता—(मुस्करा कर) आर्य, स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि रत्नावली इन (महाराज उदयन) को समर्पित कर दो ।

विदूषक—देवी जी, आपने ठीक समझ लिया मन्त्री जी का अभिप्राय ।

वासवदत्ता—(हाथ फैलाकर) आओ रत्नावली आओ । इतना मात्र मेरा आचरण सबतक बहन के अनुरूप होवे । **(रत्नावली को अपने आभूषणों से सजाकर हाथ में पकड़कर राजा के निकट जाकर)** आर्यपुत्र (महाराज), इसे ग्रहण कर लें ।

राजा—(सन्तोष के साथ दोनों हाथ फैलाकर) कौन आपका प्रसाद बहुत नहीं मानता है अर्थात् ग्रहण कर अपने को महान नहीं समझता है ।

वासवदत्ता—आर्य, इसके पिता का घर तो दूर है । अतः ऐसा (आदर) करो कि वह अपने बन्धुजनों को याद न करे । **(सौंप देती है ।)**

राजा—जैसा आप कहती हैं (वैसा ही करूँगा ।) **(रत्नावली को ले लेता है)** ।

विदूषकः—(नृत्यन् ।) ही ही भो पुहवी क्खु दाणि हत्थगदा पिअवअस्सस्स । [ही ही भोः पृथ्वी खल्विदानीं हस्तगता प्रियवयस्यस्य ।]

वसु०—आयुष्मति स्थाने देवीशब्दमुद्वहसि ।

यौगन्ध०—इदानीं सफलपरिश्रमोऽस्मि संवृत्तः । देव तदुच्यतां किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।

राजा—किमतः परमपि प्रियमस्ति । यतः—

नीतो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्राप्तेयमुर्वीतले
सारं सागरिका ससागरमहीप्राप्त्येकहेतुः प्रिया ।
देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाज्जिताः कोसलाः
किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मै करोमि स्पृहाम् ॥ २१ ॥

पृथ्वी – पृथिव्याः राज्यम् । हस्तगता – उपलब्धा ।

आयुष्मति = चिरजीविनि । स्थाने = उपयुक्तम् । उद्वहसि = धारयसि ।

सफलपरिश्रमः = सफलम् = सार्थकम् परिश्रमम् = श्रमम् यस्य सः । संवृत्तः = जातः । उच्यताम् = कथ्यताम् । प्रियम् = प्रियकार्यम् ।

अतः परम् = अस्मादप्यधिकम् ।

अन्वयः—विक्रमबाहुः आत्मसमताम् नीतः, उर्वीतले सारम् ससागरमहीप्राप्त्येकहेतुः इयम् प्रिया सागरिका प्राप्ता, भगिनीलाभात् देवी, प्रीतिम् उपागता, च कोसलाः जिताः । 'इत्थम्' त्वयि अमात्यवृषभे सति किम् न अस्ति यस्मै स्पृहाम् करोमि ॥ २१ ॥

नीत इति । विक्रमबाहुः = सिंहलेश्वरः । आत्मसमताम्–आत्मनः = स्वस्य

विदूषक–(नाचता हुआ) अहा अहा । अब तो प्रियवयस्य को पृथ्वी का राज्य मिल गया । (अर्थात् सिद्धवाणी के अनुसार अब मित्र अवश्य चक्रवर्ती राजा बन जायेंगे ।)

वसुभूति–आयुष्मति, तुम वास्तव में देवी हो ।

यौगन्धरायण—अब हमारा परिश्रम सफल हो गया है । महाराज ! कहिये, पुनः अब आपका और क्या उपकार करूँ ।

राजा—क्या इससे भी बढ़कर कुछ और प्रिय है । क्योंकि—

(सिंहलराज) विक्रमबाहु को अपने समान बना लिया अर्थात् अपना सम्बन्धी बना लिया, पृथ्वीतल की तत्त्व (अनुपमा सुन्दरी) समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का एक छत्र राज्य प्राप्त करने का एकमात्र कारण प्रिया इस रत्नावली को पा लिया, अर्थात पत्नी बना

तथापीदमस्तु। (भरतवाक्यम्।)

उर्वीमुद्दामसस्यां जनयतु विसृजन् वासवो वृष्टिमिष्टा-
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्याः।

समताम् तुल्यताम्। नीतः = प्रापितः। उर्वीतले = भूतले। सारम् = तत्त्वम्। ससागरमहीप्राप्त्येकहेतुः—सागरैः सह वर्त्तत इति ससागरा या मही = समुद्र-पर्यन्तभूमिः तस्याः प्राप्तौ = लाभे–एकः = मुख्यः हेतु = कारणम् या सा। इयम् = एषा। प्रिया = प्रेयसी। सागरिका = तन्नाम्नी सिंहलराजदुहिता। प्राप्ता = अधिगता। भगिनीलाभात्—भगिन्याः = कनीयस्याः लाभात् = प्राप्तः। देवी = राज्ञी वासवदत्ता। प्रीतिम् = प्रसन्नताम्। उपगता = प्राप्ता। च = तथा। कोसलाः = कोसलदेशाः। जिताः = विजिताः। (इत्थम्) त्वयि = भवति यौगन्धरायणे। अमात्यवृषभे–अमात्येषु = मन्त्रिषु वृषभः = श्रेष्ठः यस्तिस्मिन् = मन्त्रिप्रवरे (सति) किम् = किमपि। न अस्ति=न वर्त्तते। यस्मै = यत्प्राप्त्यर्थम्। स्पृहाम्–अभिलाषाम् करोमि = विदधामि। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—इष्टां वृष्टिम् सृजन् वासवः उर्वीम् उद्दामसस्याम् जनयतु; विप्रमुख्याः इष्टैः त्रैविष्टपानाम् विधिवत् प्रीणनम् विदधतु समुपचितसुखः सज्जनानाम् सङ्गमः आकल्पान्तम् भूयात् वज्रलेपाः दुर्जयाः पिशुनजनगिरः निःशेषम् शान्तिम् यान्तु ॥ २२ ॥

उर्वीमिति। इष्टाम् = अभीष्टाम्। वृष्टिम्=वर्षाम्। सृजन्=उत्पादयन्। वासवः

लिया। बहन प्राप्त हो जाने के कारण महारानी वासवदत्ता भी प्रसन्न हैं अर्थात् सपत्नी (रत्नावली) के कारण महारानी भी रुष्ट नहीं हैं जैसा कि उनके लिए स्वाभाविक था। कोसल राज्य को जीत लिया। इस प्रकार आपके महान् मन्त्री होते हुये मेरे पास अब किस वस्तु की कमी है जिसके लिये कामना करूँ ॥ २१ ॥

फिर भी यह हो--(**भरत-वाक्य**)

मन चाही वर्षा करते हुए इन्द्र पृथ्वी को फसल से परिपूर्ण कर दें, ब्राह्मण आदि सभी

भरतवाक्यम्—संस्कृत नाटकों में आरम्भ के समान ही अन्त (समाप्ति) भी पद्यमय आशीर्वाद से किया जाता है जिसमें कल्याण की कामना की जाती है इसी को भरत वाक्य अथवा आशीः कहते हैं। यथा—'आशीरिष्टजनाशंसा' इति।

आकल्पान्तं च भूयात् समुपचितसुखः संगमः सज्जनानां
निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः ॥ २२ ॥

= इन्द्रः । उर्वीम् = पृथ्वीम् । उद्दामसस्याम्—उद्दामानि = प्रभूतीनि सस्यानि = धान्यानि यस्यां तथाविधाम् = समधिकसस्यशालिनीम् । जनयतु = करोतु । विप्रमुख्याः–विप्रः = ब्राह्मणः मुख्यः = प्रमुखः येषु ते = ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः सर्वे जनाः । इष्टैः = अभिलषितैः यागैः, दानसेवादिकार्यैश्च । त्रैविष्टपानाम् = त्रिविष्टपे = स्वर्गे भवाः त्रैविष्टपाः = देवाः, तेषाम् । विधिवत् = विधिपूर्वकम् । प्रीणनम् = तर्पणादिकं प्रियकरम् । विदधतु=कुर्वन्तु । समुपचितसुखः–समुपचितम्= वृद्धिं गतम् सुखम् = ऐहिकं पारलौकिकञ्च सौख्यम् येन तादृशः । सज्जनानाम् = सत्पुरुषाणाम् । सङ्गमः = सङ्गतिः । आकल्पान्तम् = प्रलयपर्यन्तम् । भूयात् = भवतु । वज्रलेपाः–वज्रं = कुलिशम्, तद्वत् लेपः = सम्बन्धः यासां ताः = परमकठिनाः । दुर्जयाः=दुष्परिहाराः । पिशुनजनगिरिः–पिशुनजनानाम्=खलानाम् गिरः = वाण्यः । निःशेषम् = निखिलम् । शान्तिम् = उपशमम् । यान्तु = नाशं गच्छन्तु । अत्राशीर्नामनाट्याङ्गम् । स्रग्धरावृत्तम् ॥ २२ ॥

अस्त्युत्तर प्रदेशोऽत्र, राज्येषु भारतस्य वै ।
हृदयमिव सुराष्ट्रस्य, तत्राऽऽस्ते शाहजीपुरम् ॥ १ ॥
तस्मिन्मण्डले लोक-विश्रुतो नाहिलाभिधः ।
ग्रामो विप्रप्रमुखाणां, विदुषां व्यापारिणामपि ॥ २ ॥
सनाढ्येषु च तत्रैव, सत्सु पाराशरान्वये ।
पाण्डेयोपाह्व—विप्रोऽभूद्रेवतीराम—विश्रुतः ॥ ३ ॥
चत्वारश्चाभवंस्तस्य, पुत्राः पंक्तिपावनाः ।
जगन्नाथोऽथ जयलालो, रामलालस्तथैव च ॥ ४ ॥
प्यारेलाल इति ख्यातो, गीत-वाद्यविशारदः ।
द्वितीयश्च चतुर्थश्च, तेषु यातावपुत्रिणौ ॥ ५ ॥

अभीष्ट यागदान सेवादि कार्यों से स्वर्ग में स्थित देवताओं के विधिवत् प्रसन्न करने के कार्य करें, ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों की वृद्धि करने वाला सज्जनों का समागम युग-युग तक बना रहे तथा वज्र जैसी कठोर एवं दुर्जय दुष्ट पुरुषों की वाणी निरन्तर शान्ति करे अर्थात् दुष्टों के कठोर वाणी का अन्त हो जाये ॥ २२ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इत्यैन्द्रजालिको नाम चतुर्थोऽङ्कः ।

इति श्रीहर्षदेवस्य कृतिः समाप्तेयं रत्नावली नाम नाटिका ।
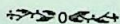
तृतीये विदुरो जातः, कथा-कीर्त्तनवाचकः ।
सुदामादेविगर्भात्, दाद्यस्याभवतां सुतौ ॥ ६ ॥
ज्येष्ठो ज्येष्ठ-गुणोपेतो, रामचन्द्रः प्रतापवान् ।
परमेश्वरदीनश्च, कनिष्ठो वागुपासकः ॥ ७ ॥
वेद देव-ख-नेत्राब्दे, शुभे श्रावण-पर्वणि ।
समानीता 'सुधाटीका', 'रत्नावल्याः' रवौ दिने ॥ ८ ॥

इति परमेश्वरदीनपाण्डेय-प्रणीतायां रत्नावल्याम्
ऐन्द्रजालिको नाम चतुर्थोऽङ्कः ।

(इति श्रीहर्षदेवकृत-रत्नावलीनाटिका)

शुभं भूयात् ।

(सभी निकल जाते हैं ।)

इस प्रकार इन्द्रजालिक नामक चतुर्थ अङ्क की हिन्दी टीका समाप्त ।

श्रीहर्षदेवकृत रत्नावली-नाटिका समाप्त ।
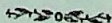
परिशिष्ट-क

रत्नावली-नाटिकास्थ-सुभाषितानि

अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः।
आत्मा किल दुःखमालिख्यते।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।
इयमनभ्रा वृष्टिः।
ईदृशमत्यन्तमाननीयेष्वपि निरनुरोधवृत्तिस्वामिभक्तिव्रतम्।
ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते।
एषा खलु त्वयाऽपूर्वा श्रीः समासादिता।
कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः।
कस्मात् परिहासशीलतयेमं जनं लघु करोषि।
किं पुनः साहसिकानां पुरुषाणां न सम्भाव्यते।
किमिदमकारणमेव पतङ्ग-वृत्तिः क्रियते।
ग्राम्यो यथाऽहं कृतः।
घुणाक्षरमपि कदापि सम्भवत्येव।
तत्कस्मादत्रारण्यरुदितं करोषि।
तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवसः।
दिष्ट्या वर्धसे समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्ध्या।
दुरवगाहा गतिर्दैवस्य।
न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते।
न खलु सखीजने युक्त एवं कोपानुबन्धः।
निःशेषं यान्तु पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः।
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसह्यं हि भवति।
भोः किमेतैर्वक्रभणितैः।
मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः।
मनश्चलं प्रकृत्यैव।
रमयतितरां सङ्केतस्था तथापि कामिनी।

परिशिष्ट-ख

रत्नावलीनाटिकायां प्रयुक्तानां छन्दसां लक्षणानि

शार्दूलविक्रीडितम्—सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।
प्रथमाङ्के—१, २, ५, ९, ११, १७, २३, २५ । द्वितीयाङ्के—३, ४, ५, ११, २१ । तृतीयाङ्के—१, ३, ११, १३, १८, १९ । चतुर्थाङ्के—१, ६, १२, २०, २१ । = २४ श्लोकाः ।

स्रग्धरा—म्रभ्नैर्याणां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।
प्रथमाङ्के—३, १०, १६, १८ । द्वितीयाङ्के—२ । तृतीयाङ्के-५, ८ । चतुर्थाङ्के—५, ११, १४, २२ । = ११ श्लोकाः ।

आर्या—यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥
प्रथमाङ्के—६, १९, २१, २४ । द्वितीयाङ्के—१, ७, ९. १२, १९ । तृतीयाङ्के—१०, १२ । = ११ श्लोकाः ।

अनुष्टुप्—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥
प्रथमाङ्के—२२ । द्वितीयाङ्के—६, १०, १८ । तृतीयाङ्के—२, १६ । चतुर्थाङ्के—४, १५, १८ । = ९ श्लोकाः ।

वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।
प्रथमाङ्के—८, १२, २ । द्वितीयाङ्के—१७ । तृतीयाङ्के—६, १४ । चतुर्थाङ्के—२, ३, १९ । = ९ श्लोकाः ।

शिखरिणी—रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ।
द्वितीयाङ्के—१३, २० । तृतीयाङ्के—४, ७ १५ । चतुर्थाङ्के—१३ । = ६ श्लोकाः ।

मालिनी—न न मयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।
द्वितीयाङ्के—१४ । तृतीयाङ्के—१७ । चतुर्थाङ्के—१६ । = ३ श्लोकाः ।

द्विपदीखण्डम्—युक्ता चतुर्भिश्चरणैस्त्रयोदशकलात्मकैः ।
प्रथमाङ्के—१३, १४, १५ श्लोकाः ।

गाथा—
चतुर्थाङ्के—७, ८, ९ गाथाः ।

पृथ्वीवृत्तम्—जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।
द्वितीयाङ्के—१६ । चतुर्थाङ्के—१७ । = २ श्लोकौ ।

पुष्पिताग्रा—अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।
प्रथमाङ्के—४ श्लोकाः ।

शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।
प्रथमाङ्के—७ श्लोकाः ।

प्रहर्षिणी—त्रयाशाभिर्मनजरगः प्रहर्षिणीयम् ।

द्वितीयाङ्के—८ श्लोकाः ।

हरिणीवृत्तम्—न समरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।

तृतीयाङ्के—९ श्लोकाः ।

उपजातिः—उपेन्द्रवज्रा अथ इन्द्रवज्रा एतद् द्वयं यत्र हि सोपजातिः ।

द्वितीयाङ्के—१५ श्लोकाः ।

परिशिष्ट—ग

नाटकीयाः परिभाषाः

रूपकम्—अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते ।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम् ॥

नाटकम्—अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् ।
तत्रापि—वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

नाटिका—नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका ।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥
स्यादन्तःपुरसम्बद्धा संगीतव्यापृताऽथवा ।
नवानुरागा कन्यऽत्र नायिका नृपवंशजा ॥

अङ्कः—प्रत्यक्ष-नेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः ।
भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः ॥
नानेकदिननिर्वर्त्यं कथया सम्प्रयोजितः ।
आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिर्मितः ॥
प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवैः ।
अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः ॥

नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

सूत्रधारः—नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयते यस्तु सूत्रधारः स उच्यते ॥

प्रस्तावना—नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

विष्कम्भकः—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।

प्रवेशकः—प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥
नेपथ्यम्—रामादिव्यञ्जको वेषो नटे नेपथ्यमुच्यते ।
स्वगतम्—अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ॥
प्रकाशम्—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् ।
जनान्तिकम्—अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।
आकाशभाषितम्—किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम् ॥
नायकः—त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥
नायिका—नवानुरागा कन्याऽत्र नायिका नृपवंशजा ।
सम्प्रवर्त्तेत नेताऽस्यां देव्यास्त्रासेन शंकितः ॥
देवी पुनर्भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।
पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः ॥
विदूषकः—कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥
कञ्चुकी—अन्तःपुरवासी षण्ढो वृद्धो धार्मिको ब्राह्मणः ।
अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ॥
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥
सङ्गीतकम्—नृत्यगीतादिकं वाद्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।
चर्चरीध्वनिः—हस्ततालयुतः शब्दश्चर्चरीध्वनिरुच्यते ।
प्ररोचना—उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना ।
अपवार्य—तद् भवेदपवारितम् । रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते ।
कथोद्घातः—सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा ।
भवेत्पात्रप्रवेशश्चेत् कथोद्घातः स उच्यते ॥
पताकास्थानकम्—यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते ।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ॥
बीजम्—अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति ।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजमित्यभिधीयते ॥
आशीः—आशीरिष्टजनाशंसा । एतदेव भरतवाक्यम् ।

परिशिष्ट—घ

प्राकृत-परिचय

'प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्' व्याख्यानुसार प्रकृति अर्थात् मूलभाषा से आया हुआ (परिवर्त्तित) भाषा का स्वरूप प्राकृत कहलाता है । भारत की मूल भाषा संस्कृत (वैदिक

तथा लौकिक) रूपों में प्राप्त होती है। प्रकृति का अर्थ जनसाधारण भी है। वैदिक संस्कृत को संस्कृत साहित्य में पण्डितों की भाषा तथा जनसाधारण की प्राचीन भाषा लौकिक संस्कृत माना गया है। अतः यहाँ भारत की जनसाधारण की मूल भाषा लौकिक संस्कृत से बिगड़े हुये भाषा स्वरूप को प्राकृत भाषा समझना चाहिये। संस्कृत नाटकों में स्त्रियों तथा नीच पात्रों की प्राकृतभाषा ही में बोलने का विधान है।

'प्राकृत' के तीन रूप मिलते हैं--१ महाराष्ट्री प्राकृत, २ शौरसेनी प्राकृत तथा ३ मागधी प्राकृत। व्याकरण की दृष्टि से महाराष्ट्री प्राकृत को सर्वोत्तम माना गया है। यह मुख्यतः महाराष्ट्र में प्रयुक्त होती थी। नाटकों में शौरसेनी प्राकृत बोलने वाले स्त्री पात्र भी पद्य (श्लोक) महाराष्ट्री प्राकृत में ही बोलते थे। प्राकृत का आदि काव्य 'गउडवहो' महाराष्ट्री प्राकृत में ही है। वर्त्तमान मथुरा के आसपास का प्रदेश शूरसेन तथा वहाँ पर प्रयोग की जाने वाली प्राकृत भाषा शौरसेनी कहलाती थी। यह संस्कृत के अतीव निकट है। वर्त्तमान हिन्दी की उत्पत्ति इसी शाखा से हुई है। वर्त्तमान पूर्वी बिहार (प्राचीन-मागध) के चारों ओर प्रयुक्त प्राकृत, मागधी-प्राकृत थी। महाराष्ट्री तथा शौरसेनी प्राकृत से मागधी प्राकृत में पर्याप्त भिन्नता मिलती है।

संस्कृत से प्राकृत में भाषा-परिवर्त्तन के निम्नाङ्कित मुख्य कारण माने गये हैं:—

(क) प्रयत्न लाघव, (ख) सांस्कृतिक विकास, (ग) जलवायु का प्रभाव, (घ) आर्येतरों की भाषा एवं शैली का प्रभाव।

प्राकृत भाषा की विशेषता

प्राकृत-भाषा की निम्नलिखित प्रमुख-विशेषतायें हैं:--(१) संयोगात्मकता--इस भाषा में सुप् तथा तिङ् शब्द तथा धातु से जुड़े रहते हैं। (२) सरलता--इसमें संस्कृत की अपेक्षा व्याकरण-सम्बन्धी नियम सरल हो जाते हैं। (३) संक्षिप्तता—शब्दों के विभिन्न रूप केवल तीन-चार प्रकार से ही पूर्ण हो जाते हैं। धातुरूप भी प्रायः एक से ही चलते हैं। शब्द प्रायः अकारान्त के समान तथा धातु रूप भ्वादिगणी के धातु रूप के समान चलते हैं, आत्मनेपद का प्रायः इसमें अभाव रहता है। प्रथमा तथा द्वितीया के प्रायः एक से रूप एवं द्विवचन, चतुर्थी विभक्ति और लिट् लङ् लुट् लकारों का अभाव रहता है। (४) स्वर तथा व्यञ्जन में परिवर्त्तन--संस्कृत में अप्राप्त ह्रस्व ए तथा ओ दो नवीन स्वर हो गये हैं। ह्रस्व स्वर के बाद दो से अधिक व्यञ्जन नहीं रह सकते हैं। साधारणतया अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है। संयुक्ताक्षरों में प्रायः पर सवर्ण तथा पूर्व सवर्ण का का नियम है।

वर्ण-परिवर्त्तन सम्बन्धी कतिपय-नियम

१—प्रारम्भ में न, य, श, ष के अतिरिक्त अन्य एकाकी व्यञ्जन ज्यों के त्यों बने रहते हैं परन्तु उपर्युक्त वर्ण क्रमशः ण, ज तथा स में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा--नयनम्> णअणं, यथा>जधा शिथिलितम्>सिधिलिदं, परितोषः>परितोसो।

२--सम्पूर्ण-पद में उत्तर-पद का प्रथमाक्षर मध्यगत शब्द माना जाता है अतः उसका

लोप हो जाता है परन्तु धातु रूप का प्रथमाक्षर प्रायः बना रहता है। यथा--आर्यपुत्र> अज्जउत्त, (किन्तु आगतम्>आगदं) कि पुनः>किं उण।

३--सम्पूर्ण-पद में उत्तर पद का प्रथमाक्षर फ शेष बना रहता है। यथा--चित्र-फलक>चित्तफलअ।

४--उच्चारण स्थान परिवर्त्तन होकर दन्त्य को तालव्य या मूर्धन्य हो जाता है। यथा-तिष्ठति>चिट्ठदि तथा नूनम्>णूणं। परन्तु 'श' 'ष' के स्थान पर 'स' हो जाता है, मागधी में केवल 'श' रहता है।

५--मध्यगत क ग च ज त द का प्रायः लोप हो जाता है, 'य' का मध्यगत होने पर सदैव तथा 'प' 'ब' का कभी-कभी लोप हो जाता है यथा--अकाल>अआल, भगवान्> भअवं, मदनावस्था>मअणावत्था, प्रियवयस्य:>पिअवअस्सो।

६--मध्यगत क त प को क्रमशः ग द व हो जाते हैं। यथा--कृतम्>किदं लता-मण्डपम्>लदामण्डवं।

७--मध्यगत महाप्राण वर्ण ख घ थ ध फ भ को 'ह' हो जाता है। यथा--साधु> साहु, मुखम्>मुहं, श्लाघ्यते>सलाहीअदि, राज्यलाभेन>रज्ज लाहेण।

८--कहीं कहीं स्वरों के मध्यव्यञ्जन का लोप न होकर द्वित्व हो जाता है। यथा--एकैव>एक्कैव्व, यौवनम्>जोव्वणं, प्रेम>पेम्म।

९--स्वरों के मध्य ट ठ को ड ढ हो जाता है। यथा--कुडुम्ब<कुटुम्ब।

१०-मध्यगत प को व हो जाता है। यथा--दीव।

११-ऊर्ध्वगत रकार का लोप होकर सम्बन्धित वर्ण को द्वित्व हो जाता है। प्राकृत में ऋ तथा लृ स्वर नहीं होते हैं। इनके स्थानों पर र तथा इ का प्रयोग किया जाता है। यथा--तर्कयामि>तक्कम्हि, सर्वम्--सव्वं। ऋषि>रिसि। कृतम्>किदं।

१२--सभी अन्तिम स्पर्श वर्णों का लोप हो जाता है, अनुनासिकों को अनुस्वार होता है तथा अः को ओ हो जाता है। यथा--सर्वम्>सव्वं, एषः>एसो।

महाराष्ट्री-शौरसेनी मागधी-प्राकृतों में अन्तर

(१) संस्कृत का मध्यगत 'त' शौरसेनी में 'द' हो जाता है जब कि महाराष्ट्री में उसका लोप हो जाता है। यथा--सं० जानाति>शौर० जाणादि>माहा० जाणाइ।

(२) संस्कृत का मध्यगत 'थ' शौरसेनी में 'ध' परन्तु महाराष्ट्री में 'ह' रहता है। यथा--सं० अथा>शौर० अधवा>माहा० अहवा।

(३) मागधी में स ष श के स्थान पर 'श' रहता है जबकि शेष दोनों में 'स' यथा--संस्कृत में शेष>माहा० तथा शौर० में वेसेषु एवं>मागधी वेशेशु।

(४) मागधी में प्रायः शब्द के आरंभ में 'र' के स्थान पर 'ल', 'ज' के स्थान पर 'य', 'च्छ' के स्थानपर 'श्च' और ष्य, न्य, ज्ञ, ञ के स्थानों पर 'ञ' हो जाता है। यथा-राज्ञः>ला आणो, समरे>शमले, जानाति>याणादि, गच्छ>गश्च, पुण्य>पुञ।

प्राकृत-शब्द-रूप

प्राकृत-शब्द-रूपों में द्विवचन का अभाव है तथा चतुर्थी विभक्ति भी षष्ठी में समावेश रहता है। अधिकांश शब्दों के रूप प्रायः निम्न प्रकार से चलते हैं--

१. पुलिंग या नपुंसक लिंग के अकारान्त शब्द। २. पुलिंग या नपुंसक लिंग के इकारान्त, उकारान्त शब्द। ३. स्त्रीलिंग--आ, इ, ई, उ, ऊ, स्वरान्त शब्द।

अकारान्त पुलिंग 'पुत्र' शब्द | अकारान्त नपुंसकलिंग 'फल' शब्द

	शौरसेनी		महाराष्ट्री		'फल' शब्द
विभक्ति	एकव०	बहु व०	एक व०	बहु व०	
प्रथमा	पुत्तो	पुत्ता	पुत्तो	पुत्ता	एकव० बहुव०
द्वितीया	पुत्तं	पुत्ते-पुत्ता	पुत्तं	पुत्ता-पुत्ते	फलं फलानि फलाइ (महा०)
तृतीया	पुत्तेण	पुत्तेहिं	पुत्तेण	पुत्तेहि	शेष रूप पुलिंगवत्
पंचमी	पुत्तादो	पुत्तेहिं	पुत्तामो	पुत्तेहि	
षष्ठी	पुत्तस्स	पुत्तानं	पुत्तस्स	पुत्तान	
सप्तमी	पुत्ते	पुत्तेसु	पुत्ते	पुत्तम्मि-पुत्तेसु	

इकारान्त पुलिंग 'अग्गि' शब्द | इकारान्त नपुंसक लिंग दहि(दधि)शब्द

प्रथमा	अग्गी	अग्गीओ-अग्गीणो	दहि	दहीइं
द्वितीया	अग्गि	अग्गीणो	दहिं	दहीइं
तृतीया	अग्गिणा	अग्गीहिं		
षष्ठी	अग्गिणो	अग्गीणं		
सप्तमी	अग्गिम्मि	अग्गीसु		

शेष पुलिंग के अग्गि (अग्नि) वत् उकारान्त पुलिंग तथा नपुंसक लिंग के रूप इकारान्तवत् होते हैं।

स्त्रीलिंग शब्दों के रूप तृतीया, षष्ठी तथा सप्तमी एकवचन के एक समान होते हैं। तथा आ ई ऊ अन्त वाले शब्दों के रूप समान होते हैं।

	माला शब्द		देवी शब्द		वहू-वधू-शब्द	
प्र०	माला	मालाओ	देवी	देवीओ	वहू	वहूओ
द्वि०	मालं	,,	देविं	देवीओ	वहुं	वहूओ
तृ०	मालाए	मालाहिं	देवीए	देवीहिं	वहूए	वहूहि
पं०	मालादो	मालाहिंतो	देवीदो	देवीहिंतो	वहूदो	वहूहिंतो
ष०	मालाए	मालाणं	देवीए	देवीणं	वहूए	वहूणं
स०	मालाए	मालासु	देवीए	देवीसु	,,	वहूसु
सं०	माले	,,	देवि	,,	वह	,,

प्राकृत-धातु-रूप

शब्दों की भाँति धातु-रूप में भी द्विवचन नहीं होता है। लिट्, लङ्, लुङ् लकारें तथा आत्मनेपद प्रायः समाप्त हो चुके हैं। भूतकाल का बोध कृदन्त प्रत्ययों से कराया जाता है। १० गणों के स्थान पर केवल भ्वादि तथा चुरादि के रूप मिलते हैं।

पुच्छ (पृच्छ) धातु (भ्वादि) लट् लकार

	एक व०	बहु व०
प्र० पु०	पुच्छदि, पुच्छइ	पुच्छन्ति
म० पु०	पुच्छसि	पुच्छध, पुच्छह (मा)
उ० पु०	पुच्छामि	पुच्छामो

लोट् लकार

प्र० पु० (शौ०) पुच्छदु, पुच्छउ (मा०) पुच्छन्तु

म० पु० पुच्छ, पुच्छसु (शौ०) पुच्छध, पुच्छह (मा०)

उ० पु० पुच्छामु पुच्छाम्ह

विधि लिङ् का प्रयोग अर्धमागधी तथा जैन महाराष्ट्री के अतिरिक्त अन्य प्राकृतों में बहुत कम मिलता है।

लृट् लकार

प्र० पु० (शौ०) पुच्छिस्सदि (मा०) पुच्छिस्सन्ति

म० पु० पुच्छिस्ससि, पुच्छिहिसि (शौ०) पुच्छिस्सध, पुच्छिस्सह (मा०)

उ० पु० पुच्छिस्सं पुच्छिस्सामो

कह् (कथ्) (चुरादि) लट् लकार

एक व०	बहु व०
कधेदि, कहेदि	कधेन्ति, कहेन्ति
कधेसि, कहेसि	कधेध, कहेह
कधेमि, कहेमि	कधेमो, कहेमो

लोट् लकार

एक व०	बहु व०
कहेदु	कहेन्तु
कहेहि, कहेसु	कहेह
कहेमु	कहेम्ह

लृट् लकार में भ्वादि गण के समान ही चुरादिगण के भी रूप चलते हैं।

शुभं भूयात्

श्लोकानुक्रमणिका

इति ।

महाकवि कालिदास की रचनाओं का सर्वांगपूर्ण संस्करण

कालिदास-ग्रन्थावली

मूल संस्कृत, हिन्दीटीका, जीवनपरिचय,
समीक्षात्मक अध्ययन एवं पारिभाषिक शब्दकोष सहित

हिन्दी व्याख्याकार
पण्डित रामतेज शास्त्री

सम्पादक
ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

किसी महाकवि की सभी रचनाएँ एक स्थान पर पाठकवृन्द को उपलब्ध हो सकें, इसी पवित्र संकल्प से प्रेरित होकर विद्वानों ने ग्रन्थावली परम्परा का सूत्रपात किया। तदनन्तर यह रुचिकर एवं उपयोगी परम्परा देखते-देखते उभर आयी। इसे हम उस-उस कवि के सुयश की जीवातु ही कहेंगे। इसी पवित्र परम्परा का यह अन्यतम सुवासित सुमनस्तबक 'कालिदास-ग्रन्थावली' भी है।

सुप्रसिद्ध एवं यशस्वी महाकवि कालिदास के ग्रन्थरत्नों की आवली (रत्नहार) से अपने कंठ तथा वक्षःस्थल की सुषमा-वृद्धि कौन सरसहृदय व्यक्ति करना नहीं चाहेगा? उक्त रत्नहार को पिरोना विद्वानों के लिए इसलिए अत्यन्त कठिन हो गया था कि कालिदास की कृतियों के सम्बन्ध में सुधीसमाज एकमत नहीं हो पाया था, क्योंकि समय-समय पर हुए अनेक कालिदास नामधारी विद्वान् उस सुप्रसिद्ध कविशेखर के प्रांशुलभ्य सुयश को प्राप्त करने की इच्छा से कुछ-न-कुछ लिखते गये। उन सबका साहित्य परस्पर होड़ लगाता हुआ सामने आया। ऐसी विषम स्थिति में काव्यमर्मज्ञ विद्वानों ने अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर जिन काव्य-नाटकों को इनकी अमर एवं अनुपम कृति के रूप में सादर स्वीकार किया है, प्रस्तुत ग्रन्थावली में उन्हीं कृतियों का सादर संग्रह किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थावली की अधिकाधिक उपादेयता हो, इस दृष्टि से इससे सम्बन्धित जो-जो विषय अपेक्षित समझे गये उन-उन का समावेश यथा सम्भव इसके परिशिष्ट भाग में कर दिया गया है। साथ ही इसके अन्त में पारिभाषिक शब्दकोष भी दे दिया गया है, जिसमें कालिदास की कृतियों में आए हुए व्यक्तियों, प्राणियों, वस्तुओं, नदियों, पर्वतों तथा भौगोलिक स्थानों में नामों का सन्दर्भ सहित उल्लेख प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है; जिसकी शब्दसंख्या प्रायः एक हजार है। परिशिष्ट के अन्त में 'कालिदासकालीन भारत का मानचित्र' भी दे दिया गया है, जिसमे तत्कालीन भारत के स्थानों, देशों, पर्वतों तथा नदियों के संकेत दिये गये हैं। प्रत्येक नाटक के आरम्भ में सम्बन्धित पात्र-परिचय भी दिया गया है। हमारे इस प्रयास से पाठकवृन्द को सन्तोष का अनुभव हो, यही इसकी चरितार्थता है।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी